वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

TM-03

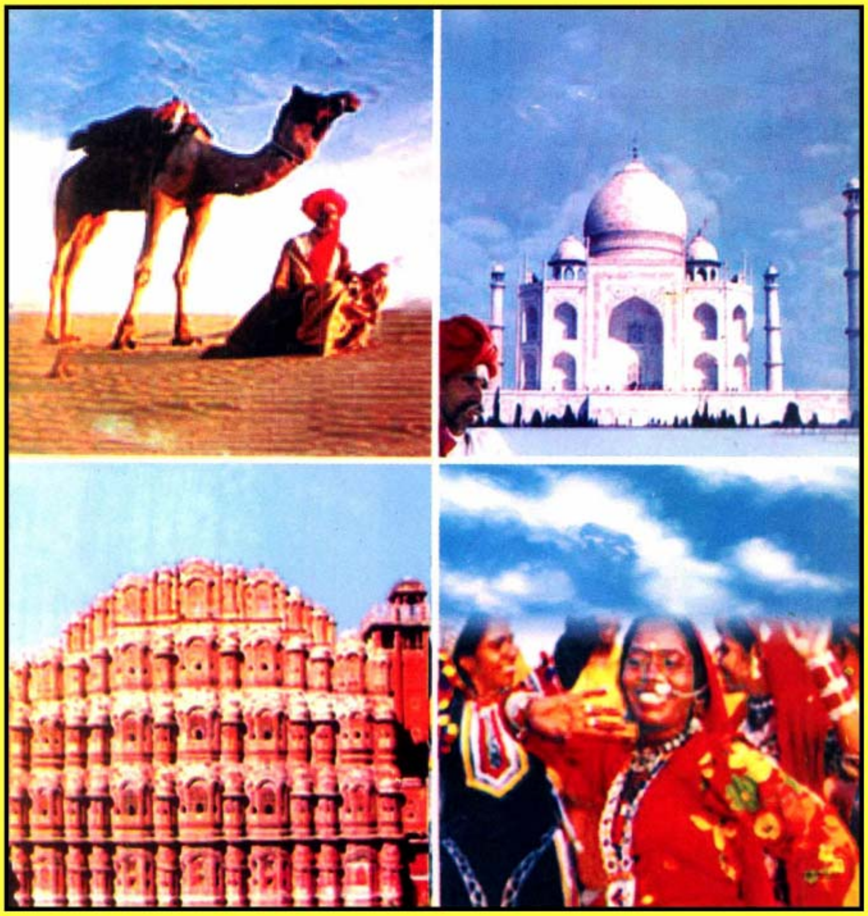

पर्यटन उत्पाद

खण्ड 1, 2 एवं 3

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

TM-03

पर्यटन उत्पाद

खण्ड -1 : पर्यटन उत्पाद

इकाई -01	पर्यटन की धारणा	7–21
इकाई -02	पर्यटन उत्पादों का वर्गीकरण	22–35
इकाई -03	प्राकृतिक एवं मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद	36–51

खण्ड -2 : विविध उत्पाद

इकाई -04	प्रदर्शनात्मक कलाएं	52–64
इकाई -05	भारतीय संगीत परम्परा	65–78
इकाई -06	भारतीय शास्त्रीय नृत्य	79–93

खण्ड -3 : ऐतिहासिक परिदृशय

इकाई- 07	ऐतिहासिक इमारतें	94–108
इकाई -08	भारतीय संग्रहालय	109–121
इकाई -09	भारत का वन्य जीवन व अभयारण्य	122–136
इकाई -10	भारत की हस्त कलाएं	137–149

पाठ्यक्रम अभिकल्पना समिति

पाठ्यक्रम लेखन

श्रीराम कुमार

डॉ .आर.वी. व्यास
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला
विश्वविद्यालय,
कोटा

प्रो. पी.के. शर्मा
आचार्य (प्रबन्ध) एवं
समन्वयक, पर्यटन अध्ययन,
निदेशक, वाणिज्य एवं प्रबन्ध अध्ययन
विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
55, न्यू आकाशवाणी कालोनी, कोटा

प्रो. संदीप कुलश्रेष्ठ
समन्वयक, भारतीय पर्यटन एवं यात्रा प्रबन्ध संस्थान
गोविन्दपुरी, ग्वालियर (म.प्र.)

पाठ्यक्रम सम्पादन

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

आवरण पृष्ठ सज्जा

डॉ. राजेश कुमार व्यास
पर्यटन विषय विशेषज्ञ,
जयपुर

सामग्री उत्पादन

प्रो. पी.के. शर्मा
निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

श्री योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

पर्यटन उत्पाद

परिचय :

प्रस्तुत पाठ्यक्रम का उद्देश्य पर्यटन संबन्धित विषय वस्तु उपलब्ध करवा कर विद्यार्थी को पर्यटन उत्पादों की उत्पादों की जानकारी देना है । इस पाठ्यक्रम में पाँच खंडों में विभक्त बीस इकाइयाँ है ।

प्रथम खण्ड- पर्यटन उत्पाद के अंतर्गत तीन इकाइयों में पर्यटन की धारणा, पर्यटन की धारणा, पर्यटन उत्पादों का वर्गीकरण एवं प्राकृतिक एवं मानव निर्मित पर्यटन उत्पादों का विवेचन किया गया है ।

द्वितीय खण्ड- विविध उत्पाद में प्रदत्त तीन इकाइयो में प्रदर्शनात्मक कलाएं, भारतीय संगीत परंपरा एवं भारतीय शास्त्रीय नृत्य के विविध पहलुओं का वर्णन किया गया है ।

ऐतिहासिक परिदृशय नामक तृतीय खण्ड में प्रयुक्त चार इकाइयों में ऐतिहासिक इमारतें, अभयारण्य तथा भारत की हस्तकलाओं का वर्णन है ।

चतुर्थ खण्ड - सांस्कृतिक पर्यटन में छः इकाइयां हैं जो क्रमशः भारतीय इतिहास की रूपरेखा, सांस्कृतिक विरासत, आश्रम व्यवस्था, मान्यताएं, मेले और त्यौहार, व्यंजन आदि का वर्णन करती है ।

अन्तिम खण्ड - भारतीय समुदाय का विवेचन करता है जिसमें दी गई चार इकाइयाँ वैदिक धार्मिक समुदाय, भारत के धार्मिक समुदाय, भारत के धार्मिक समुदाय, उत्सव एवं पर्यटन के विविध रूपों पर आधारित है ।

TM-03

खण्ड - 1 : पर्यटन उत्पाद

इकाई - 01 पर्यटन की धारणा

इकाई -02 पर्यटन उत्पादों का वर्गीकरण

इकाई -03 प्राकृतिक एवं मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद

इकाई - 1 : पर्यटन की धारणा

रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 पर्यटन का अर्थ और धारणा
1.3 पर्यटन के बदलते रूप
1.4 पर्यटन का वर्गीकरण
  1.4.1 घरेलू पर्यटन
  1.4.2 अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन
1.5 पर्यटन की प्रेरक शक्तियाँ
1.6 पर्यटन के अवयव
1.7 पर्यटन विकास में जनसहयोग
1.8 पर्यटन के समक्ष चुनौतियाँ
  1. हिंसा और आतंक
  2. लाल फीताशाही
  3. भिखारियों की समस्या
  4. यातायात सुविधाएं
  5. भोजन व्यवस्था
  6. सौदेबाजी
  7. टैक्सी या यातायात की ऊँची दरें
1.9 पर्यटन : एक सेवा उद्योग
1.10 पर्यटन की वर्तमान दशा-दिशा
1.11 सारांश
1.12 उपयोगी साहित्य
1.13 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

पर्यटन, मनुष्य की एक स्वाभाविक एवं आदिम प्रवृति है। एक ही स्थान पर रहते-रहते, वह परिवर्तन की तलाश करता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर कुछ परिवर्द्धन और नवीनता का एहसास करना चाहता है। इसके अलावा उसकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एक ही स्थान पर नहीं होने से वह रोजगार, व्यवसाय या अन्य कारणों से भी कुछ समय के लिए विभिन्न स्थानों का भ्रमण करता है। इस प्रक्रिया में वह जहाँ भी जाता है कुछ समय निकालकर प्राकृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों पर जाकर अपने ज्ञान को बढ़ाने, दृश्यावलोकन करने आदि के माध्यम से अपनी बनी बनाई दिनचर्या में कुछ क्षण बचाकर मनोरंजन करना चाहता है। इन्हीं सब कारणों से सदियों से पर्यटन का सिलसिला चला आ रहा है। इसके भिन्न-भिन्न रूप रहे हैं और समय-समय पर पर्यटन के लक्ष्य, रूप और तौर-तरीके बदलते

रहे हैं। भारत में तीर्थाटन, की विपरीत परिस्थितियों के दौर में भी एक लम्बी परम्परा रही है। यह आज भी जारी है।

इस प्रकार पर्यटन, एक स्वभावगत क्रिया है। मौज-मस्ती और मनोरंजन के लिए अब पर्यटन की प्रवृति भी बढ़ने लगी है। नई-नई बातों को जानने, जिज्ञासा, पूर्ति आदि के सन्दर्भ में भी विभिन्न स्थानों पर लोग जाते हैं।

इस इकाई का उद्देश्य यह है कि आप इसके अध्ययन के पश्चात् पर्यटन की अवधारणा, इसके विकास एवं अन्य विविध पक्षों के बारे में स्पष्ट जानकारी कर सकें और पर्यटन की वर्तमान जरूरतों को समझ सकें। इस इकाई के अध्ययन से आप यह भी जान सकेंगे कि किस प्रकार परम्परागत रूप से पर्यटन अभी भी जारी हैं और साथ ही इसका आधुनिक रूप किस प्रकार बदलकर एक नया स्वरूप ले चुका है। पर्यटन का वर्तमान रूप एक विकसित उद्योग की श्रेणी में आ गया है। वैज्ञानिक प्रगति, यातायात, संचार आदि विभिन्न साधनों के विकास ने पर्यटन को बहुत आसान भी बना दिया है और इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योग भी दिया है।

पर्यटन, अति प्राचीनकाल से चला आ रहा है। मनुष्य, सभ्यता के आरम्भिक काल में रोजी-रोटी या भोजन की तलाश में घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करता था। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का यह सिलसिला, मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति का अंग था। उसके बाद कृषि का विकास हुआ और मनुष्य ने घर बनाकर एक स्थान पर रहना शुरू किया। इससे पर्यटन के स्वरूप में परिवर्तन आया और इसकी अवधारणा बदली।

आज आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि लगभग सभी क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये हैं और पर्यटन के क्षेत्र में भी भारी वृद्धि हुई है और इसने एक बड़े उद्योग का रूप धारण कर लिया है। इन्हीं सन्दर्भों को लेकर पर्यटन के विकास की लम्बी यात्रा के विभिन्न पक्षों की जानकारी देने के लिए आप सक्षम हो सकेंगे और यह भी बता सकेंगे कि किस प्रकार पर्यटन के अर्थ बदले हैं और यह अब न केवल तीर्थाटन, मनोरंजन आदि तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है।

5.1 प्रस्तावना

तेजी से विकास की ओर उन्मुख उद्योग अब रोजगार में वृद्धि, राजस्व प्राप्ति एवं राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय विकास में योग देने वाला महत्त्वपूर्ण कारक बन गया है। यह एक ऐसा उद्योग है जो विस्तार से फैला हुआ है और दुनिया के प्राचीनतम उद्योगों में से एक है। पुराने युगों में शासक या राजा-महाराजाओं द्वारा पर्यटन किया जाता था या खोज या धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्यटन किया जाता था। तीर्थाटन का भी बहुत पुराना इतिहास है। गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रसार के लिए पर्यटन किया, आदि शंकराचार्य, आर्यों आदि का लक्ष्य भी अपने सिद्धान्तों का प्रसार था। छुआनतुंग, फाईध्यान, इबन्बतुवा, अलबूनी आदि भी पर्यटक थे।

यातायात एवं संचार के साधनों के क्रान्तिकारी परिवर्तनों से दुनिया की दूरियाँ घटी हैं और लगता है कि दुनियाँ सिमटकर एक विश्व गाँव बन गई है। अब तेजगति से हवा में वायुयान दौडने लगे हैं और एक आदमी लन्दन में नाश्ता करता है और दोपहर का खाना न्यूयार्क जाकर लेता है और शाम कहीं और बिताता है। संचार क्रान्ति ने भी दुनिया का नक्शा पलट दिया है।

अब व्यक्ति अपनी जिज्ञासा पूर्ति के लिए हिमालय के दृश्यावलोकन या गोवा के समुद्र तटों का आनन्द लेने में सक्षम है और धार्मिक, आध्यात्मिक स्थलों, प्राकृतिक स्थलों, स्मारकों, मंदिरों; दुर्गों ऐतिहासिक स्थानों आदि का भ्रमण करके अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने में पर्यटन का सहारा लेने की शक्ति रखता है। अब मनोरंजन के साथ पर्यटन अध्ययन, सर्वेक्षण, खोज आदि कर्यों के साथ अध्ययन का जीवन्त एहसास भी कर सकता है। पर्यटन का ही चमत्कार है कि अब दुनियाँ का ज्ञान प्राप्त करना, पुस्तकों तक सीमित नहीं रहा है। पर्यटन आज एक अति महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक गतिविधि बन गया है।

पर्यटन ने मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति के अनुसार इसे सन्तुष्टि प्रदान करने का भी कार्य किया है। अब पर्यटन के चारों ओर पर्यटन का सम्पूर्ण ढाँचा तैयार हो गया है। अब यह सम्भव है कि एक पर्यटक अपनी रूचि, शैली, पसन्द एवं अपनी बजट क्षमता के अनुसार पर्यटन योजना बनाकर उसे पूर्ण कर सकता है। उसके पास अनेक विकल्प मौजूद हैं। लोग व्यक्तिगत रूप से भी तथा समूह के रूप में पर्यटन योजना बनाते हैं और पर्यटन संस्थाएं भी इस कार्य में लगी हुई हैं जो विभिन्न देशों में पर्यटन कार्यक्रमों को अन्जाम देती है।

भारत भी दुनिया का एक ऐसा देश है जहाँ पर्यटन उद्योग ने हाल ही के वर्षों में रफ्तार पकड़ी है। यहाँ की अति प्राचीन संस्कृति और इतिहास, स्मारक, मंदिर, दुर्ग, प्राकृतिक परिदृश्यों की विविधता आदि अपार पर्यटन सम्भावनाएं पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। लेकिन, यह चिन्ताजनक स्थिति है कि अपार पर्यटन रूचि की सम्पदा के बावजूद भी पर्यटन की नियोजित नीति एवं सम्पूर्ण प्रयासों के अभाव में विश्व पर्यटन में भारत की तुलना में थाईलैंड, हांगकांग, मलेशिया, दक्षिण कोरिया जैसे कई छोटे देश पर्यटन की दृष्टि से काफी प्रगति कर चुके हैं। ऐसे में भारतीय पर्यटन उद्योग के लिए विकास की बड़ी चुनौती है। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए पर्यटन के विविध क्षेत्रों में केन्द्रित प्रयास करने की जरूरत है।

देर आये, दुरूस्त आये। भारत सरकार ने 2002 में पर्यटन नीति तैयार की है जिसके तहत पर्यटन व्यवसाय एवं उद्योग को गति प्रदान करने और भारत की विशाल पर्यटन क्षमता का समुचित विकास एवं उपयोग के लिए प्रमुख पर्यटन स्थलों और क्षेत्रों जैसे सांस्कृतिक पर्यटन, समुद्रतटीय पर्यटन, नदी, ग्रामीण स्तरीय पर्यटन, साहसी पर्यटन, पारिस्थितिकीय पर्यटन, उत्सवों, शॉपिंग आदि के विकास और सुधार प्रयासों की गति देने का संकल्प दोहराया है। साथ ही समेकित-सर्किट पर्यटन के विकास को नई दिशा देने का भी निर्णय किया है। साथ ही निजी क्षेत्र को भी संस्कृति एवं पर्यटन विकास प्रयासों में सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार करने की भी योजना बनाई गई है।

1.2 पर्यटन का अर्थ और धारणा

भारतीय सन्दर्भ में तो देशाटन, तीर्थाटन आदि रूपों में पर्यटन की अत्यन्त प्राचीन, स्पष्ट और परम्परागत धारणा चली आई हैं लेकिन पर्यटन का दायरा विस्तृत होने की प्रक्रिया में पश्चिमी या अन्य अवधारणाएं पर्यटन के अर्थों एवं अवधारणाओं को लेकर बदलती रही है। मनोरंजन या मौज-मस्ती के लिए पर्यटन करना तो सम्पन्न लोगों के लिए सम्भव रहा है और आवश्यकताओं या धार्मिक भावों से प्रेरित होकर देशाटन, तीर्थाटन या पर्यटन आम आदमी की प्रवृति रही है। भारत में तीर्थाटन को धार्मिक क्रिया माना गया है और देश के चारों कोनों में

स्थित चार महातीर्थों की यात्रा के बाद ही जीवन की सार्थकता मानी गई है। अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी यह परम्परा जारी रही है। भारत में केवल सम्पन्न या उच्च वर्ग के लिए ही पर्यटन आमतौर से मनोरंजन एवं आनन्द प्राप्ति का जरिया नहीं हैं। आम लोगों के लिए भी धार्मिक दृष्टि के तीर्थाटन के रूप में पर्यटन की प्रमुखता है।

अंग्रेजी में पर्यटन को 'टूरिज्म' कहते हैं। यह लेटिन भाषा का शब्द है जो मनुष्य की इस प्रवृति की ओर संकेत करता है कि वह अनजान जगहों के बारे में जानने का इच्छुक रहता है, अनजान स्थानों या चीजों की खोज करने, आश्चर्यजनक एवं नये स्थानों को देखने, पर्यावरण परिवर्तित करने और नये अनुभव प्राप्त करने की दिशा में एक जन्मजात या आन्तरिक जिज्ञासा लिए होता है। इसी जिज्ञासा पूर्ति के प्रयत्नों से पर्यटन को गति मिली है। यह धारणा 12-13वीं सदी की है। 17वीं सदी में पर्यटन को अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थान या क्षेत्र का भ्रमण करके विभिन्न स्थानों का अवलोकन करने तक सीमित हो गया। इसका यह अर्थ भी बताया गया है कि एक व्यक्ति अपने देश के बाहर 24 घण्टे या अधिक भ्रमण करे तो वह पर्यटन है लेकिन यह सही अर्थ नहीं क्योंकि पर्यटकों के भ्रमण के लक्ष्य भिन्न-भिन्न होते हैं और इसके लिए वे स्वदेश या विदेश कहीं भी घूमने जां सकते हैं और इसकी समय सीमा में भी परिवर्तन हो सकते हैं।

पर्यटन की विभिन्न परिभाषाओं पर दृष्टि डाले तो यह स्पष्ट होता है कि जब कोई व्यक्ति किसी स्थान से दूसरे स्थान या क्षेत्र में घूमने का कोई अल्पाकालिन लक्ष्य लेकर जाता है तो वह पर्यटक कहलाता है। विश्व व्यापार संगठन के अनुसार पर्यटन में लोगों की वे गतिविधियाँ शामिल हैं जो अपने स्थायी पर्यावरण से व्यवसाय या मनोरंजन या आराम के लिए किसी अन्य स्थान या पर्यावरण में एक साल से अधिक तक लगातार नहीं रहता है। पर्यटन देश में हो तो वह घरेलू पर्यटन कहलाता है और विदेशों में अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी पर्यटन कहलाता है

1.3 पर्यटन के बदलते रूप

जैसा कि बताया जा चुका है कि एक प्रकार की वातावरण में रहते-रहते मनुष्य ऊब जाता है। यही कारण है कि मनुष्य और पशु, पक्षी दोनों ही कुछ समय या काफी समय के लिए बने बनाये अपने आवास और माहौल से दूर कहीं कुछ बदलाव के लिए जाते हैं। पक्षी भी वृक्षों की डालियों से सुबह-सुबह नीले आकाश की ऊँचाईयों को छूने के लिए उड़ान भरने लगते हैं। इस प्रकार यह समस्त प्राणी-जगत की स्वाभाविक प्रवृति है कि वह एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करते हैं।

मनुष्यों का इस भ्रमण के पीछे कोई सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक या धार्मिक लक्ष्य हो सकता है। लक्ष्य जो भी हों, भ्रमण या पर्यटन का चलन एक अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। प्रारम्भ में पर्यटन, एक व्यक्तिगत इच्छा से प्रेरित एक सरल प्रक्रिया थी। उस काल में केरल मनोरंजन या आराम के क्षण बिताने का यह जरिया नहीं था। आमतौर में प्रारम्भिक दौर में पर्यटक कोई व्यापारी होता था जो एक देश की वस्तुएं दूसरे देश में बेचने के लिए यात्रा करता था या कोई तीर्थयात्री होता था जो धार्मिक स्थलों पर अपनी आस्था की पूर्ति के लिए जाता था। कुछ पर्यटक अपनी ज्ञान-पिपासा पूरी करने या शोध का लक्ष्य लेकर पर्यटन करते थे तो कुछ लोग नये देशों या स्थानों की खोज के लिए समुद्र मार्गों से या पैदल यात्राऐं करते थे। व्यापार और वाणिज्य भी इनमें सर्वाधिक प्रेरक शक्ति होती थी जो व्यक्ति को दूर-दराज के देशों या स्थानों की यात्रा

करने को बढ़ावा देती है इससे यह स्पष्ट है कि चाहे थलचर हों या जानवर या वायु में उड़ान भरने वाले पक्षी, सभी स्थान परिवर्तन एक नये अनुभव एवं एहसास की प्रतीति के लिए लालायित रहते आये हैं।

इसके अतिरिक्त मनुष्य की जिज्ञासा प्रवृति भी पर्यटन की परिपाटी के पीछे एक बड़ा कारण रहा मनुष्य नई-नई बातें जानने और नये-नये स्थानों को देखने तथा नये अनुभवों को प्राप्त करने का सदैव से रहा है। इसलिए अपने ज्ञान को व्यापक बनाने एवं अनुभवों को विस्तार देने के लिए भी वह पर्यटन में सदा रहा है। हर देश के रीति-रिवाज, संस्कृति, जलवायु, रहन-सहन के तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं। मनुष्य इच्छा रही है कि इस विविध के अनुभव का रोमांच प्राप्त करने के लिए वह घूमें और स्थान-स्थान पर

समय के साथ अनेक एतिहासिक उलटफेर हुए विभिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ। कला, हस्त स्थापत्य, शिल्प आदि का विकास हुआ। मनुष्य की अभिरूचि इन विभिन्नताओं की ओर झुकी और विविधता के रंगों से रूबरू होने के लिए पर्यटन का सहारा लेने लगा। आधुनिक युग तक आते-आते तो एकदम बदल गई। यातायात एवं संचार साधनों ने क्रान्ति मचा दी और दुनियाँ सिमटने लगी। मनुष्य के ज्ञान-प्राप्ति, अनुभव प्राप्ति के साथ-साथ पर्यटन मौज-मस्ती का एक जरिया बन गया। धार्मिक या ज्ञान तक पर्यटन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया। आज भी चीनी यात्री हुआंगतुंग आदि के वर्णन उन दिनों की ताजा करते हैं और पर्यटन के प्रारम्भिक काल का स्मरण कराते हैं। यह भी पता चलता है कि किस वास्को-डिगामा, कोलम्बस, अलैक्जेन्डर, मार्कोपोलो ने किन कठिनाईयों से साहसपूर्ण यात्रायें की। अब तो आराम और खुशियाँ बटोरने का साधन बन गया है।

अब पहले के पर्यटन के साधन जैसे मीलों पैदल यात्रा, घोड़ौं, टट्टूओं, समुद्र में नावों, ऊँटों आदि से करें तो आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गये। द्रुतगति से चलने वाली रेलगाड़ियाँ, बसें, वायुयान, जलयान आदि साधन मौजूद हैं और पुराने साधन केवल दुर्गम पहाड़ी स्थलों या रेगिस्तान में ही काम आते हैं।

1.4 पर्यटन का वर्गीकरण

पर्यटन का इतना विस्तार हो गया है कि अब इसे कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें इस प्रकार हैं -

1.4.1 धरेलु पर्यटन

जब कोई व्यक्ति अपने ही देश के विभिन्न स्थानों पर पर्यटन के लिए जाता है तो यह घरेलु पर्यटन श्रेणी में आता है। इसे आन्तरिक पर्यटन भी कह सकते हैं। यह राष्ट्रीय स्तर का पर्यटन है।

1.4.2 अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन

जब लोग अपने देश को छोड़ दुनियाँ के किसी अन्य देशों या देश का पर्यटन करते है तो यह अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन कहलाता है।

भारतीय सन्दर्भों में घरेलु एवं विदेशी पर्यटन, दोनों के लिए ही विपुल सम्भावनाऐं हैं। इसका कारण है कि यहाँ की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन, उन्नत और अनेक विविधताओं से भरपूर

है। यहाँ अनेक धर्मों, सम्प्रदायों और मतों के लोग एक साथ रहते हैं जैसे बौद्ध, जैन, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान, हिन्दु साथ यहाँ महलों, दुर्गों, एतिहासिक इमारतों का खजाना है। यहाँ समृद्ध हस्तशिल्प और लोक कलाऐं हैं। शास्त्रीय की समृद्ध परम्पराएं हैं। वन्य अभयारण्य एवं वन्य जीवन है और विभिन्न प्रकार की भौगोलिक स्थितियाँ है सब कुछ इतना रोमांचक है कि दुनियाँ के भिन्न-भिन्न रूचियों वाले सैलानियों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण स्थल बन गया है।

देश में यातायात और संचार के साधन भी बढ़ें हैं। होटल और रेस्तरांओं के विभिन्न प्रकारों में वृद्धि हुई पर्यटक स्थलों तक रेल, बस, वायुयान आदि सेवाओं का भी विकास हुआ है। लेकिन देरी से पर्यटन नीति के निश्चित होने और पर्यटन को विशेष प्राथमिकता नहीं देने के कारण देश के अन्य उद्यमों की तरह इसके विकास सन्तोषजनक नहीं माना जा सकता है। अभी भी देश में घरेलु एवं विदेशी पर्यटन में वृद्धि किये जाने एवं उद्योग को रफ्तार एवं दिशा प्रदान करने के भारी प्रयत्नों एवं एक दृढ़ संकल्प की जरूरत है।

5.5 पर्यटन की प्रेरक शक्तियाँ

विभिन्न प्रकार की पसन्द एवं उद्देश्यों को लेकर पर्यटन पर जाने वाले लोगों की प्रेरक शक्तियाँ भी भिन्न-भिन्न होती है। हर पर्यटक की अपनी दृष्टि और लक्ष्य होता है जो उसे स्थान विशेष या देश विशेष के पर्यटन के लिए प्रेरणा देता है।

इस तरह केवल सैर-सपाटे के लिए जाना पर्यटन कहलाता है तो किसी लक्ष्य को लेकर जाना देशाटन धार्मिक आस्था से तीर्थों की सैर करना तीर्थाटन है। लेकिन पर्यटन को इस प्रकार अलग रूपों में बाँटना कठिन है क्योंकि पर्यटन पर जाने के लक्ष्य एक से अधिक भी हो सकते हैं। यह जिज्ञासापूर्ति के लिए भी हो सकता मात्र आनन्द के लिए भी या दोनों के लिए भी। किसी व्यावसायिक कार्य के दौरान भी इस प्रकार पर्यटन पर जा सकता है। कामकाज के क्षणों में बचे समय का इस तरह उपयोग भी किया जाता है। पर्यटन अति प्राचीन रहा है और समय-समय पर इसमें भारी परिवर्तन आते रहे हैं। इस कारण से पर्यटन के प्रकार और इसके कारण भी बदलते रहे हैं। इसकी प्रेरक शक्तियों में भी अनेक भिन्नताएं हैं। दरअसल, पर्यटन एक अस्थाई समय धारणा है। कुछ लोगों के अनुसार पर्यटन को सामाजिक, सांस्कृतिक सम्मेलनों से सम्बन्धित या धार्मिक पर्यटन प्रकारों में विभाजित मानते हैं। इनमें भी सांस्कृतिक दृष्टि या धार्मिक उद्देश्यों के लेकर किये जाने वाले पर्यटन दबा रहता है। लोग दुनियाँ के प्राचीन रूपों एवं समृद्ध परम्पराओं को आज भी जीवन्त रूप में देखना चाहते है इस दृष्टि से आने वाले पर्यटकों के लिए भारत एक अत्यन्त रोमांचक देश हैं। यहाँ प्राचीन संस्कृति के प्रमाणों विविधता और बहुलता का कोई जवाब नहीं है। धार्मिक पर्यटन की जड़ें भी भारतीय जीवन में इतनी गहरी है वे पर्यटकों के लिए विस्मयकारी होती हैं।

5.6 पर्यटन के अवयव

पर्यटन अपने आप में कोई पूर्ण विधा नहीं है। इसके साथ कई तत्त्व और अवयव जुड़े हैं जो इसे सम्पूर्णता है। एक पर्यटक किसी स्थान विशेष के लिए पर्यटन के लिए जाना चाहता है अर्थात् अपना लक्ष्य निर्धारित करता है उसे वहाँ उपलब्ध समय के अनुसार पहुँचने के लिए उपयुक्त यातायात के साधनों की आवश्यकता है। पर्यटन स्थलों पर घूमने के बाद शाम को उसे ठहरने और खाने के लिए भी आरामदायक और क्षमता स्वरूप कोई होटल, लॉज या स्थान की

जरूरत पड़ती है। इस प्रकार पर्यटन स्थलों या पर्यटन से यातायात आवास व्यवस्था का निकट का रिश्ता होता है।

कई स्थान अपने आप में इतने महत्त्वपूर्ण और आकर्षण के होते हैं कि वहाँ यातायात के साधनों, भोजन आदि की उपयुक्त व्यवस्थाओं का विकास न होने के बावजूद भी पर्यटकों की उन स्थानों के लिए अधिक दिलचस्पी होती है और अनेक पर्यटक इस कठिनाई को जानते हुए भी ऐसे स्थानों पर पर्यटन के लिए जाते है।

वर्तमान युग में जो देश अपने यहाँ पर्यटन का विकास करने में संलग्न हैं, उनका ध्यान पर्यटन की देखभाल करके उनको बेहतर तरीकों से प्रस्तुत करने, यातायात एवं आवास व्यवस्थाओं को सुधारने अधिक रूचि लेने लगे हैं। उन सबको हम ढाँचागत सुविधाएं कह सकते हैं। यदि पर्यटन को बढ़ाना है तो उसकी ढाँचागत सुविधाओं एवं बेहतर प्रबंधन पर भी जोर देना आवश्यक है।

पर्यटन विकास के उपाय

पर्यटन का विकास करने का अर्थ है कि उन सब तत्त्वों की ओर ध्यान देना जो पर्यटन व्यवसाय में हैं। सबसे पहले पर्यटन महत्त्व के स्थलों की मरम्मत, देखभाल और उचित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। बार देखा गया की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्यटन-स्थल पर पर्यटकों की आवक तो बहुत रहती थी क्योंकि उनके सौन्दर्य और शिल्प पर्यटकों को खींचकर लाने की बेहद क्षमता बनाये हुए था। लेकिन आसपास के लोग वहाँ कचरा डालते थे और गन्दगी करते थे। पास ही झाड़ियाँ और आने-जाने की परेशानियाँ उठानी पड़ती थी। सही व्यवस्था आदि का अभाव था। कहने का तात्पर्य है कि एतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व आदि के पर्यटन के आसपास सफाई एवं देखरेख पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके साथ ही विभिन्न स्थानों से आने वाले पर्यटकों के लिए यातायात के सुगम साधन होने चाहिए। उनकी सुरक्षा की भी व्यवस्था की जानी चाहिए क्योंकि उनके लिए अनेक समाजकंटक सदैव खतरा बने रहते हैं।

पर्यटकों के लिए जल, भोजन, आवास आदि की व्यवस्थाओं में भी गुणात्मक सुधार किये जाने आवश्यक हैं। इन कारकों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए, पर्यटन में इजाफे के लिए खुशनुमा मौसम, सुन्दर एवं दृश्या माहौल, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारक, पर्यटन स्थल पर पहुँचने के लिए अच्छी सड़कें और मार्ग, यातायात और सुरक्षा की व्यवस्था, ठहरने या आवास की व्यवस्था और उन सबके साथ ही आतिथ्य की भावनाओं से वातावरण, पर्यटकों की अहम् जरूरतें होती हैं।

पर्यटकों के लिए गाईडस् भी प्रशिक्षित होने चाहिए जो विभिन्न देशों के पर्यटकों की भाषा का ज्ञान रखते हैं। यह भी देखने में आया है कि अनेक मामलों में पर्यटकों के लिए स्थान विशेष के हस्तशिल्प आदि अनेक वस्तुओं की खरीद में भी उनके साथ ठगी की जाती है। ऐसे में सरकारी स्तर पर गाईड्स के व्यवहार एवं स्थानीय व्यापारियों या बिचौलों या लपकों की कारगुजारियों पर कड़ी नजर रखनी चाहिए। पर्यटकों की सुरक्षा करना अतिथि के रूप में उनका सत्कार करते समय उनके साथ होने वाले किसी भी दुर्व्यवहार को सख्ती से रोकने उपाय करना, सरकार का पहला दायित्व है।

पर्यटन उद्योग के विकास की प्रक्रिया में यहाँ विश्लेषण किये गये मुद्दों पर गंभीरता से ध्यान देने के साथ-साथ यह भी सोचना होगा कि प्राकृतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सन्दर्भों में

देश में अपार पर्यटन विकास की सम्भावनाएं हैं। यह भी शुभ संकेत है कि द्वित्तीय विश्वयुद्ध के बाद से लेकर अब तक के पर्यटकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के आंकड़ों पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट होगा कि यह सिलसिला और आगे जायेगा। देश में बाकी पर्यटन प्रवाह को आकर्षित करने की क्षमता है तो देश के आर्थिक, सामाजिक विकास को गति देने के लिये पर्यटन सम्भावनाओं के पूर्ण उपयोग की कारगर नीति के साथ कारगर क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।

दरअसल, समस्त पर्यटन सुविधाओं के साथ देश में आतिथ्यपूर्ण पर्यटन वातावरण की रचना करना भी है ताकि यहाँ आने वाला हर पर्यटक सन्तुष्ट होकर जाये और देश की बेहतर छवि का प्रसार करे।

1.7 पर्यटन विकास में जनसहयोग

पर्यटन का दायरा अत्यन्त विस्तार वाला है। एक पर्यटक का सामना न केवल यातायात, आवास या स्थल पर कार्यरत कर्मचारियों या गाईड्स से होता है बल्कि वे अपनी यात्रा की अवधि में अनेक लोगों सम्पर्क में आते हैं और इन सब लोगों का व्यवहार, आचरण की छाप उनके मनों पर अंकित होती है। देश के विगत और सुन्दरता से भरपूर प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण की स्मृतियाँ लेकर वे लौटते इसलिए पर्यटन से जुड़े हर व्यक्ति एवं समाज के हर व्यक्ति का यह दायित्व है कि उसका व्यवहार पर्यटकों के प्रति स्नेह और शालीनता से पूर्ण हो और दायित्वपूर्ण भी।

इस प्रकार पर्यटकों की सुविधाओं में सुधार और वृद्धि के साथ यदि उन्हें एक मैत्रीपूर्ण एवं पारिवारिक वातावरण मिले तो उनकी पर्यटन यात्रा और अधिक सुखद हो सकती है। पर्यटन अपनी यात्रा पूर्ण करते समय किसी देश विशेष या क्षेत्र की यात्रा पूनः करने की भावना लेकर जाये तो इसका अर्थ होगा कि उस देश की पर्यटन व्यवस्था बेहतर है। एक सन्तुष्ट पर्यटक इस प्रकार पर्यटन विकास के लिए सम्पदा है, एक प्रेरक है।

कई देशों में ऐसे होता है कि वे अपने देश में प्रचार-प्रसार के अभियान चलाकर देश के लोगों को इस के लिए प्रेरित करते हैं कि किस प्रकार आम नागरिकों का पर्यटकों के प्रति स्नेह, विनम्रतापूर्ण व्यवहार और सहायता करने की प्रवृति का असर पर्यटन विकास में सहायक हो सकता है और पर्यटन उद्योग को गति देने से देश को रोजगार वृद्धि, आर्थिक प्रगति में यह उद्योग सहायक हो सकता है।

लोगों को यह महसूस कराना चाहिए कि पर्यटन विकास का उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि अप्रत्यक्ष से देश के व्यापार और आर्थिक गतिविधियों में योग देता है। इससे देश के होटल व्यवसाय, हस्तशिल्प, यातायात आदि अनेक व्यवसायों को लाभ होता है। यद्यपि भारत में ही अपने नगरों को साफ-सुथरा रखने और पर्यटकों को 'अतिथि देवो भव:' या 'पधारो म्हारे देश' जैसे नारों के साथ भावात्मक स्पर्श देने आदि के अभियान कराये जाते हैं। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर अभी भारतीय पर्यटन को इस दिशा में बहुत कुछ प्रयासों की जरूरत है।

पर्यटकों का भाव-भीना स्वागत करने के लिए रेल्वे स्टेशनों, बस स्टैंडस् या हवाईअड्डों आदि के पास लगाना और उनकी सूचनाओं एवं मार्गदर्शन के लिए पर्यटक सूचना केन्द्र खोलना आदि उपाय प्रशंसनीय हैं। पर्यटकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय हवाईअड्डों पर वीजा आदि की

औपचारिकताओं में भी सुधार किये गये हैं। यह भी तेजी पकड़ रहा है कि पर्यटकों के लिए औपचारिकताएं न्यूनतम हों ताकि उन्हें परेशानी से बचाया जाये।

पर्यटन विकास को गति देने के लिए एक जागृति आई है और यह अनुभव किया गया है कि भारत में पर्यटन उद्योग के विकास के लिए भविष्य उज्ज्वल है लेकिन आज का युग हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा का है। हर देश अधिक से अधिक संख्या में अपने यहाँ पर्यटकों को आकर्षित करने के उपाय करके इस उद्योग से अधिकतम लाभ में लगा है। ऐसे में भारत को भी अपने पर्यटन उद्योग के विकास पर विशेष ध्यान देना होगा।

1.8 पर्यटन के समक्ष चुनौतियाँ

जैसा कि बताया जा चुका है कि यह युग सम-भावनाओं का भी है तो इस युग में प्रतिस्पर्द्धा भी है और इसकी चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। इसलिए किसी भी क्षेत्र में विकास को गति देने के उपायों पर विचार करने के साथ-साथ उस क्षेत्र की समस्याओं और चुनौतियों को भी समझना चाहिए और उनका मुकाबला करने की पर्याप्त तैयारी भी होनी चाहिए। पर्यटन उद्योग की भी कई कठिनाईयाँ हैं।

1. हिंसा और आतकंवाद - पर्यटन की चुनौतियों में हिंसा और आतंकवाद प्रमुख बाधाएं है। दुनियाँ के कई देशों में हिंसा और आतंकवाद ने पर्यटन उद्योग को चौपट किया है। भारत में भी इसका प्रभाव पड़ा है। कश्मीर की धरती को स्वर्ग की संज्ञा दी गई है और यह अपने रोमांचक, प्राकृतिक दृश्यों, हस्तशिल्प एवं संस्कृति के कारण पर्यटकों की पसन्द रहा है। लेकिन पिछले कुछ सालों से जब से आतंक और हिंसा ने अपने पाँव पसारे हैं, यह स्वर्ग अपनी छवि खोने लगा है। पर्यटक तो दूर की बात है, यहाँ के मूलनिवासी हजारों पंडित भी हिंसा के शिकार होने के कारण अपने घरबार छोड़कर पलायन कर गये हैं। पर्यटकों को बंधक बनाने एवं आतंकवादियों द्वारा मार दिये जाने की घटनाएं भी हुई है। इन सबके प्रभाव से अनेकों विदेशी पर्यटक जो कश्मीर का भ्रमण करते थे, वहाँ की वादियों एवं वहाँ की झीलों में पर्यटन का आनन्द लेते थे और वहाँ कुछ समय ठहरकर कश्मीर के सौन्दर्य का अवलोकन करते थे, उन्होंने अब कश्मीर की हिंसा, भय और आतंकवाद के कारण अपना रूख बदल लिया है और पर्यटन व्यवसाय चौपट हो गया है।

इससे अनेकों कश्मीर वासियों की आर्थिक स्थिति बिगड़ी है। और उनके व्यवसाय खत्म प्राय: हो गये हैं। यद्यपि भारत सरकार निरन्तर कश्मीर से आतंक का सफाया करने में जुटी हैं और उसके कुछ अच्छे परिणाम आये हैं लेकिन विदेशी मुद्रा अर्जन एवं पर्यटन से कश्मीर को होने वाली आय में भारी गिरावट दर्ज की गई है। 1981 तक तो हालात इतने खराब नहीं थे और कश्मीर जाने वाले पर्यटकों की उस समय 7.22 लाख संख्या थी। लेकिन 1989 के बाद पासा पलट गया और यह संख्या घटकर 5.77 लाख पर नीचे आ गई। यहाँ तक की पर्यटकों के घटने की रफ्तार इतनी तेज हुई कि केवल 5-6 साल अर्थात् 1995-96 तक आते-आते कश्मीर जाने वाले पर्यटकों की संख्या मात्र 9300 रह गई। इसके बाद यह संख्या 3000 तक आ गई। इस प्रकार पर्यटन विकास की सबसे बड़ी चुनौती हिंसा एवं आतंक का वातावरण है।

2. **लालफीताशाही-** भारत आने वाले विदेशी पर्यटक विभिन्न भाषा-भाषी होते हैं और उन्हें सबसे पहले इमीग्रेशन एवं कस्टम विभागों की जाँच का सामना करना पड़ता है। इसमें आने वाली कठिनाईयों को दूर करने एवं प्रक्रिया में सुधार के उपाय भी जरूरी है। लालफीताशाही की समस्या को सुधारना आवश्यक है।

3. **भिखारियों की समस्या -** भारत में विशेषकर पर्यटन-स्थलों, बाजारों, पर्यटकों के ठहरने के स्थानों आदि पर भिखारियों की भीड़ लग जाती है जो उनके लिए भारी परेशानियों का सबब तो है ही साथ ही देश की छवि बिगड़ने का काम भी करता है। इससे पर्यटक परेशान होकर कई बार अपनी खरीद का कार्य रोक भी देते हैं। इसलिए कानून एवं पुलिस के द्वारा इस बुराई को दूर करने के उपाय किये जाने चाहिए।

पर्यटकों के लिए मुद्रा के परिवर्तन की भी समस्या होती है। यद्यपि होटलस् इसमें योग देते हैं लेकिन इसमें और सुधार की गुंजायश है।

4. **यातायात सुविधाएं -** पर्यटकों को रोड, रेल एवं वायु इन तीनों तरह के यातायात साधनों की आवश्यकता रहती है। पर्यटक इसलिए दूर-दराज से आकर पैसा खर्च करते हैं क्योंकि वे कम से कम समय में यात्रा करके गन्तव्य स्थान पर जाना चाहते हैं और उसकी पर्यटन यात्रा को सुखद एवं आरामदायक बनाना चाहते हैं। इसलिए यातायात के इन साधनों में सुधार एवं सुविधाएं बढ़ाने का कार्य पर्यटकों की जरूरतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। कई यात्री अपनी कारों से यात्रा करते हैं। इन्हें किसी चैक-पोस्ट या अन्य जाँच प्रक्रिया में भी कई बार असुविधाएं होती हैं। अत: बेहतर यातायात मुहैया कराना भी पर्यटन क्षेत्र का बड़ा दायित्व है।

5. **भोजन व्यवस्था -** जिस प्रकार घर में अतिथि के आने पर समुचित खान-पान की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार विदेशियों या देशी पर्यटकों को गुणवतापूर्ण एवं उचित दरों पर अच्छा भोजन उपलब्ध होना चाहिए। इसके लिए भोजन की गुणवत्ता एवं सेवाओं को लेकर पर्यटकों को होने वाली असुविधाओं को दूर करना और उन्हें भारतीय व्यंजनों का स्वाद उपलब्ध कराना भी एक कठिन काम है जिसके सुप्रबंधन की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

टिप्स् को रोकना - कई बार देखा गया है कि सेवा-शुल्क अर्थात् सर्विस-चार्जेज और होटल्स आदि में टिपस् देने का रिवाज भी पर्यटकों की परेशानी का कारण बनता है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं पर जापान अमेरिका आदि में तो कानूनन पाबन्दी है। भारत में भी पर्यटकों की इस प्रकार की छोटी-छोटी परेशानियो को दूर किया जाना जरूरी है।

6. **सौदेबाजी -** पर्यटकों की रूचि दर्शनीय स्थलों एवं पर्यटन स्थलों का भ्रमण करने के साथ-साथ किसी स्थान विशेष के हस्तशिल्प, कारीगरी की वस्तुओं, अपने परिजनों के लिए उपहार खरीदने आदि में भी रूचि होती है। लेकिन, यह देखा गया है कि इस प्रकार के बाजार पर सरकार का नियन्त्रण न होने या सरकारी उपेक्षा के कारण सौदेबाजी, एक प्रकार की ठगी या ऊँचे दामों पर पर्यटकों को माल बेचने की प्रवृति होती है। यह धोखेबाजी और सौदेबाजी भी एक बड़ी चुनौती है पर्यटकों में देश की व्यवस्था के प्रति गलत प्रभाव डालती है। अत: इसके लिए ऐसी वस्तुओं की कीमतें निश्चित की जानी चाहिए और सौदेबाजी पर पाबन्दी लगानी चाहिए।

7. **टैक्सी या यातायात की ऊँची दरें -** पर्यटकों द्वारा भ्रमण या स्थानीय स्तर पर टैक्सी या अन्य साधनों का उपयोग किया जाता है। ऐसे में, उन्हें इन साधनों द्वारा ली जाने वाली दरों का ठीक पता नहीं होता और इनसे अधिक वसूल किया जाता है। यह भी एक प्रकार की ठगी है। इसका समुचित नियमन व नियन्त्रण करना भी पर्यटन की चुनौती है।

इन चुनौतियों का सामना करके समुचित रूप से पर्यटन उद्योग को आगे बढ़ाने के लिए जन-जागृति को बढ़ाना भी जरूरी है और पर्यटन को सुचारू रूप से चलाने के लिए ठोस नीति का पालन भी आवश्यक है।

1.9 पर्यटन : एक सेवा उद्योग

अपने प्रारम्भिक काल में पर्यटन, एक स्वमेव संचालित और असंगठित कार्य रहा है। लेकिन ज्यों-ज्यों इसका विकास होता गया, पर्यटन सम्बन्धी ढाँचागत सुविधाओं के विकास की आवश्यकता बढती गई। इस युग में तो यह एक ढाँचागत सेवा-उद्योग या सर्विस इन्डस्ट्री का रूप ले चुका है। पर्यटन के साथ पर्यटन स्थलों की देखरेख, यातायात सुविधाएं, ठहरने, खाने-पीने आदि की विभिन्न आवश्यकताएं भी जुड़ गई हैं और ढाँचागत सुविधाओं को बेहतर बनाने के साथ-साथ पर्यटन एक ऐसा उत्पाद बन गया है जिसके विपणन या मार्केटिंग की भी आवश्यकता है। जिस प्रकार किसी भी उद्योग और व्यवसाय के संचालन के लिए ढाँचागत सुविधाएं जुटाना, उत्पाद तैयार करना, उनका विपणन करना आदि क्रियाएं और प्रबंधन की जरूरत होती है, ठीक वैसे ही पर्यटन एक लाभकारी उद्योग है जिसके ठीक प्रबंधन में उद्योग से सम्बन्धित सभी उपाय करने अनिवार्य बन गये हैं। लगातार पर्यटन स्थलों को सुधारने और देखभाल के साथ पर्यटन से जुड़ी सेवाओं को चुस्त-दुरूस्त करके ही इस उद्योग के विकास को गतिशील बनाना सम्भव हो सकता है।

पर्यटन, ऐसा उत्पाद या प्रोडक्ट है जिसमें कई अन्य सेवा उद्यमों का योग सम्मिलित है। इससे अभिन्न रूप से जुड़े उप-उत्पादों या सब-प्रोडक्ट्स में टूर ऑपरेटर्स एवं ट्रेवल एजेन्सियाँ, होटलस्, केटरिंग, यातायात के समस्त साधक, मनोरंजन एवं हस्तशिल्प आदि के व्यवसाई आदि के सम्मिलित हैं। पर्यटन का स्वरूप लघु उद्योग का भी है और बड़े उद्योग का भी। जैसा कि चर्चा की जा चुकी है इस उद्योग का आवास, यातायात, आतिथ्य सेवाओं, संचार नेटवर्क, गाईड सुविधाओं आदि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। इसलिए पर्यटन विकास तभी सम्भव है जबकि इन सब उद्योगों का भी विकास हो और ये अपनी-अपनी भूमिका और दायित्व का ठीक निर्वहन करें। आज का पर्यटन इन्हीं अन्तर-सम्बन्धों से युक्त ढाँचे पर खड़ा है। हर सेवा उद्योग की अहमियत को समझकर उसके स्वरूप को वर्तमान की आवश्यकताओं से जोड़कर ही पर्यटन को प्रभावपूर्ण दिशा देना मुमकिन है। पर्यटकों की सुविधा को संयोजित रूप से प्रमुखता देकर ही ये सेवा-उद्योग अपने काम और पर्यटन लक्ष्यों की पूर्ति में सफल हो सकते हैं।

1.10 पर्यटन की वर्तमान दशा-दिशा

पर्यटन का क्षेत्र हर आयु, हर आर्थिक वर्ग एवं हर दर्जे के लोगों की आवश्यकता है। इसके पीछे तो प्रेरक शक्तियाँ है उनके कारण देश-विदेश के लोग पर्यटन यात्राऐ करते हैं और सदियों से संचालित पर्यटन ने आधुनिक युग में तो विस्तार से फैले हुए एक विशाल उद्योग का

रूप धारण कर लिया है। दुनियाँ में कई देशों का तो पर्यटन उद्योग ही आर्थिक आधार बन गया हे। सर्वाधिक आर्थिक लाभों जैसे क्षेत्रीय विकास, विदेशी मुद्रा अर्जन, व्यापार एवं यातायात जैसे ढाँचागत विकास, जीवनस्तर में सुधार, हस्तशिल्प एवं परम्परागत लोककलाओं के विकास आदि में महत्त्वपूर्ण योग देने वाला एक कारक बन गया है। संचार, यातायात, आवास सुविधाओं एवं उपभोक्ता सेवाओं के विस्तार में भी यह सहायक सिद्ध हुआ है। इस प्रकार पर्यटन का व्यापक प्रभाव पड़ता है और यह देश की छवि को बेहतर बनाने में भी सहायक होता है।

इस प्रकार विभिन्न सेवाओं के साथ पर्यटन एक ऐसा उद्योग है जिसका विकास करने में हर देश प्रयत्नशील है। पर्यटन का सीधा असर देश के होटल्स, रेस्तरां, यातायात, खान-पान, बाजार पर देखा जा सकता है। इसके अलावा पर्यटन से अप्रत्यक्ष रूप से भी कई लोगों को लाभ होता है। प्राप्त आंकड़ों को देखें तो ज्ञात होगा कि जहाँ सोफ्टवेयर उद्योग से भारत को सालाना कुल विदेशी मुद्रा की बचत 4,500 करोड़ रू. होती है, वहीं पर्यटन से होने वाली विदेशी मुद्रा की आय लगभग 12,000 करोड़ रू. वार्षिक है। इस प्रकार देश की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण हिस्सेदारी के कारण पर्यटन का दर्जा बहुत बढ़ गया है।

दुनियाँ के कई देशों में आय अधिक होने के कारण वे बहुत सम्पन्न हैं। इसलिए वे अपनी कामकाज की व्यस्त जिन्दगी में कुछ क्षण आराम के बिताने या मनोरंजन एवं परिवर्तन के लिए पर्यटन यात्राएं करते है। इससे अधिक आय पैदा करने वाले देशों से कम आय वाले देशों की और कुछ आय का स्थानान्तरण होता है। लेकिन यह प्रक्रिया विभिन्न सेवाओं एवं क्षेत्रों के माध्यम से सम्पन्न होती है। इस कारण इसका प्रत्यक्ष एवं तुरन्त आर्थिक प्रभाव महसूस नहीं किया जाता है। कश्मीर या अन्य ऐसे स्थानों पर जहाँ पर्यटन कभी ऊँचाईयों पर या लेकिन आज वह दयनीय स्थिति में पहुँच गया है, वहाँ के दुकानदारों, शिल्पियों, होटल या शिकारा या यातायात के क्षेत्रों में कार्यरत लोगों से पर्यटन के प्रभाव पर बात की जाये, तो यह स्पष्ट होगा कि आर्थिक दृष्टि से पर्यटन कितना महत्त्वपूर्ण है।

पर्यटन न केवल आर्थिक समृद्धि एवं रोजगार वृद्धि में सहायक है बल्कि व्यापार, सेवाओं आदि कई क्षेत्रों में अपना योगदान देता है। यहाँ कारण है कि पर्यटन उद्योग विकासोन्मुख है और इसका महत्त्व निरन्तर अनुभव किया जा रहा है। भारत में इस समय पर्यटन 4,000 करोड़ रू. का उद्योग है जिसमें 5.8 मिलियन लोगों को रोजगार प्राप्त है। साथ ही बिना कोई सामान निर्यात किये, केवल सेवाओं के माध्यम से विदेशी मुद्रा का भी यह अच्छा स्रोत है। इन कारणों से पर्यटन की दशा और दिशा उज्ज्वल भविष्य लिए हुए है यद्यपि अभी बहुत कुछ प्रयत्न करने बाकी हैं।

पर्यटन के आर्थिक और सामाजिक लाभ तो हैं ही लेकिन सांस्कृतिक विरासत की देखभाल एवं संवर्द्धन में भी सहायक है क्योंकि पर्यटन के लाभदायक कार्य से जुड़ने के बाद किसी भी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के स्थल के प्रति उदासीनता की प्रवृति खत्म होती है और उसकी सार सम्भाल के कुछ प्रयत्न भी होते हैं। विभिन्न देशों के लोगों के पर्यटन से देशों के बीच बेहतर समझ और सम्पर्क बनते हैं और राजनैतिक सम्बन्धों में भी सुधार होता है। यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के लिहाज से भी लाभप्रद है।

अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन के विचार है कि भारत, दुनियाँ का एक ऐसा देश है जिसमें हर वर्ग के लोगों की कभी खत्म न होने वाली रूचि हो सकती है चाहे वह किसान हो, बुद्धिमान हो

या साधारण व्यक्ति, गरीब हो या सम्पन्न, जिसने इसकी एक झलक देख ली, वह उसे अपने दिल में बसा लेता है और किसी भी हाल में उसे विस्मृत नहीं करता हैं। इसी प्रकार मैंक्समूलर ने कहा है कि दुनियाँ में कहीं मनुष्य का मस्तिष्क सर्वाधिक हुआ है तो तो वह भारत है। समृद्धि, शक्ति, सौन्दर्य और प्राकृतिक छटा में अद्वितीय, भारत को उसने धरती पर स्वर्ग बताया है।

बहरहाल भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विशेषताओं, अपार सांस्कृतिक धरोहर, विविधतापूर्ण जनजीवन, रंगों भरे उत्सवों और त्यौहारों, लोकजीवन आदि के साथ पर्यटन के प्रति बदले सरकारी दृष्टिकोण एवं अन्य धारणाओं में परिवर्तन के कारण पर्यटन उद्योग के विकास की सम्मावनाएं बढ़ी है और लगता है आने वाले समय में इन उपायों के कारण भारत की पर्यटन भागीदारी में इजाफा होगा।

1.11 सारांश

भारतीय सन्दर्भ में पर्यटन पर एक दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट है कि भारत पर्यटन विकास की अनेक सम्भावनाओं वाला देश है। यहाँ रीति-रिवाजों और मेंलों, त्यौहारों, उत्सवों की लम्बी श्रृंखला साल भर जारी रहती है। विविधतापूर्ण सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का भी भारत धनी है। विशेष बात यह है कि हर रूचि के पर्यटक के लिए यहां अपार खजाना है। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि भारतीय संगीत में एक जादू है और यहाँ के नृत्यों में एक लय है जो किसी का भी मन मोह ले। प्राचीन इमारतें, लोकगीत, संगीत-वाद्यों की घुनें, सरल सीधे एवं शान्ति, जनजीवन, झीलें, पर्वत, नदियाँ, अभयारण्य, वन्य जीवन आदि अनेक ऐसे पक्ष हैं जो हर किस्म के पर्यटक की भारत यात्रा को रोमांचक एवं सार्थक बना दे।

भारत के कई चेहरे हैं और हर चेहरा मोहक है। इसमें एक ऐसा आकर्षण है जो कभी खत्म नहीं हो। केरल और गोवा के समुद्र तट है, राजस्थान में जैसलमेंर के रेतीले टीलों की खामोशी और लोक ररंगीत की लहरें हैं, बिहार में बौद्ध धर्म के तीर्थ हैं, महाराष्ट्र में बौद्ध गुफाएं, उत्तर प्रदेश में प्रयागराज है, क्या-क्या सूचीबद्ध करें-विविधता का आलम ही कुछ ऐसा है कि इसका फलक अत्यन्त व्यापक है।

इन सब के बावजूद, भारत में आधुनिक अर्थों में पर्यटन विकास का कार्य आजादी के कुछ वर्षों बाद शुरू हुआ। पश्चिमी देशों ने अपने सामाजिक एवं आर्थिक लाभों के लिए यह काम पहले ही शुरू कर दिया था। भारत में पर्यटन के विकास में विलम्ब के ऐतिहासिक कारण भी रहे हैं। वास्तव में, भारत में पर्यटन ने 1960 के बाद संगठित प्रयास के रूप में गति पकड़ी। एक बार एक पर्यटन विभाग के अधिकारी से इस सन्दर्भ में पूछा गया तो उसका उत्तर हल्केपन के साथ था। उसका मत था कि "मौज, मजा और विदेशी मुद्रा" यहाँ पर्यटन का लक्ष्य है। लेकिन यह पर्यटन दृष्टि से अपरिपक्व उत्तर है। दरअसल, भारत में पर्यटन का आधार, यहाँ का वैभवशाली इतिहास और संस्कृति है। भारत, जहाँ प्राचीनतम सांस्कृतिक धरोहर का खजाना है और एक समृद्ध एवं लम्बा इतिहास, वहाँ पर्यटन को इनसे अलग करके नहीं देखा जा सकता है। भारत, एक ऐसा देश जहाँ हजारों विदेशी आक्रमणकारी आये, विध्वंस किये, अपनी सत्ता जमाई और यहाँ की संस्कृति को नष्ट करने का प्रयास किया, वह आज भी अपनी सम्पूर्ण विविधताओं, सभी जातियों, धर्मों आदि के साथ सामंजस्यपूर्ण शान्त व्यवहार के साथ अडिग खड़ा है। कोई बात है कि हजारों सालों से यह सांस्कृतिक धारा प्रवाहमय है। कोई बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। इसी

विशेषता, प्राकृतिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विविधता में एकता के कारण आज भी भारत, पर्यटकों के लिए एक आश्चर्य बना हुआ है और इसके मोहक रंग उन्हें यहाँ खींच लाते हैं।

भारत में आजादी से पूर्व 1945 में भी पर्यटन विकास के बारे में सोचा गया था लेकिन विश्वयुद्ध ने इस विचार पर पूर्ण विराम लगा दिया। उस समय पर्यटन सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए सर जोहन सारजेन्ट कमेंटी बनी थी। उस कमेंटी को पर्यटन की प्रकृति एवं भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों के बारे में समीक्षा करनी थी तथा पर्यटन विकास के लिए जरूरी सुविधाए तैयार करने एवं पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए प्रचार प्रसार के तरीके बताने के लिए कहा गया था। इस कमेंटी ने 1946 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

उक्त कमेटी ने भारत में घरेलु एवं विदेशी पर्यटन को बढ़ावा देने की आवश्यकता प्रतिपादित की तथा पर्यटन प्रोत्साहन से होने वाले राजस्व एवं अन्य फायदों का जिक्र किया। साथ ही पर्यटन विकास के लिए अलग संगठन की रचना करने का भी सुझाव दिया। साथ ही ढाँचागत सुविधाएं बढ़ाने एवं प्रचार प्रसार की व्यूह-रचना के उपाय भी बताये।

भारत की आजादी के बाद देश में सांस्कृतिक एवं अन्य प्रकार की सम्भावनाएं भी थीं और साधन भी थे लेकिन केन्द्र स्तर कोई ऐसा पर्यटन संगठन नहीं था जो पर्यटन को दिशा और गति प्रदान करे। 1949 में टूरिस्ट ट्राफिक ब्राँच खोली गई। सार्जेन्ट कमेंटी की सिफारिशों के अनुरूप दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता जैसे महानगरों में पर्यटन शाखाएं खोली गई।

1955-56 में टूरिस्ट ट्राफिक सम्भाग का विस्तार किया गया। टूरिस्ट ट्राफिक सेक्शन, प्रशासनिक, प्रचार, वितरण आदि शुरू किये गये। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटक सूचना केन्द्र की स्थापना इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम था। 1955 के अन्त तक देश में ऐसे 9 केन्द्र हो गये। इसके बाद विदेशों में भी सूबना कार्यालय खोले गये। 1958 में परिवहन मंत्रालय के अन्तर्गत अलग से पर्यटन विकास खुला। इसके महानिदेशक एवं निदेशकों को पर्यटन विकास का काम सौंपा गया। 1967 में पहली बार अलग से पर्यटन मंत्रालय बना। इस प्रकार आजादी के 18 साल बाद पर्यटन मंत्रालय और विभाग का अलग से वजूद बना।

इस प्रकार गत तीन चार दशक की अवधि में ही पर्यटन मंत्रालय, विभाग और राज्यों के पर्यटन विभागों का प्रसार भी हुआ और भारत में पर्यटन को भी एक नई दिशा दी गई। इसके परिणाम भी आये हैं। भारत में पर्यटन की ढाँचागत एवं अन्य सभी दृष्टियों में प्रगति हुई है। पर्यटन सुविधाएं बढ़ी हैं। पर्यटकों की आवक भी बढ़ी है। यद्‌यपि अभी भी काफी प्रयास करने होंगे क्योंकि सम्भावनाओं के अनुरूप भारत का दुनिया के पर्यटन में हिस्सा बहुत कम है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में पर्यटकों की संख्या, उनके लक्ष्य, प्रकार आदि विविध पक्षों के आकड़े एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करने का भी प्रयास किया जाता है। यह सच है कि संस्कृति, इतिहास, कला, स्थापत्य आदि कई गंभीर विषयों को लेकर अधिकांश पर्यटक नहीं आते हैं। इस दुनियाँ में अधिक लोग भागदौड़ की जिन्दगी बिताते हैं और वे कम समय में बहुत कुछ बहुत ही आराम एवं सरलता से देखने के इच्छुक होते हैं या केवल मनोरंजन, समय परिवर्तन एवं आनन्द के लिए पर्यटन का सहारा लेते हैं। लेकिन ऐसे पर्यटकों की भी कमी नहीं है जिनकी रूचि सांस्कृतिक विविधता में होती है।

बहरहाल, वर्तमान पर्यटन परिदृश्य की समीक्षा एवं विश्लेषण से कई निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और भारतीय पर्यटन के विकास को गति दी जा सकती है ताकि सांस्कृतिक महत्त्व के स्थलों का विकास हो, आर्थिक लाभ हो, रोजगार में भी वृद्धि हो और भारतीय पर्यटन का विश्व सन्दर्भ में हिस्सा भी बढ़ सके।

पर्यटन विकास की दिशा में कमियाँ भी हैं और चुनौतियाँ भी। लेकिन एक संकल्प के साथ आगे बढने की इच्छा हो तो रास्ता सुगम होता जाता है। अपेक्षा है कि भारतीय पर्यटनन आने वाले समय में अपनी नींव को और अधिक ठोस कर पायेगा और पर्यटन सम्भावनाओं का उपयोग ठीक से कर पाने में समर्थ होगा।

1.12 उपयोगी साहित्य

1. Tourism Policy, Planning, Strategy, K.C. Sharma, Pointer Publishers, Jaipur, 1996.
2. Fundamentals of Tourism & Indian Religion, Chamanlal Raina, Abhinav Raina, Kanishka Publishers, Distributors, New Delhi, 2005.
3. Dyanamics of Tourism, R.N. Kaul, Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 1985.
4. Tourism in India, Trends & Issues, S. Sharmarajan & Rabindra Seth, Haranand Publications, New Delhi, 1994.

1.13 अभ्यास प्रश्न

1. पर्यटन की आपके अनुसार अवधारणा क्या है और इसका क्या अर्थ है?
2. पर्यटन की प्रेरक शक्तियों का वर्णन कीजिए?
3. पर्यटन विकास के लिए जनसहयोग क्यों जरूरी है?
4. पर्यटन विकास में क्या-क्या समस्याएं है?
5. पर्यटन की वर्तमान दशा एवं दिशा पर प्रकाश डालिए।

इकाई - 2 : पर्यटन उत्पादों का वर्गीकरण

रूपरेखा :

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विभिन्न पर्यटन उत्पाद

2.3 विश्व पर्यटन में भारतीय हिस्सेदारी

2.4 पर्यटन उत्पाद

- 2.4.1 हस्तकलाएं
- 2.4.2 संग्रहालय और स्मारक
- 2.4.3 मेले, त्यौहार और उत्सव
- 2.4.4 संगीत, नृत्य एवं प्रदर्शनात्मक कलाएं
- 2.4.5 वन्य जीवन, अभयारण्य एवं उद्यान

2.5 आवास के लिए सुविधाएं

- 2.5.1 भारतीय व्यंजन

2.6 यातायात

- 2.6.1 पैलेस ऑन व्हीलस्
- 2.6.2 विभिन्न पर्यटन उत्पाद प्रयोग

2.7 उत्पादों का प्रचार-प्रसार

2.8 उत्पादों की मार्केटिंग

2.9 पर्यटन उत्पादों की विशेषताएं

2.9.1 व्यूह-रचना

2.10 सारांश

2.11 उपयोगी साहित्य

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

पर्यटन उद्योग, एक बहुआयामी उद्योग है। इससे कई उद्योग जुड़े हुए हैं। ये विभिन्न उद्योग पर्यटन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ये सेवाएं या वस्तुएं किसी स्थान विशेष पर पर्यटकों को आकर्षित करने में योग देती हैं और इनका स्थानान्तरण सम्भव नहीं होता। ये वस्तुएं एवं सेवाएं स्थान विशेष पर खरीदकर पर्यटक इनका वहीं उपयोग करते हैं। पर्यटन उत्सवों की मांग उनकी गुणवत्ता के स्तर और पर्यटकों की आय पर निर्भर करती है। इस इकाई का लक्ष्य आपको इस बात से अवगत कराता है कि पर्यटन उद्योग के संचालक वे कौन से तत्त्व (कम्पोनेन्ट्स) हैं जो पर्यटक की पर्यटन यात्रा में मदद करते हैं। ऐसी क्या-क्या वस्तुऐं एवं सेवाऐं हैं जो वह खरीदता है। उन सबको पर्यटन उत्पाद की संज्ञा दी गई है। इन विभिन्न उत्पादों का यहाँ वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

पर्यटन उत्पादों को तीन प्रमुख भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं - (1) पर्यटक के गन्तव्य स्थल (डेस्टीनेशन) का आकर्षण जिसमें उस स्थान विशेष की पर्यटक के मस्तिष्क में बनी छवि भी शामिल है। (2) उस स्थान पर उपलब्ध सुविधाएं जैसे ठहरने का स्थान (एकोमोडेशन), खान-पान सुविधाएं (केटरिंग), मनोरंजन की व्यवस्थाएं एवं (3) गन्तव्य तक पहुँचने के लिए साधनों की उपलब्धता।

जैसा कि आप जानते हैं कि कोई उद्योग जो उत्पाद बनाता है, उन्हें वह उपभोक्ताओं तक पहुँचाता है जो उन्हें खरीदते हैं। यहाँ पर्यटक, एक प्रकार का खरीददार है जो अधिकांशत: सेवाएं खरीदता है अर्थात् जिन सेवाओं का वह उपयोग करता है उनके लिए सेवाएं प्रदान करने वालों को उनके काम की कीमत चुकाता है। यहाँ आपका उन विभिन्न उत्पादों से साक्षात्कार कराया जायेगा और इनको वर्गीकृत किया जायेगा।

2.1 प्रस्तावना

पर्यटन के विभिन्न उत्पादों में किसी स्थान विशेष पर उपलब्ध आकर्षण, आवास-सुविधा, यातायात के साधन एवं मनोरंजन की व्यवस्थाएं, प्रमुख रूप से शामिल हैं। इसे पर्यटन की भाषा में संयुक्ता रूप से "पैकेज" भी कहते हैं जो सभी उत्पादों या सेवा उत्पादों का मिलाजुला रूप होता है। इस प्रकार पर्यटन उद्योग के उत्पादों में सेवाओं की एक सम्पूर्ण व्यवस्था सम्मिलित है। उस पर्यटन उद्योग के उत्पादों की एक लम्बी श्रृंखला है जिसकी अलग-अलग वर्गों में विस्तार से चर्चा आवश्यक है।

इस इकाई में यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जहाँ तक पर्यटकों के मस्तिष्क में इनकी पसन्द के गन्तव्य स्थल के आकर्षण का प्रश्न है, भारत में विविध प्रकार के आकर्षण से भरपूर स्थल है जैसे शिल्प से पूर्ण मंदिर, महल, दुर्ग, स्मारक, प्रकृति एवं वन्य जीवन से आबाद अभयारण्य एवं उद्यान, विभिन्न त्यौहार, शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य शैलियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार का लोकजीवन एवं एक समृद्ध संस्कृति आदि। ये गन्तव्य किसी भी पर्यटक को अपने आकर्षण से मन्त्रमुग्ध करने की क्षमता रखते हैं। पर्यटन के महत्व को समझते हुए ढाँचागत सुविधाओं जैसे आवास एवं खानपान के लिए होटलस् रेस्तरां आदि के क्षेत्र में भी विभिन्न आय वर्ग के पर्यटकों के लिए पर्यटन स्थलों पर सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर सुविधाओं में काफी सुधार एवं विकास हुआ है। सड़क, वायु एवं रेल यातायात सेवाओं के विकास को भी निरन्तर गति दी जा रही है। इस प्रकार पर्यटन के लिए आवश्यक सुविधाओं अर्थात् पर्यटन उत्पादों की उपलब्धता के बावजूद पर्यटन की दृष्टि से प्रगतिशील देशों की तुलना में हम कहाँ खड़े हैं? इस प्रश्न की तह में जाने के साथ-साथ यह देखने का प्रयास करेंगे कि अलग-अलग उत्पादों में कहाँ कुछ सुधार की कितनी जरूरत है जिसे बेहतर बनाकर हम पर्यटन उद्योग को और आगे बढ़ाने में समर्थ हो सकते हैं?

2.2 विभिन्न पर्यटन उत्पाद

पर्यटन उत्पादों के वर्गीकरण की श्रृंखला में पहला महत्त्वपूर्ण उत्पाद गन्तव्य स्थल का आकर्षण एवं पर्यटकों के मानस में उसके प्रति रूझान है। यहाँ यह देखना होगा कि आमतौर से इस रूझान और आकर्षण के प्रमुख बिन्दु क्या है? इसमें रूचि के अनुरूप एक श्रेणी उन पर्यटकों की होती है जो ऐसे स्थलों के प्रति रूझान रखते हैं जो सदियों पुरानी अर्थात् प्राचीन संस्कृति के

वैभव से उनका साक्षात्कार करा सके। इसके इस आकर्षण के केन्द्र पुरातात्विक-स्थल, ऐतिहासिक भवन, स्मारक, संग्रहालय, धार्मिक-स्थल आदि होते हैं।

एक और श्रेणी ऐसे पर्यटकों की होती है जिनके मन में किसी देश के राष्ट्रीय उत्सवों, त्यौहारों, पर्वों और वहाँ के हस्तशिल्प, संगीत, नृत्यों, लोकजीवन, मान्यताओं, रीति-रिवाजों के प्रति रूझान होता है। तीसरी श्रेणी ऐसे पर्यटकों की होती है जो राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों आदि में मुक्ता विचरण करते वन्य-जीवन या आकाश में उड़ान भरते विभिन्न पक्षियों, समुद्री-तटों या पर्वतीय स्थलों आदि के मोहक प्राकृतिक जीवन के प्रति आकर्षण लिए होते हैं। कुछ पर्यटकों का लक्ष्य मात्र मनोरंजन और मौज-मरती होता है। वे खेलों, चिड़ियाघरों, सिनेमा-थियेटर मनोरंजन पार्कों आदि में घूमने, मनोरंजन, खाने-पीने और इस प्रकार के आनन्द तक सीमित रहते हैं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण उत्पाद होता है - पर्यटन स्थल तक पहुँच के लिए उपयुक्त और आरामदायक साधन जिनमें रेल, रोड, वायुमार्गों से यातायात के साधन शामिल हैं। इसके बाद क्षमता अनुरूप आरामदायक आवासीय व्यवस्था अर्थात् होटल और खानपान के लिए उपयुक्त व्यवस्था भी जरूरी उत्पाद होता है। इस परिप्रेक्ष में भारतीय पर्यटन पर दृष्टि डालें तो यहाँ वह सब कुछ उपलब्ध है और विविधता एवं समृद्धि के साथ है जो किसी भी रूचि के पर्यटकों के लिए आकर्षण से भरपूर हो सकता है।

इस सन्दर्भ में मेंक्समूलर ने भारत में पर्यटन के आकर्षण के बारे में अपने जो विचार रखे हैं, वे यह स्पष्ट करने के लिए काफी है कि यहाँ पर्यटन की अपार सम्भावनाओं का भंडार है। वे कहते हैं कि "यदि हम दुनिया में ऐसे देश की तलाश करें जो सौन्दर्य, समृद्धि एवं शक्ति से पूर्ण हो और प्रकृति ने जिसे अपार सम्पदा और सुन्दरता प्रदान की है और उसे धरती का स्वर्ग कहा जा सकता है तो मेंरा इशारा भारत की ओर होगा। यदि मुझे यह संकेत देना पड़े कि दुनिया के किसी भाग में कुदरत ने मानव मस्तिष्क के विकास का सर्वाधिक उपहार कहाँ दिया है तो मैं भारत का नाम लूँगा।" इस कथन का तात्पर्य यह है कि भारत सौन्दर्य और सांस्कृतिक दृष्टि से वैभवशाली देश है।

भारत के आकर्षण का एक कारण यह भी है कि यहाँ सब प्रकार के मौसम होते हैं। भौगोलिक विविधता भी है - कहीं पर्वत, कहीं बर्फ, कहीं रेगीस्तान आदि और यहाँ की सांस्कृतिक प्राचीन परम्परा तो मुख्य आकर्षण है ही।

सांस्कृतिक समृद्धि एवं प्राचीनता के अलावा यहाँ देश के विभिन्न भागों में विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों, नृत्यों, संगीत, शास्त्रीय संगीत नृत्यों एवं लोकजीवन की मोहक विविधता है। रोमांचक दृश्यों, मनोरंजन एवं मौज-मस्ती के साधनों की भी कमी नहीं है। पुरातात्विक स्थलों में अति प्राचीन मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा, बौद्धकालीन एवं अन्य प्राचीन पुरातात्विक स्थलों का बाहुल्य है। नृत्यों संगीत एवं त्यौहारों, उत्सवों की लम्बी परम्परा है। ऐसे में पर्यटन उद्योग के समस्त उत्पादों के कारण यहाँ पर्यटन के लिए सम्भावनाओं का विस्तृत फलक है।

इस प्रकार वे सभी उत्पाद प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के बावजूद भारतीय पर्यटन का विकास उपेक्षाओं के अनुरूप होना अभी शेष है। इसलिए विभिन्न पर्यटन उत्पादों के वर्गीकरण के माध्यम से यह देखने की कोशिश की जायेगी कि किस उत्पाद पर कितना अधिक बल दिया जाये ताकि पर्यटन उद्योग के विकास को ठीक व्यूह-रचना तैयार हो सके और यह और अधिक गति

पकड़ सकें। पर्यटन उत्पादों के वर्गीकरण से पूर्व विश्व परिदृश्य में भारत की पर्यटन में हिस्सेदारी और इसमें अपेक्षाकृत कमी का विश्लेषण संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना भी सामयिक होगा।

2.3 विश्व पर्यटन में भारतीय हिस्सेदारी

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् 1951 में भारत भ्रमण पर आने वाले पर्यटकों की संख्या मात्र 17,000 थी। इसके बाद 1955 में व्यवस्थित रूप से किये गये पर्यटन विकास के प्रयासों से यह संख्या लगभग तीन दशक बाद 1980 में 800150 पर पहुँच गई। इसमें पाकिस्तान एवं बांग्लादेश के पर्यटकों को जोड़े तब यह संख्या 1,101,657 थी। इसके बावजूद भारत की विश्व-पर्यटन में हिस्सेदारी मात्र 0.39 प्रतिशत थी। उसके बाद स्थितियाँ बहुत बदली हैं लेकिन आज भी इस सन्दर्भ में भारत की स्थिति सन्तोषप्रद नहीं है।

एक ऐसे सम्भावनाओं से पूर्ण देश में जहाँ प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित अपार पर्यटन उत्पाद है। जहाँ के भ्रमण से पर्यटकों पर इस समृद्ध संस्कृति की छाप पड़ती है, वहाँ सम्प्रेषण की भी अंग्रेजी भाषी पर्यटकों के लिए कोई कठिनाई नहीं है। फिर आखिर क्या कारण है कि यहां पर्यटन अपेक्षित गति नहीं पकड़ पा रहा है।

इस प्रसंग भारतीय योजना आयोग ने 6वीं पंचवर्षीय योजना में महसूस करते हुए कहा था कि घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन के महत्त्व को सामाजिक एवं आर्थिक हितों की तेजी से रचना करने के सन्दर्भ में समझा गया है। इससे आर्थिक दृष्टि से लाभ के साथ राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर समझ एवं सम्बन्ध बनाने में भी सहायता मिलती है। बावजूद पर्यटन को मान्यता देने के लिए पर्यटन विकास के 1980-85 की अवधि के लिए पर्यटन विकास के लिए मात्र 1874.4 मिलियन रू. की राशि का प्रावधान रखा गया। इस प्रकार पर्यटन के विकास के लिए विभिन्न पर्यटन उत्पादों के लिए समुचित प्रोत्साहन की व्यवस्था का अभाव वह प्रमुख कारण है जो यहाँ के वैभव से पूर्ण सांस्कृतिक एवं अन्य सम्भावनाओं वाले आकर्षण के उपयोग में बाधा है। आकर्षण कितना ही सशक्त हो, यदि अन्य उत्पादों से तालमेल और संयोजन की कमी है तो पर्यटन की गाड़ी रफ्तार से आगे नहीं बढ़ सकती।

2.4 पर्यटन उत्पाद

पर्यटन उत्पाद अन्य उद्योगों की तरह ही वे सेवा उत्पाद हैं जिनकी पर्यटकों को आवश्यकता होती है। हर उत्पाद के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के पर्यटकों की अलग-अलग मांग होती है। इस तथ्य की रोशनी में भारतीय पर्यटन सम्भावनाओं की चर्चा करें तो लगेगा कि उत्पादों का एक व्यापक और विस्तृत क्षेत्र यहाँ मौजूद है। लेकिन जिस प्रकार किसी उद्योग में उत्सवों का समुचित एवं व्यवस्थित कारगर विपणन न हो तो उन्हें बाजार में अधिक बेचना सम्भव नहीं होता। इसी प्रकार पर्यटन सेवाओं या उत्पादों का सम्पूर्ण, सन्तुलित एवं कारगर संयोजन करके उन्हें खरीद के इच्छुक लोगों तक पहुँचाना या उन्हें इन उत्पादों के उपयोग के लिए उत्प्रेरित किये बिना पर्यटन उद्योग का अपेक्षित विकास सम्भव नहीं है। गन्तत्व स्थलों के आकर्षण से बात शुरू करें तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह एक ही उत्पाद इतना वजनदार और शक्तिशाली है कि पर्यटन विकास को रफ्तार देने में योग दे सकता है।

2.4.1 हस्तकलाएं

जैसा कि बताया जा चुका है कि पर्यटकों के अपने-अपने रूझान होते हैं लेकिन यह आम प्रकृति होती है कि किसी देश में पर्यटन के लिए चाहे किसी भी दृष्टिकोण को लेकर कोई पर्यटक आये, उसकी रूचि इस बात में भी होती है कि वह अपने सगे-सम्बन्धियों, मित्रों के लिए या अपने घर की सजावट के लिए या उपयोग के लिए कुछ हस्तशिल्प या सजावट की वस्तुएं खरीदें। कुछ उपहार खरीदें जो देश विशेष की अपनी विशेषता होती है। इस सन्दर्भ में हस्तशिल्प की समृद्ध परम्परा भारतीय सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। भारत के विभिन्न कलात्मक रंग-बिरंगे हस्तशिल्प वस्त्र, आभूषण, दरियाँ, नमदे, लकड़ी से बना शिल्पगत हस्तशिल्प धातु, पत्थर, टेक्सटाईल्स, कशीदाकारी एवं शॉल, सोना-चाँदी का जरी शिल्प, हाथीदाँत का शिल्प, लोकचित्रण आदि पर्यटकों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र होते हैं। इस प्रकार 'कल्वरल शॉपिंग' के लिए भी भारत अत्यन्त समृद्ध है।

2.4.2 संग्राहलय और स्मारक

भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध देश रहा है और दुनिया भर के पर्यटकों के मन में भारत भ्रमण के आकर्षण का यह प्रमुख बिन्दु सदैव रहता हैं। यहाँ की प्राचीन संस्कृति से साक्षात्कार करने के लिए भारत में बड़े पैमाने पर ऐतिहासिक स्मारक और संग्रहालय हैं जो विश्व की इस प्राचीनतम संस्कृति की धरोहर का परिचय देते हैं।

भारत का मूर्तिशिल्प, स्थापत्य एवं जटिल कारीगरी से पूर्ण, प्रतीकों, मान्यताओं एवं आस्थाओं को संजोये हुए एतिहासिक स्मारक भी पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र हैं। चाहे ताजमहल का शिल्प हो, बौद्ध गया या राजगीर में बौद्ध धर्म के प्राचीन अवशेष हों, या अजन्ता और एलोरा की गुफाएं हों, जयपुर की नगर नियोजन खूबियाँ हो, चितौड़गढ़ का दुर्ग हो, माऊन्ट आबू के जैन मंदिर हो या रणकपुर के भव्य मंदिर, इतनी विशाल पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक सांस्कृतिक विरासत शायद ही किसी प्राचीन संस्कृति की शेष मिले। कोणार्क हो या लालकिला हो या भित्ति-चित्रण से पूर्ण शेखावाटी की पुरानी हवेलियाँ सब कुछ इतना विस्तार और शिल्प-सौन्दर्य से पूर्ण है कि इनका आकर्षण किसी भी पर्यटक को अपनी ओर खींचकर लाने की क्षमता रखता है।

कश्मीर, श्रीनगर, पहलगाँव, नैनीताल, हिमालय की नदियों का अलग ही परिदृश्य और आकर्षण है।

2.4.3 मेले, त्यौहार, उत्सव

भारत में पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र यहाँ के विभिन्न प्रदेशों के मेले, त्यौहार और उत्सव भी हैं जो भारतीय संस्कृति एवं लोक संस्कृति के अनेक पक्षों की रोचक झलक प्रस्तुंत करते हैं और जीवन की सरस अभिव्यक्ति की भारतीय समाज की विशेषताओं का परिचय देते हैं। फिर चाहे वह पुष्कर का धार्मिक मेला हो, महाकुम्भ मेंला हो, दीपावली, होली, गणेश चतुर्थी, मैसूर का दशहरा या कोई और उत्सव और त्यौहार है। पर्यटकों को अपने आकर्षण के मोहपाश में बाँधने की क्षमता रखते हैं।

2.4.4 संगीत, नृत्य एवं प्रदर्शनात्मक कलाएं

भारतीय परिवेश में पर्यटकों के मन को झकझोर देने एवं उन्हें आकर्षण के चुम्बक से खींचने की अद्भुत क्षमता है। भारत का हस्तशिल्प और उसके रंग तो रोमांचक है लेकिन भारत की शास्त्रीय नृत्य एवं संगीत शैलियाँ और यहाँ की जीवन्त प्रदर्शनात्मक कलाएं भी अपने आप में आकर्षण के विशेष केन्द्र हैं। भारतीय संस्कृति का यह पक्ष भी अत्यधिक समृद्ध एवं सबल है। विविधता की दृष्टि से भारतीय संस्कृति का हर पक्ष अद्भुत है।

2.4.5 वन्य जीवन, अभयारण्य एवं उद्यान

भारत में वन्य जीवन एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी पर्यटकों के लिए भी विविधतापूर्ण माहौल है। सवाईमा में शेरों की शेरगाह और प्राकृतिक जीवन से भरपूर रणथम्भोर वन्य उद्यान, भरतपुर का पक्षी विहार, सरिस्का और ऐसे ही कई अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान हैं जो पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण रखते हैं। वन्य जीवन के संरक्षण एवं संवर्द्धन की प्राचीन परम्पराओं के साथ भारत में विविध प्राकृतिक सम्पदा और वन्य जीवन की समृद्ध झलक पाने के लिए अनेक पर्यटक भारत का रूख करते हैं।

इस प्रकार एक नहीं अनेक विशेषताओं के कारण गन्तव्य के आकर्षण एवं पर्यटकों के मन में बसे आकर्षण की बात करें तो भारत का गन्तव्य (डेस्टीनेशन) विश्वभर में अपनी अनूठी छवि रखता है जिसकी सांस्कृतिक प्राचीनता ही नहीं बल्कि विविधता भी अनेक आकर्षणों का कारक है।

2.5 आवास के लिए सुविधाएं

पर्यटन उत्पादों में आवास (एकोमोडेशन) की सुविधा भी एक महत्त्वपूर्ण उत्पाद है क्योंकि पर्यटक किसी भी देश में आराम से अपनी यात्रा पूर्ण करने के लिए यह अवश्य देखता है कि अपनी रूचि के पर्यटन स्थलों का भ्रमण करने के बाद शाम को उसे ठहरने के लिए उसकी क्षमता के अनुरूप स्वच्छ, सुविधाजनक आवासीय या ठहरने की सुविधा उपलब्ध हो। इसलिए पर्यटन के महत्त्वपूर्ण उत्पादों में इसकी गिनती है।

आजादी के बाद जब से भारत में पर्यटन विकास के नियोजित प्रयास शुरू हुए हैं, सरकार ने इस दिशा में होटल उद्योग एवं हेरिटेज होटलस् के विकास पर विशेष ध्यान दिया है। जहाँ एक ओर पर्यटन विकास के साथ महानगरों एवं अन्य नगरों में ताज समूह, ऑबेराय समूह, वेल्कम ग्रुप या अन्य प्रकार के पाँच सितारा होटलों की संख्या में वृद्धि हुई है, वहीं तीन सितारा या अन्य प्रकार के होटलों के स्तर एवं संख्या में मांग के अनुरूप वृद्धि एवं विकास हुआ है।

इसके साथ राजस्थान सहित विभिन्न प्रदेशों के रॉयल या राजशाही ढाट-बाट की स्मृतियाँ संजोये अनेक महलों, हवेलियों और इमारतों को भी होटलों के रूप में विकसित किया गया है जहाँ न केवल आधुनिक सुविधाओं की रचना की गई है बल्कि पुरातन माहौल को बनाये रखने के प्रयास भी किया गया है ताकि पर्यटको को न केवल आवासीय या ठहरने की समुचित व्यवस्था का लाभ मिले बल्कि संस्कृति एवं इतिहास के विगत के वातावरण का भी स्पर्श अनुभव कर सके। पर्यटन विभाग की भी ऐसे हेरिटेज होटल्स के विकास में गहरी रूचि रही है।

2.5.1 भारतीय व्यंजन

पर्यटन का खान-पान एवं भोजन के साथ भी गहरा सम्बन्ध है। पर्यटन स्थलों के लिए आकर्षण की ललक पूरी होने के साथ-साथ पर्यटकों की जहाँ कहीं आरामदायक होटल, किसी पर्यटन ग्राम या हेरिटेज में शाम बिताने और दिन भर की थकान मिटाने के लिए सुविधा की आवश्यकता होती है वहीं उसे नाश्ता, पेय पदार्थों या भोजन की भी जरूरत रहती है। पर्यटकों के लिए किसी भी देश की संस्कृति, रहन-सहन, जीवनशैली, नृत्य-संगीत, रीति-रिवाज आदि कौतूहल के विषय रहते हैं, वहाँ देश-विशेष के स्वादिष्ट व्यंजनों को स्वाद चखने की भी इच्छा होती है।

इस तथ्य को मध्यनजर रखते हुए होटल्स, रेस्तरां आदि मांग के अनुसार उन्हें भारतीय भोजन परोशने की व्यवस्था करते हैं। लेकिन आमतौर से भारतीय भोजन में मसाले मिर्च का काफी उपयोग होता है। साथ ही पर्यटन की दृष्टि से इस पक्ष को विशेष गहराई से अपनी नीति में नहीं देखा है। यदि यह देखा जाये कि भोजन तैयार करने या भोजन करने आदि किस प्रकार भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं और पर्यटकों को रास आये इस प्रकार के व्यंजन इसी परिप्रेक्ष्य में परोशे जायें तो यह भी पर्यटन का एक महत्त्वपूर्ण उत्पाद सिद्ध हो सकता है।

2.6 यातायात

पर्यटन उत्पादों में भारत आने वाले विभिन्न देशों के पर्यटकों के लिए उपयुक्त वायु, रेल या रोड़ यातायात सुविधाओं को भी एक महत्त्वपूर्ण उत्पाद का दर्जा दिया गया है। काफी सीमा तक इस तथ्य पर ध्यान भी दिया गया है। यह अध्ययन भी किया गया है कि दुनिया के किन-किन देशों के पर्यटक आमतौर से, भारत में पर्यटन के सन्दर्भ में रूचि रखते हैं। उन्हें आकर्षित करने के लिए किस प्रकार और अधिक सुविधाएं या रियायतें प्रदान की जा सकती हैं ताकि भारतीय पर्यटन को बढ़ावा मिले।

लेकिन भारत पहुँचने के बाद भी यहाँ गन्तव्य स्थलों तक आने-जाने या स्थानीय स्तरों पर यातायात की समुचित व्यवस्था है या नहीं, यह भी एक प्रमुख प्रश्न है। प्रमुख पर्यटन स्थलों तक पहुँचने के लिए रेल सेवाओं में विस्तार, सड़कों को बेहतर बनाकर उन्हें पर्यटन स्थलों से जोड़ना, सड़क परिवहन को बेहतर बनाना आदि विविध उपाय भी इस यातायात उत्पाद को मजबूती देने के लिए जरूरी है।

ऐसा नहीं है कि भारतीय परिप्रेक्ष में इस दिशा में सोचा नहीं गया हो या कुछ नहीं किया गया हो। कई सराहनीय प्रयास हुए हैं लेकिन इतने विशाल देश में जहाँ दूर-दूर तक अपार पर्यटन सम्पदा फैली हो, उस तक समुचित यातायात व्यवस्था का जाल तैयार करना आसान काम नहीं है। ऐसे में एक दीर्घकालीन योजना के तहत यह कार्य क्रमबद्ध रूप में सतत् किया जाये तो शायद इस उत्पाद को भी सुदृढ़ बनाना सम्भव है।

उदाहरण के लिए राजस्थान को ही लें तो यहाँ सड़क मार्गों से दुर्लभ पर्यटन स्थलों को सड़कों से जोड़ने का काफी काम हुआ है। इस ओर विचार भी किया गया है।

2.6.1 पैलेस-ऑन-व्हिलस्

जैसा कि बताया जा चुका है कि राजस्थान किसी जमाने में राजाओं महाराजाओं की शान-शौकत वाला प्रदेश रहा है जहाँ महलों-दुर्गों और राजमहलों का स्थापत्य सौन्दर्य और राजशाही

अलग ही जीवनशैली थी। अनेक पर्यटकों के मन में उस बीते युग का एहसास करने की इच्छा भी होती है जब वे इन पुराने महलों, दुर्गों और राजमहलों की शोभा का अवलोकन करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए सरकारी या गैर सरकारी स्तरों पर जो हवेलियाँ, महल या राजमहल थे, उनमें से कई हेरिटेज होटलों या होटल्स् में परिवर्तित हुए हैं जैसे उदयपुर में लक्ष्मी विलास, जयपुर में रामबाग पैलेस होटल या कोटा में उम्मेद भवन पैलेस होटल आदि।

इसी तर्ज पर पर्यटकों की यात्रा को राजशाही अन्दाज देने के लिए विशेष प्रकार के शाही ठाट-बाट की रचना के साथ "पैलेस ऑन व्हिलस्" की शुरूआत की गई थी। ऐसी 'विन्टेज सेलून' या बीते युगों में शाही परिवारों द्वारा यात्रा में प्रयुक्त डिब्बों वाली रेलगाड़ियाँ चलाई गई हैं।

इस प्रकार का यह अनूठा प्रयोग इस उत्पाद में उल्लेखनीय साबित हुआ है और दुनियाँ भर के पर्यटकों के लिए अनोखा अनुभव भी साबित हुआ है। यह "पैलेस ऑन व्हिलस्" आठ दिन और सात दिनों का पर्यटन या दूर पर्यटकों को दिल्ली से जयपुर, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, जैसलमेंर, जोधपुर, भरतपुर और आगरा तक का भ्रमण कराके वापिस दिल्ली पहुँचाने के लिए आयोजित किया गया है।

बीते युग के सेवकों की ही वेशभूषा में ये एटेन्डेन्ट्स पर्यटकों की हर आम आवश्यकता की पूर्ति में संलग्न रहते हैं। दो या चार पर्यटकों के लिए अलग-अलग बने केबिन, दो टॉयलेट्स के साथ, गर्म और ठंडा पानी आदि सुविधाओं से युक्त इस रेलगाडी में हर डिब्बे की फर्निशिंग, सजावट और माहौल भी वैसा ही रचा गया है जो रियासत काल के रंगों वाला है। भारतीय एवं कॉन्टीनेन्टल व्यंजनों की भी व्यवस्था की गई है। इसमें 'बार' और पुस्तकालय की भी व्यवस्था की गई है। इस प्रकार एक सृजंनात्मक सोच के साथ किये गये इस प्रयोग से पर्यटकों को उस रूमानी वातावरण का एहसास कराने का प्रयास किया गया है जो राजशाही शान का अंग था। पर्यटक एक सप्ताह के पर्यटन की अवधि में बीते युग में जीने की अनुभूतियाँ कर सकता है।

"पैलेस ऑन व्हिलस्" विश्वभर के पर्यटकों के लिए एक अत्यन्त रोचक एवं लोकप्रिय उत्पाद प्रमाणित हुआ है।

2.6.2 विभिन्न पर्यटन उत्पाद प्रयोग

भारतीय पर्यटन को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से विगत को वर्तमान के परिवेश और पर्यटकों के आकर्षण से सम्बद्ध करने की दिशा में विभिन्न राज्यों एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक नवीन प्रयोग एवं प्रयत्न जारी हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान को लें तो यहाँ 'पैलेस ऑन व्हील' जैसे प्रयोग के महत्त्वपूर्ण एवं सफल सिद्ध होने से उत्साहित होकर कई नवीन प्रयोग एवं प्रयासों की दिशा में चिन्तन चल रहा हे।

किसी भी देश की यात्रा रेलगाड़ी से करना एक विशेष प्रकार का अनुभव होता है और राजस्थान में पैलेस ऑन व्हिल के द्वारा पर्यटन विकास में प्राप्त योगदान को देखते हुए ताप समूह रामबाग पैलेस होटल ने 'पब ऑन व्हिलस्' अंग्रेजी कॉन के स्टीम इन्यिन और फिर से सजे 'केरिजेशन' के साथ तैयार किया है जहाँ मध्यरात्रि तक पर्यटक रह सकते हैं।

इस प्रकार विभिन्न पर्यटन उत्पादों के साथ वर्तमान सदी के लिए कुछ नये पर्यटन उत्पादों की शुरूआत की घोषणा की है। इनमें चम्बल नदी और इन्दिरा गाँधी नहर में सैर, ऊँट एवं घोड़ा सफारी, शिविर पर्यटन, साहसी पर्यटन, पारिस्थितिकीय पर्यटन एवं ग्रामीण पर्यटन आदि

की योजनाएं शामिल हैं। पैलेस और व्हिल की तरह ही 'पैलेस ऑन वैवज' अर्थात् 'लहरों पर राजमहल' जैसी कल्पना को साकार करने का मानस बनाया है। इस योजना के अन्तर्गत शिकारा एवं लक्खी बोट के उपयोग द्वारा लहरों पर सैर का रोमांच पैदा करने का प्रयास किया जायेगा। यह पैलेस ऑन व्हिलस् की तुलना में कम खर्चीला प्रयोग होगा।

इन उपायों के अतिरिक्त यातायात उत्पाद को बेहतर दिशा देने के लिए हेरिटेज टेक्सीज एवं हेरिटेज कारों के प्रारम्भ का भी विचार बनाया गया है। साथ ही होटल व्यवसाय में हेरिटेज रेस्तरां का नवीन विचार सामने आया है। इसके अतिरिक्त पर्यटन प्रोत्साहन के लिए कार्पोरेट सेन्टर को पर्यटन स्मारकों एवं स्थल पर अपने विभिन्न आयोजन करने एवं स्कूलों-कॅलेजों में पर्यटन शिक्षण को बल देने की कल्पना भी की गई है।

इस प्रकार पर्यटन उत्पादों में यातायात को एक नये रूप में विकसित करने के प्रयास पर्यटन विकास के लिए फलदायक सिद्ध हो सकेंगे।

यह सर्वविदित है कि बेहतर रेल सेवाओं और आलीशान आधुनिक होटल्स् एवं रेस्टोरेन्ट्स आदि की दुनिया में कमी नहीं है और भारत में पर्यटन के दौरान भी यदि इन्हें ऐसी ही सुविधाएं मिले तो कोई नई बात नहीं है और न ही ऐसी सुविधाएं कोई रोमांचक अनुभव हो सकती है। लेकिन विगत के भारतीय वैभव सम्पन्न एवं विगत की जीवनशैली का स्पर्श अवश्य पर्यटकों के लिए नवीन एवं रोचक अनुभव हो सकता है। इसलिए उपलब्ध अनेक प्रकार की पुरानी सम्पदा की साज-सम्भाल, उसे वर्तमान से जोडने और पर्यटन की दृष्टि से भी उपयोगी बनाने के इस सन्दर्भ में प्रयासों ने भारतीय पर्यटन को एक नई दिशा दी है।

भारत के प्राचीन सांस्कृतिक वैभव, स्मारक, मंदिर, राजमहल, प्राकृतिक स्थल, प्राकृतिक दृश्य आदि विभिन्न आकर्षण के स्थलों की सार-सम्भाल और उन्हें पर्यटन की दृष्टि से उपयोगी बनाने के अलावा अन्य उत्पादों जैसे ठहरने के स्थलों अर्थात् होटल्स् एवं यातायात के साधनों के सन्दर्भ में सोच, बने बनाये सांचे से हटकर है और रचनात्मक भी है। सोच को क्रियान्वित करके भारतीय पर्यटन विकास के नये आयाम स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

विरासत, भारत की सबसे बड़ी थाती है क्योंकि यह अति प्राचीन संस्कृति वाला देश है। आधुनिकता या आधुनिक संसाधनों को भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में प्रस्तुत करने के प्रयोग कितने सफल हुए है और कितने लोकप्रिय हो रहे हैं यह न केवल पैलेस ऑन व्हील जैसे प्रयोगों से ही नहीं बल्कि होटल्स् के सन्दर्भ में भी काफी ख्याति अर्जित कर सके हैं। इसके लिए राजस्थान जैसे एक राज्य का उदाहरण भी लें तो इन प्रयासों की सफलता का संकेत मिल जायेगा। राजस्थान के विशाल शाही महलों, राजशी हवेलियाँ आदि के पर्यटन ने भाग्य बदल दिये हैं। इस प्रसंग में अलवर के नीमराजा में नीमराणा पैलेस, सरिस्का पैलेस, बीकानेर में लालगढ पैलेस, बसन्त विहार पैलेस, भरतपुर में लक्ष्मी विलास पैलेस, चित्तोड़गढ़ में कासल बीजापुर, जयपुर में होटल खासा कोठी, रामबाग पैलेस होटल, सामोद पैलेस, सामोद कोठी, जोधपुर में उम्मेद भवन पैलेस, झुंझनू में मुकन्दगढ़ फोर्ट, जैसलमेंर में नारायण निवास, नागौर में रिवंवसर फोर्ट, उदयपुर होटल लक्ष्मी निवास पैलेस आदि विभिन्न हेरिटेज सम्पदा की राजस्थान के विभिन्न पर्यटक स्थलों पर एक लम्बी सूची है जो इस बात का सबूत है कि इस प्रकार के विरासत की अनुभूतियाँ देने वाले माहौल में ठहरने एवं समय बिताने के प्रति पर्यटकों में बेहद रूचि है।

2.7 उत्सवों का प्रचार-प्रसार

पर्यटन को प्रोत्साहन देने और विकसित करने के लिए जहाँ इनके विविध उत्पादों पर विशेष जोर देने की जरूरत होती है वहीं इनकी विशेषताओं का समुचित एवं प्रभावपूर्ण रूप से प्रचार-प्रसार भी आवश्यक है। यह सच है कि पर्यटन उत्पादों का उपयोग करने वाले पर्यटक, दुनिया भर में मौलिक रूप से इसका प्रभावी प्रसार करते हैं। लेकिन किस वजह और किस पर्यटन मौसम में अब और किस प्रकार प्रचार-प्रसार किया जाये, यह एक सुनियोजित एवं सुविचारित प्रयास से ही सम्मव हो सकता है।

इसके लिए सर्वप्रथम पर्यटन साहित्य की सरस एवं सुरूचिपूर्ण रचना करना है। इसके लिए सक्षम ट्रेवल लेखकों एवं संस्कृति एवं पर्यटन की पकड़ रखने वाले लेखकों एवं रचनाकारों का सहयोग लिया जाना चाहिए। यह कार्य सृजनात्मक ढ़ंग से देना चाहिए।

इसके बाद प्रचार कार्य को विश्वसनीय ढ़ंग से नियमित प्रसार कार्यक्रमों के रूप में किया जाना चाहिए। इसके लिए पर्यटन के विभिन्न उत्पादों पर समुचित बल दिया जाना आवश्यक है। समाचार माध्यमों एवं उनमें कार्यरत सम्पादकीय विभागों के साथ तालमेल बैठाना भी जरूरी होता है। इसमें सूचनात्मक प्रचार का भी महत्त्व है लेकिन व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रचार-प्रसार इस प्रकार हो जो पर्यटकों के मन में जिज्ञासा भाव उत्पन्न करे और उन्हें पर्यटन उत्पादों की ओर आकर्षित करे।

इसके लिए अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रचार कार्यक्रम बनाना चाहिए। एक व्यूह-रचना के तहत इसमें प्रेरक तत्वों का समावेश है। जो लोग व्यस्त जीवन में से बचाये क्षणों या छुट्टियों का सद्उपयोग करना चाहते हैं वे यथार्थ और कल्पना के बीच जीते हैं। ऐसे में पर्यटकों के निर्णय को प्रभावित करने के लिए क्षमतावान प्रचार व्यवस्था होनी चाहिए। मनोवैज्ञानिक रूप से पर्यटन के आकर्षण का वातावरण तैयार करना और इसके लिए प्रचार-प्रसार सामग्री तैयार करना एवं उपयुक्त माध्यमों का चयन करना आदि विभिन्न ऐसे पहलू हैं जिनका बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करना एक कला है और इसमें निपुण लोगों के सहयोग के साथ आगे बढना चाहिए।

किसी भी देश में उपलब्ध पर्यटन उत्पादों की सम्पूर्ण जानकारी के साथ उन्हें पर्यटकों के मानस में बेहतर छवि के साथ प्रस्तुत करके प्रेरक की भूमिका अदा करना, आसान काम नहीं है लेकिन इन पक्षों के अनुभव एवं पर्याप्त क्षमता के साथ सरलता से प्रभावी प्रचार-प्रसार का कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। पर्यटन की दृष्टि से सभी उत्पाद श्रेष्ठता के मापदंडों पर खरे उतरने के बावजूद उनका प्रस्तुतिकरण एक अहम् मुद्दा है।

विभिन्न उत्पादों के प्रचार के लिए उपलब्ध प्रचार माध्यमों में से उपयुक्त 'ओडियन्स' अर्थात् उस लक्ष्य के क्षेत्र और लोगों के बीच प्रचार के उपयुक्त माध्यम को चुनना चाहिए तभी प्रचार फलदायक सिद्ध हो सकता है। मौखिक प्रचार, संचार माध्यम, प्रायोजित कार्यक्रम आदि ऐसे कई प्रचार उपलब्ध हैं। इसलिए उपयुक्त माध्यम का चुनाव जरूरी है। सर्वप्रथम पर्यटकों अर्थात् सम्भावनाओं से पूर्ण पर्यटकों को सूचित करने, उन्हें प्रेरित करने और भ्रमण के लिए विशेष स्थल को चुनने एवं अपना भ्रमण कार्यक्रम क्षमता के अनुरूप मार्गदर्शन प्रदान करने के दृष्टिकोण के साथ यह कार्य सार्थक ढंग से सम्पन्न करना अनिवार्यता होता है। मेलों, त्यौहारों और उत्सवों पर विशेष प्रचार अभियान आयोजित किये जा सकते हैं।

2.8 पर्यटन उत्पादों की मार्केटिंग

परम्परागत रूप से विभिन्न उत्पादों का विपणन या मार्केटिंग की अपनी अलग समस्याएं होती हैं तो पर्यटन उत्सवों के क्षेत्र की भिन्न समस्याएं हैं। यह फर्क इसलिए है कि पर्यटन के क्षेत्र की मांग और पूर्ति की प्रवृति एवं प्रकृति, परम्परागत उत्पादों से बिल्कुल अलग प्रकार की है। विभिन्न उद्योग उत्पाद तैयार करते हैं और उनका भण्डारण कर सकते हैं लेकिन पर्यटन, विशेषता एक सेवा उद्योग है इसलिए इस उद्योग में भण्डारण की यह प्रक्रिया नहीं होती।

पर्यटन उत्पादों में प्रमुख आकर्षण के स्थल, होटल या ठहरने के स्थल, यातायात के साधन आदि उत्पाद होते हैं। पर्यटन के सन्दर्भ में होटलस् भी एक उत्पाद है लेकिन इनमें कमरों को खाली रखना सम्भव नहीं है। यहाँ हाल रेस्टोरेन्ट्स में सीट्स का है। यदि इन्हें आज बेचा न जाये तो आज की पूर्ति, बल के लिए नहीं रखी जा सकती। इसी प्रकार दूसरे उत्पाद में रेल, बस या वायुयान की सीट्स का रिजर्वेशन आज का कल काम नहीं आता।

इसके अतिरिक्त पर्यटन, वास्तव में कई प्रकार की सेवाओं का संगम है। पर्यटन को अन्य उद्योगों से अलग करने वाला एक कारक इसकी अत्यधिक लचीली मांग का होना भी है। यह मौसम के अनुसार बदलता है और पर्यटकों की रूचि एवं फैशन के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। इसलिए पर्यटन उत्पादों का विकास तब तक सम्भव नहीं हो पाता जब तक पर्यटकों की मांग को बढ़ाने और उन्हें आकर्षित करने के समुचित प्रयास नहीं किये जायें। इस उद्योग का दारोमदार सरकार पर अधिक निर्भर है क्योंकि इसमें नियोजन के लिए निजी स्तर अधिक सक्रिय नहीं है। पर्यटन आकर्षण के स्थलों और सांस्कृतिक एवं अन्य पहलुओं के विकास में सरकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। जब इस दिशा में विकास होता है और पर्यटन का प्रवाह बढ़ता है तो मांग के अनुरूप अन्य उत्पादों के विकास में निजी स्तर पर प्रयास होते है।

2.9 पर्यटन उत्पादों की विशेषताएं

पर्यटन उत्पादों की अपनी विशेषताएं हैं। ये उत्पाद स्थायी रूप में एकत्रित करके संचित नहीं किये जा सकते क्योंकि इनकी प्रकृति सेवा-उत्पादों के रूप में होती है। ये उत्पाद ऐसे हैं जिनके उपयोग या उपभोग के लिए उपभोक्ता की उपस्थिति एक अनिवार्यता है। पर्यटन उत्पादों का आकर्षण एक मनोवैज्ञानिक पहलू है। ये जोखिम भरे उत्पाद हैं जिनकी मांग स्थिर नहीं रहती। इसके विपरीत आपूर्ति का तत्व स्थिर रहता है। इन उत्पादों का निर्माण कई उत्पादकों के मिले-जुले प्रयासों का परिणाम होता है। यहाँ उत्पादन और उपभोग एक दूसरे के बहुत नजदीक हैं। पर्यटन के मौलिक प्रसार पर्यटन स्थल, आवास या एकोमोडेशन एवं परिवहन है।

2.9.1 व्यूह रचना

पर्यटन उद्योग के माध्यम से आर्थिक प्रगति की दिशा में अनेक देश प्रयत्नशील हैं और कुछ देशों ने अपने पर्यटन उद्योग को बढ़ाने में उल्लेखनीय वृद्धि की है। यह सम्पूर्ण विश्व पर्यटन परिदृश्य का अध्ययन करके आकर्षक व्यूह-रचना के माध्यम से किया गया है।

इस सन्दर्भ में जो विशेष ध्यान दिये जाने के बिन्दु हैं उनमें पर्यटन स्थल अर्थात् सबसे बड़ा पर्यटन उत्पाद महत्त्वपूर्ण है। इसलिए स्कूल स्तर से ही वर्तमान पीढ़ी को दूर-दूर तक व्यापक पैमाने पर फैली सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए विद्यार्थियों को शिक्षित एवं प्रेरित किये

जाने की मजबूत व्यूह-रचना तैयार की जानी चाहिए। यद्यपि इस ओर अब ध्यान दिया जाने लगा है क्योंकि सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा केवल सरकार पर छोड़ दिये जाने की खतरनाक प्रवृति चली आ रही है। दरअसल, सांस्कृतिक धरोहर तो देश की धरोहर है और इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन की जिम्मेदारी सभी नागरिकों की है।

देश के प्राकृतिक स्रोत, एतिहासिक एवं सांस्कृतिक, सम्पदा देश की सबसे बड़ी विरासत है जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनती है इसलिए इन्हें विगत की अनार्थिक या अनुपयोगी धरोहर समझकर इनके प्रति अब तक अपनाये गये उदासीन रवैये को छोड़कर इसे एक महत्त्वपूर्ण पर्यटन उत्पाद के रूप में समुचित संरक्षण देने एवं देखभाल की कारगर व्यवस्था के लिए समुचित कदम उठाने के प्रयास करने चाहिए। आधुनिक निर्माण या अन्य चीजें दुबारा तैयार हो सकती हैं लेकिन खोया हुआ विगत और विरासत कभी भी प्राप्त नहीं होते। इसलिए सांस्कृतिक धरोहर अत्यधिक मूल्यवान सम्पत्ति है और किसी भी जाति या देश का गौरव भी है। पर्यटन उद्योग के सन्दर्भ में भी यह उत्पाद उत्पादकता से पूर्ण है।

पर्यटन व्यूह-रचना में अब तक प्रमुख पर्यटन स्थलों तक ही ध्यान रहा है और उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित रहा है लेकिन पर्यटन को व्यापक रूप देने के लिए जिलास्तर से लेकर पंचायत स्तर तक छोटे-बड़े सभी पर्यटन स्थलों का पर्यटन की दृष्टि से विकास किया जाना चाहिए।

इसके अलावा हर क्षेत्र की तरह पर्यटन क्षेत्र में भी प्रतिस्पर्द्धा को ध्यान में रखते हुए आक्रमणात्मक प्रचार के साथ प्रिन्ट, इलेक्ट्रोनिक आदि संचार माध्यमों की विपुल शक्ति का सम्पूर्ण उपयोग करते हुए पर्यटन प्रोत्साहन के लिए कदम उठाये जाने चाहिए।

देश में पर्यटन स्थलों अर्थात् पर्यटन के प्रमुख आधार सांस्कृतिक स्थलों की देखरेख एवं साज-सम्भाल का कार्य अत्यन्त व्यापक एवं विस्तार लिए हुए है और इसके लिए भारी प्रयत्न एवं धनराशि चाहिए। इसलिए सरकार से अकेले यह काम पूरा होना सम्भव नहीं लगता। ऐसे में बड़े-बड़े उद्योगों, होटल्स आदि का सहयोग लिया जा सकता है जैसे ताज ग्रुप ऑफ होटलस् ने ताजमहल को गोद लिया। ऐसे ही किसी न किसी स्थल को कोई न कोई औद्योगिक घराना गोद लेकर उसका संरक्षण करने का बीड़ा उठा सकती है। यातायात की दृष्टि से स्थानीय स्तर पर बेहतर यातायात सुविधाऐं देकर पर्यटन के विकास में कुछ योग दिया जा सकता है।

शिल्पग्राम, ग्रामीण हट, ग्रामीण त्यौहारों एवं मेलों आदि के द्वारा भी पर्यटन को एक नया विस्तार देना सम्भव है। इसलिए परम्परागत पर्यटन विकास के तौर-तरीकों में बदलाव होना समय की मांग है।

वैसे पर्यटन को उद्योग तो मान लिया गया है लेकिन इसके विभिन्न उत्पादों एवं इस उद्योग की अपनी जरूरतों की प्रवृति, प्रकृति एवं समस्याओं को अलग रखकर देखने की जरूरत है और इसकी आवश्यकताओं के अनुरूप व्यूह-रचना करके पर्यटन को रोजगार, आर्थिक विकास एवं संस्कृति के संरक्षण का महत्त्वपूर्ण जरिया मानने का मानस तैयार करना अभी शेष है। पर्यटन उत्पादों को अलग-अलग स्तर पर विकसित किये जाने से ही पर्यटन का सम्पूर्ण विकास किया जा सकता है। ऐसा करके देश में एक ऐसा सशक्त उद्योग तैयार किया जा सकता है जहाँ न धूल हो, न धुआँ और न कोई प्रदूषण। कई बार पर्यटन में सांस्कृतिक प्रदूषण फैलने का अंदेशा प्रगट किया जाता है। यह सही है कि किसी भी उद्योग के साथ नकारात्मक पक्ष तो होगा ही लेकिन निरन्तर उपायों से ऐसे प्रदूषण के कारकों को न्यूनतम किया जा सकता है।

2.10 सारांश

दुनिया में बदलाव की रफ्तार बड़ी तेज है और इस बदलाव के साथ सोच, परम्परागत तौर-तरीकों एवं उपायों से अलग समय के साथ चलने का अभ्यास करने की जरूरत है। ऐसे साधन भी अपनाये जा सकते हैं जो परम्परागत साधनों की तुलना में अधिक फलदायक हो सकते हैं।

इसके लिए परम्परागत ढाँचे में ढले पर्यटन सूचना केन्द्रों, पर्यटन स्वागत केन्द्रों आदि को कम्प्यूटर नेटवर्क से जोड़कर आधुनिक स्वरूप दिया जाना चाहिए। आज ऑन-लाईन होटल बुकिंग एवं अन्य व्यवसाय होना सम्भव है। ऐसे में ऑन-लाईन सेवाओं को गति दी जा सकती है।

इस प्रकार हेरिटेज या विरासत की सम्पदा का होटलस् आदि के लिए अधिकाधिक उपयोग, आधुनिक सूचना टेकनोलॉजी का उपयोग, निजी उद्योगों एवं घरानों को पर्यटन स्थलों एवं पर्यटन उत्पादों के विकास की दिशा में प्रेरित करना और उनका सहयोग लेना आवश्यक है। इसके साथ पर्यटन को बने बनाये पर्यटन स्थलों के साथ विस्तृत ग्रामीण परिवेश की खूबियों से परिचित कराने एवं पर्यटन को आगे बढ़ाने के लिए ग्रामीण स्तर एवं विभिन्न उत्पादों का विकास भी करना चाहिए क्योंकि पर्यटन के अनेक उज्ज्वल पृष्ठ ग्रामीण अंचलों में भी पढ़े जा सकते हैं। लेकिन सड़कों, ठहरने की समस्या, यातायात आदि विभिन्न उत्पादों के विकास के विशेष प्रयास करने की सबसे बड़ी जरूरत होगी।

पर्यटन उत्पादों का संक्षेप में विश्लेषण करें तो यह तो स्पष्ट है कि भारत में सांस्कृतिक विरासत का व्यापक भंडार है। सांस्कृतिक, प्राकृतिक एवं विभिन्न प्रकार के सभी रूचि के पर्यटकों के लिए अनेक पर्यटन स्थल है जिनमें आकर्षण की चुम्बकीय शक्ति है। लेकिन इतने विस्तार से फैली इस पर्यटन एवं सांस्कृतिक सम्पदा की समुचित देखरेख और संरक्षण संवर्द्धन का नितान्त अभाव है।

इसके लिए सरकार पर सारा बोझ है और सरकार की अनेक प्राथमिकताएं हैं। साथ ही सरकारी दृष्टिकोण में पर्यटन उद्योग को उचित स्थान नहीं दिया गया है। ऐसे में इस उत्पाद को सुदृढ़ बनाने के लिए जनभागीदारी बढाने, सरकारी स्तर पर बेहतर सोच कायम करने के प्रयास करने और औद्योगिक घरानों, परदेशों में बसे धनी भारतीयों आदि सम्पन्न वर्ग के सहयोग एवं विभिन्न स्थल गोद देकर इस विशाल एवं अमूल्य भारतीय पुरा-सम्पदा एवं सांस्कृतिक, प्राकृतिक विरासत को सुदृढ़ किया जा सकता है। देश की शास्त्रीय एवं लोक जीवन से जुड़ी नृत्य, संगीत शैलियाँ, हस्तशिल्प आदि अन्य पक्षों पर भी नया दृष्टिकोण अपनाकर उनको बेहतर उत्पाद बनाया जा सकता है। इसके अलावा दूसरा बड़ा पर्यटन उत्पाद यातायात जिसे पैलेस-ऑन-व्हीलस् जैसे नवीन प्रयोगों एवं सुविधाओं में विस्तार करके बेहतर बनाया जा सकता है। होटलस् की दृष्टि से भी हेरिटेज होटलस् जैसे प्रयोग काफी कारगर सिद्ध हुए हैं।

दरअसल, भारत में पर्यटन विकास की इतनी अधिक सम्भावनाएं एवं क्षमताऐं बिना प्रयासो के ही बनी हुई है कि इस दिशा में जितना विचार या प्रयास होना चाहिए, वह नहीं हुआ। यहाँ विविधतापूर्ण सांस्कृतिक परिवेश, त्यौहारों, मेंलों, उत्सवों, लोकजीवन के रंगों, महलों, मंदिरों, अभयारण्यों, उद्यानों आदि पर्यटन के आकर्षण के केन्द्रों की अपार श्रृंखला है। पुष्कर जहाँ जनजीवन के रंग और लोकजीवन की धार्मिक एवं सामाजिक अभिव्यक्ति होती है, इस कारण वह

पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। जैसलमेंर के थार का मौन और लोक स्वर लहरियां पर्यटकों को खींच कर ले जाती है। इस प्रकार जहाँ बहुत कुछ अधिक प्रयास किये बिना मिल जाये, तो उसका सम्पूर्ण महत्त्व समझ में नहीं आता। राजस्थान में वह क्षमता है कि दुनियाँ के पर्यटक यहाँ स्वयं आने को लालायित हो जायें। यहाँ बात सम्पूर्ण भारत की विविधता में है। हर प्रदेश में है।

देर आये दुरूस्त आये। अभी भी संस्कृति में काफी कुछ बचा है। अभी भी पर्यटकों के आकर्षण के लिए बहुत कुछ है, जिसे सार सम्भाल का इन्तजार है। पर्यटन को केवल रोजगार के अवसर बढ़ाने या आर्थिक दृष्टि से ही उपयोगी नहीं मानना चाहिए। इसकी उपयोगिता के और भी कई पहलू हैं। पर्यटन विभिन्न संस्कृतियों को और करीब लाने एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर सम्बन्ध स्थापित करने का भी एक जरिया है। इससे लोक संस्कृति, परम्परागत कलाओं आदि को भी प्रोत्साहन मिलता है। पयर्टन आर्थिक दृष्टि से तो उपयोगी है ही। ऐसे में इस इकाई का लक्ष्य यह है कि पर्यटन के विविध उत्पादों पर ध्यान देकर उन्हें बेहतर बनाने के उपाय किये जायें तो पर्यटन उद्योग स्वतः ही सुदृढ़ बन सकता है।

2.11 उपयोगी साहित्य

1. Fundamentals of Tourism System, A.K. Raina & R.C. Raina, Kannishka Publishers & Distributors, New Delhi 2004.
2. International Tourism Fundamentals & Practices, A.K. Bhatia, Sterling Publishing House, New Delhi 2001.
3. Tourism : Past, Present & Future. A.J. Bukart, S. Medlik, Heinemann, London 1976.
4. Tourism in India, Policy & Perspectives, Usha Bala, Arushi Publications, New Delhi 1990.

2.12 अभ्यास प्रश्न

1. पर्यटन उत्पादों में से प्रमुख उत्पाद कौन से हैं और उनके विकास के लिए क्या करना जरूरी है?
2. 'पैलेस ऑन व्हील' का पर्यटन विकास में क्या योग है?
3. पर्यटन विकास के लिए क्या किया जाना चाहिए?
4. पर्यटन उत्पादों के विकास के लिए कुछ सुझाव दीजिए?
5. पर्यटन विकास की दृष्टि से भारत में क्या-क्या महत्त्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं?

इकाई - 3 : प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित पर्यटन उत्पाद

रूपरेखा :

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विविध प्राकृतिक उत्पाद

3.2.1 समुद्र-तट

3.2.1.1 गुजरात के समुद्र-तट

3.2.1.2 दिव एवं दमन के समुद्र-तट

3.2.1.3 महाराष्ट्र के सागर-तट

3.2.1.4 गोवा के सागर तट

3.2.1.5 कर्नाटक के सागर तट

3.2.1.6 केरल के समुद्र-तट

3.2.1.7 तमिलनाडु के तट

3.2.1.8 आन्ध्रप्रदेश के तट

3.2.1.9 उड़ीसा के सागर तट

3.2.1.10 पश्चिम बंगाल के सागर तट

3.2.2 पर्वतीय स्थल

3.2.3 भारत के पर्वतीय पर्यटन केन्द्र

3.2.4 वन्य जीवन एवं अभयारण्य

3.3 विविध मानव-निर्मित उत्पाद

3.3.1 यातायात एवं संचार

3.3.2 प्रबंधन एवं सेवाएं

3.4 सारांश

3.5 उपयोगी साहित्य

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

पर्यटन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। पर्यटन प्रक्रिया या पर्यटन सेवाओं एवं उत्पादों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। साथ ही पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र या गन्तव्य स्थलों को भी प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दो भागों में विभाजित कर सकते है। अन्य उत्पादों में यातायात एवं होटलस् आदि सेवाएं शामिल हैं जो मानव निर्मित नेटवर्क होता है। यहाँ पर्वतीय स्थानों, समुद्री-तटों, वन्य अभयारण्यों, राष्ट्रीय उद्यानों आदि की विपुल सम्पदा की ओर संकेत करने का इस इकाई में प्रयत्न करेंगे।

साथ ही विपुल सांस्कृतिक सम्पदा जैसे स्मारक, दुर्ग, महल, मंदिर, गुफाएं आदि जिनका निर्माण मानव ने किया, उनका जिक्र करेंगे। इस विभाजन के बाद आप यह समझाने

की दिशा में सक्षम होंगे कि पर्यटकों की विभिन्न श्रेणियों में लोगों की रूचि क्या है और वे पर्यटन उत्पादों के किस उत्पाद का आकर्षण लेकर आये हैं।

यों तो आप पर्यटन उत्पादों के वर्गीकरण वाली इकाई में पर्यटन उत्पादों के विभिन्न पक्षों से परिचित हो चुके हैं लेकिन पर्यटन उत्पादों के विस्तार को आप प्राकृतिक एवं मानव निर्मित, इन दो भागों की विशेषताओं पर दृष्टि डालेंगे तो आपको लगेगा कि आदमी ने प्रकृति से दूर होने की जो कोशिशें की, वे इस मुकाम तक आ गई हैं कि आज वह उसकी तलाश को लालायित हैं और पक्षियों की मुक्ता उड़ान, वन्य पशुओं के मुक्त विचरण और वन्य जीवन की खामोशी में प्रकृति के करीब आने पर कितना रोमांच अनुभव करता है। साथ ही मानव-निर्मित उत्पाद भी किस प्रकार रूमानी एहसास की रचना करने में समर्थ हैं। शिल्प, स्थापत्य एवं सौन्दर्य का अपना अलग आकर्षण होता है।

इस इकाई का उद्देश्य आपको यह बताना भी है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के विभिन्न रूपों जैसे हरियाली या सफेद बर्फ से ढकी पर्वतमालाएं, सागर की टकराती लहरों के गराढ समुद्र तट, नदियाँ, कल-कल बहते झरनों, वनों-वन्य जीवों, अभयारण्य आदि के दृश्यों का आकर्षण किस प्रकार पर्यटकों को मोहित कर देने की क्षमता रखते हैं। इस इकाई के अध्ययन से आप यह भी अनुभव करने में सक्षम होंगे कि मनुष्य द्वारा कला, शिल्प और सौन्दर्य की रचना के प्रयास भी कितने अद्भुत है कि हजारों किलोमीटर से दूर के पर्यटकों को अपने आकर्षण में बाँध लेते हैं।

आप यह भी समझाने में सक्षम होंगे कि एक ओर जहाँ भारत की प्राचीन संस्कृति से परिचित कराने में यहाँ की सांस्कृतिक विरासत समृद्ध है और समय की धुंध में बहुत कुछ खो जाने के बावजूद आज भी प्राकृतिक सम्पदा कितनी विविध और मोहक है।

ऐसे वन एवं अरण्य जहाँ प्रकृति के मौन के बीच ऋषि-मुनियों ने भारतीय संस्कृति की अनवरत यात्रा के अध्याय लिखे के बारे में और किस प्रकार भारत के प्राकृतिक एवं मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद, दुनियाँ में अपनी तरह के विविध, विलक्षण और अद्भुत पर्यटन उत्पादों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बने प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित उत्पादों से भारत का रिश्ता अति पुराना है और वे दोनों उत्पाद यहाँ के जीवन-दर्शन एवं जीवनशैली के अभिन्न अंग रहे हैं ओर आज भी यह भावात्मक रिश्ता समाप्त नहीं हुआ है।

प्रकृति की स्व-निर्मित रचना के बीच भारतीय सभ्यता का उद्‌गम होने के कारण इसके नैसर्गिक सौन्दर्य, सन्तुलन एवं अद्भुत आकर्षण का बोध मानव-रचित भारतीय उत्पादों में भी झलकता है। वास्तव में भारतीय पर्यटन के इन दो प्रमुख उत्पादों प्राकृतिक एवं मानव निर्मित, के बीच एक सामंजस्य और समानता है और यहाँ कारण है कि यहाँ पर्यटक एक सम्पूर्णता का एहसास एवं सन्तुष्टि प्राप्त करता है। प्रकृति की अपनी विविध रंगों वाली स्वचालित एक प्रणाली और तन्त्र होता है। इसका अपना सौन्दर्य और सन्तुलन है। प्रकृति की अन्तनिर्भर व्यवस्था के विविध घटकों में मनुष्य भी एक घटक हैं। भारतीय परिवेश में प्रकृति प्रेम कोई भावात्मक मुद्रा नहीं है बल्कि यहाँ विगत की उस सच्चाई को खोजना है और पुनः स्थापित करना है जिसे

भारतीय ऋषि-मुनियों ने पहचाना और स्थापित किया था। यह भी सर्वमान्य सत्य है कि मनुष्य जाति एवं प्राणी जगत का अस्तित्व, प्रकृति पर निर्भर है।

पर्यटन उत्पादों में मानव-निर्मित उत्पाद की चर्चा करें तो मूर्तिशिल्प, स्थापत्य, एतिहासिक इमारतों, मंदिरों, दुर्गों, गुफाओं, स्मारकों आदि का जिक्र करना होगा। ये मानव निर्मित पर्यटन उत्पाद अपनी जटिल कारीगरी, प्रतीकों, आस्थाओं, शिल्प और सौन्दर्य के साथ भारतीय संस्कृति के उत्थान के जीवन्त गवाह हैं। ये दर्शकों के मन में कई सवाल खड़े करते है। कौतूहल उत्पन्न करते हैं। इस जिज्ञासा की पूर्ति उनकी पृष्ठभूमि के खुलासे से होती है। इसलिए पर्यटन उत्पाद चाहे प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, दोनों के सन्दर्भ एवं आकर्षण के रंग भले ही भिन्न-भिन्न हो लेकिन दोनों ही उत्पाद पर्यटन की दृष्टि से समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

3.2 `विविध प्राकृतिक उत्पाद

प्राकृतिक पर्यटन उत्पाद के सन्दर्भ में पर्वतों के विभिन्न दृश्यों के सम्मोहन के अन्तर्गत हिमालय की वादियों कश्मीर की वादियों गोवा के समुद्र-तटों, वन्य अभयारण्यों, उद्यानों आदि उन स्थलों की ओर रूख करेंगे जो प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर हैं। जहाँ दुनिया भर के पर्यटक कृत्रिम वातावरण की चकाचौंध से दूर प्रकृति के मौन सौन्दर्य के बीच चैन की श्वास लेने को बेचैन रहते हैं। यों तो भारत की भौगोलिक स्थितियाँ एवं जलवायु इतनी विविध है कि यहाँ चाहे पर्वतों की सैर करें या समुद्रतटों की, हर प्राकृतिक पहलू की एक लम्बी श्रृंखला मिलती है और इसे विशालता के बीच पर्यटक को रूचि के अनुसार स्थल चुनने होते हैं। कश्मीर की वादियों का अपना रंग-रूप है तो हिमालय की वादियों में खो जाना एक अलग अनुभव है। दूर-दूर तक फैली हिमालय की पर्वत-श्रृंखलाओं के अपने नजारे हैं।

इसी प्रकार समुद्र-तटों पर दृष्टि डालें तो भारत के समुद्र-तटों की अलग-अलग अपनी-अपनी लोकप्रियता है, श्रृंखला है। इसी प्रकार वन्य अभयारण्यों या उद्यानों की निराली छटा फैली हुई है।

ऐसे में प्रमुख पर्वतीय स्थलों, समुद्रतटों, उद्यानों और अभयारण्यों की चर्चा करेंगे जो प्राकृतिक पर्यटन के उत्पाद के रूप में विशेष आकर्षण के केन्द्र हैं।

3.2.1 समुद्र- तट

समुद्र-तटों पर पर्यटन के सन्दर्भ में गोवा बहुत लोकप्रिय है। लेकिन महत्त्वपूर्ण समुद्र-तटों का सिलसिला काफी लम्बा है। भारत जहाँ पश्चिम में अरब सागर से घिरा है वहीं इसके पूर्व में बंगाल की खाड़ी है और दक्षिण में हिन्द महासागर की लहरें टकराती हैं। सहयाद्री पर्वतमालाओं ने उन सभी स्थलों को सम्मोहक दृश्यों से सजाया है जहाँ पर्वतमालाएं और सागर मिलते हैं। पश्चिमी समुद्र तट पर कोंकण की धरती उपजाऊ एवं समृद्ध बनी है। इसी प्रकार पूर्वी दिशा में पूर्वी घाटों एवं बंगाल की खाड़ी के बीच एक विशाल मैदान फैला हुआ है जिसे कोरोमण्डल तट कहते हैं। भारतीय महाद्वीप में गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, केरल, दमन एवं दीव और लक्षद्वीप अरब सागर उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, पाण्डिचेरी, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप, बंगाल की खाड़ी की ओर मुखातिब है। इनमें सबसे लम्बा तटीय क्षेत्र, गुजरात का है जहाँ कई सुन्दर समुद्र-तट स्थित हैं।

3.2.1.1 गुजरात के समुद-तट

1. सोमनाथ एवं वेरावल सागर तट - सोमनाथ का भव्य मंदिर अपनी विशाल एवं विराट रूप एवं ऊँचाईयों को अरब सागर के मुहाने पर नापता है और एक मोहक दृश्य उपस्थित करता है। सोमनाथ का तट छाया रहित है लेकिन इसकी दृश्यावली अत्यन्त मनमोहक है। यहाँ ठंडे एवं ताजा नारियलों, ऊँट की सवारी और सागर की लहरों की छटा का आनन्द ही कुछ निराला है। सोमनाथ से 6 कि.मी. दूर वेरावल, एक चारदिवारी में घिरा नगर है जो जूनागढ़ के राजपरिवार का बन्दरगाह था। वेरावल में 'फीसिंग पोर्ट' आकर्षण का केन्द्र है। पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र होने के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार के होटल एवं अन्य सुविधाओं का सृजन हुआ है।

2. द्वारका तट - द्वारका में भी कुछ फैले हुए सागर तट हैं। यहाँ पर्यटकों का मेंला लगा रहता है। यहाँ तट पर पक्षियों जमघट रहता है। यहाँ कछुऐ, डोलफिन आदि मछलियाँ भी दृश्य को जीवन्त बनाती है।

3. पोरबन्दर तट - द्वारका एवं वेरावल के मध्य पोरबन्दर स्थित है जो महात्मा गाँधी का जन्म स्थल है। यहाँ चाँदी एवं सोने की सुन्दर कारीगरी होती है।

4. माण्डवी तट - यह गुजरात का सुन्दरतम तट है और कच्छ महाराव का बन्दरगाह शहर भी। अहमदाबाद से 283 कि.मी. दूर, इस तट पर तैराकी, जल-क्रीड़ाओं की अच्छी व्यवस्था है। यह कभी भुज की राजधानी था। गुजरात सरकार ने भी यहाँ तटों को सुन्दरतम बनाने के प्रयास किये हैं। स्वच्छ नीला जल, पक्षियों की क्रीड़ा, रेतीला सागर तट और फीसिंग हेमलेट्स यहाँ की विशेषताएं हैं। इसके अलावा चोरवाड़ भी सुनहरी धूप वाला तट है जहाँ से सड़क मार्ग द्वारा जुनागढ़, गिरनार, गिर के अभयारण्य एवं सुप्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर तक सड़क मार्ग सुलभ हैं।

3.2.1.2 दिव एवं दमन के तट

1. नागोवा समुद्र तट - नागोवा समुद्र तट चमकीली रेत वाला जलराशि से घिरा हुआ सबसे लम्बा तट है जहाँ जल-क्रीड़ाओं, ऊँट या पोनी सवारी का आनन्द लिया जा सकता है। यहॉ सूर्य की धूप का भी सुखद अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ के जालन्धर एवं चक्रतीथ तट भी सुन्दर है।

2. द्वारका तट - दमन का द्वारका या देवका सागर तट नारियल वृक्षों की शोभा लिए हुए है। यहाँ का जयपोर तट भी देवका तट से कुछ ही दूरी पर है।

3.2.1.2 महाराष्ट्र के सागर तट

1. गणपतिपुले - यह तट महाराष्ट्र के पश्चिमी तट पर स्थित है। यह मुम्बई से 375 कि.मी. दक्षिण में स्थित है। यह भारत के अष्ठ-गणपतियों में से है और 'पश्चिम द्वारा देवता' के नाम से विख्यात है। जलवायु उमस भरा है लेकिन स्वास्थ्यवर्द्धक है। मई यहाँ सबसे गर्म महीना होता है। सर्दी का मौसम यहाँ सुहावना होता है। यहाँ हरी-भरी पहाड़ी पर रिजोर्ट है। यहाँ सम्पूर्ण कोंकण क्षेत्र स्वर्ग समान है। यहाँ के सुनहरे समुद्र तट, मनभावन हरियाली, 400 साल

पुराने गणपति मंदिर, लोकमान्य तिलक का जन्म स्थान रत्नागिरी है। यहाँ महाराष्ट्र पर्यटन विभाग द्वारा ठहरने आदि की सुन्दर सुलभ व्यवस्थाएं उपलब्ध हैं।

2. वेलनेश्वर - रत्नागिरी से 170 कि.मी. की दूरी पर वेलनेश्वर गाँव के पास यह प्राकृतिक एवं साथ-सुथरा सागर तट है। यहाँ नारियल के वृक्षों की कतारें इसके सौन्दर्य को दुगुना कर देती है। यह चट्टानों से रहित तट है जहाँ तैराकी एवं जल-क्रीड़ाएं सम्मव है। यहाँ शिव मंदिर है जहाँ शिवरात्रि मेंला लगता है। यह नारियल के वृक्षों से आच्छादित शान्त और सुहाना सागर तट है।

3. मार्वे सागर तट - यह मुम्बई की भीड़भाड़ के करीब है। मुम्बई के उत्तर में स्थित है। यहाँ की जीवनशैली और मच्छली गाँव, औद्योगिक जीवन के फैलते प्रभाव से बिल्कुल अछूते हैं। यह उन लोगों के लिए स्वर्ग समान है जौ मुम्बई जैसे नगर की चकाचौंध भरी जिन्दगी से उकता गये हों। यहाँ छोटी-छोटी पर्वतश्रेणियाँ, मंत्रमुग्ध करने वाले दृश्य और सूर्योदय एवं सूर्यास्त के दृश्य अत्यन्त मनोहारी होते है। मलन्द होकर बम्बई से यह 40 कि.मी. दूर है। पास ही मनोरी एवं गोराई तट भी लोकप्रिय हैं जहाँ मुम्बई से लोग पिकनिक मनाने जाते हैं।

4. चौपाटी सागर तट - यह मुम्बई का हृदय-स्थल है। यह भारत के स्वतन्त्रता सैनानियों की बैठकों का केन्द्र था। यहाँ गणेशोत्सव पर गणेश प्रतीमाओं के विसर्जन का अद्भुत दृश्य उपस्थित होता है। यह हर शाम सैलानियों से आबाद रहता है। यहाँ लोग चाट, भेलपुरी आदि खाने का भी आनन्द लेते हैं। मुम्बई जाने वाले सैलानियों के लिए शाम को यह विशेष आकर्षण स्थल बन जाता है।

5. जुहू-सागर तट - अरब सागर के मुहाने पर स्थित जुहू तट भी महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल है। यहाँ भी मुम्बई की चाट और भेलपूरी आदि का लोग स्वाद लेते हैं। यहाँ बॉलीवुड के सितारों के बंगले बने हुए हैं। धूप-स्नान, तैराकी आदि मनोरंजन के लिए भी यह उपयुक्त स्थान है। यहाँ कोली मछुआरा समुदाय के सबसे अधिक आवास हैं।

6. बेस्सियन तट - यह मुम्बई से 77 कि.मी. दूर हैं। इस शान्त तट पर स्थानीय लोग पुर्तगाली भोजन की व्यवस्था करते हैं। यह जहाज निर्माण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 1739 में यहाँ मराठाओं ने पुर्तगालियों को शिकस्त दी थी। आज भी वहाँ पुर्तगाली दुर्ग के अवशेष है। यहाँ गिरजाघर, मंदिर एवं बौद्ध अवशेष भी हैं। यह मुम्बई से अहमदाबाद मार्ग पर स्थित है।

7. अलीबाग मुरूद जंजीरा - यह मुम्बई से 165 कि.मी. दूर है और पनवेल सबसे करीब का रेल्वे स्टेशन है। यहाँ पहाड़ी पर दत्तात्रय स्थल हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के तीन शीस या सरों वाला दत्तात्रय आकर्षण का केन्द्र है। 300 साल पुराना मंदिर जंजीरा गुफाएं भी पर्यटन के आकर्षण हैं।

8. दाहन - यह मुम्बई से 145 कि.मी. दूर, लम्बाई में फैला हुआ सुन्दर तट है। यहाँ इरानी एवं पारसी संस्कृति की झलक देखने को मिलती है।

9. माण्डवा किहिम तट - अलीबाग से 12 कि.मी. उत्तर में स्थित इस तट पर मुम्बई से आसानी से पहुँचा जा सकता है। यहाँ लोग कभी कभार छुट्टी मनाने आते हैं। यह एकान्त में स्थित तट है और अपनी खामोशी में ही सौन्दर्य ओढ़े हुए है। यहाँ भी पुर्तगाली, बौद्ध आदि के

अवशेष एवं गुफाऐं हैं। ब्रिहिम, प्रकृति का समृद्ध भण्डार है। घने वन, फूल, रंग-बिरंगी दुर्लभ तितलियाँ आदि यहाँ की शोभा हैं।

इस प्रकार महाराष्ट्र में सागर-तटों की मोहक श्रृंखला है। विजय दुर्ग, सिन्ध दुर्ग, वेन्गुर्ला आदि सागर तट भी अपनी विशेषताऐं लिए हुए हैं।

3.2.1.3 गोवा के सागर तट

1. कोल्वा सागर तट - यह गोवा का सर्वाधिक लोकप्रिय सागर तट है। यह समुद्र के किनारे 20 कि.मी. लम्बा है। यहाँ की चमकीली रेत, आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ सागर, रेत और आसमान के मिलन का मोहक नजारा देखते ही बनता है। प्रकृति के सामंजस्य का यह अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करता है।

2. डोनापाला - पणजी से 7 कि.मी. दूर यह सुन्दर दृश्यों वाला तट है जहाँ से जुआरी नदी एवं मोर्मुगो बन्दरगाह का दृश्यावलोकन किया जा सकता है। यहाँ पॉम के वृक्षों की शोभा देखते ही बनती है। यह एक शान्त स्थल है। इसका नामकरण वाईसराय की लड़की के नाम पर किया गया है। बताया जाता है कि एक मछुवारे से विवाह करने की आज्ञा न मिलने के कारण वह चट्टान से यहाँ कूद गई थी।

3. मिरामार तट - यह पणजी से 3 कि.मी. दूर है। यह भी पॉम वृक्षों से आच्छादित सुनहरा तट है जो अरब सागर को निहारता रहता है।

4. वेंगाटोर तट - जब कभी आप पॉम वृक्षों से आच्छादित नीले जल की लहरों द्वारा छूता हुआ और लोगों की मौज-मस्ती से भरे सागर तट की तस्वीर देखें तो मान लें कि यह वेंगाटोर तट ही हो सकता है क्योंकि यह एक प्रकार से गोवा का ट्रेडमार्क है। अन्जूना, अराम्बल आदि तट भी वहाँ मोहक है।

3.2.1.4 कर्नाटक के सागर तट

कर्नाटक में 320 कि.मी. लम्बा समुद्र तटीय क्षेत्र है जहाँ सैलानियों को आमंत्रण दे रहे विभिन्न सागर तट हैं। इन तटों की शांति और सम्मोहक दृश्यों से भरपूर वातावरण, तटीय वासियों का लोकजीवन एवं उपलब्ध जायकेदार व्यंजन सागरतटीय सैर को रोमांचक बना देते हैं।

1. देवबाग तट - यह तटों की सैर के शौकिनों का प्रिय तट है। यहाँ बन्दरगाह भी है जो पाँच द्वीपों द्वारा तेज हवाओं से सुरक्षित रखा जाता है। यहाँ सदाशिव पर्वतीय दुर्ग एवं दुर्गा मंदिर भी आकर्षक है।

2. मुरूडेश्वर तट - भतकल से 16 कि.मी. दूर मरूडेश्वर भी लोकप्रिय तट है। यहाँ सागर की लहरें, पर्वत श्रृंखलाएं, मंदिर एवं अन्य कई आकर्षक स्थल हैं।

कर्नाटक का ओम एवं कुटले तट, उलाल तट, माल्पे तट, मारावन्थे एवं करवार आदि सागर तटों की भी अलग-अलग विशेषताएं एवं आकर्षण हैं।

3.2.1.5 केरल के समुद्र तट

केरल को भी प्रकृति ने अत्यन्त समृद्ध बनाया है। यहाँ का तटीय क्षेत्र 600 कि.मी. लम्बा है जिस पर दुनियाँ के सर्वोत्तम सागर तट श्रृंखला अपने नारियल वृक्षों के झूंडों, प्राकृतिक बन्दरगाहों आदि के साथ शान्त एवं मोहक वातावरण के लिए प्रसिद्ध हैं।

1. **कोवलम् तट -** तिरूअनन्तपुरम् से 16 कि.मी. दूर कोवलम् तट अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुन्दरतम तट है जो दुनिया भर के पर्यटकों के लिए 1930 से लोकप्रिय बना हुआ हैं। इससे संलग्न तीन अन्य तट हैं। सुदूर दक्षिण में स्थित तट को लाईट हाऊस तट कहा जाता है जो अत्यधिक लोकप्रिय है।

2. **वरकाला तट -** तिरूअनन्तपुरम् से 41 कि.मी. दूर यह तट एक सुन्दर रिजोर्ट है। साथ ही यह हिन्दुओं का तीर्थस्थल भी है। इसके अतिरिक्त शंगुमुखम, पनगास्सेरी, चेराई आदि सागर तट भी केरल की शोभा में चार चांद लगाते हैं।

3.2.1.6 तमिलनाडु के तट

1. **मरीना सागर तट -** चमकीली रेत के मखमली स्पर्श एवं नील जल के मोहक वातावरण वाला मरीना तट अपनी अलग ही विशेषताएं लिए हुए है। यह 12 कि.मी. लम्बा है और एशिया में सबसे लम्बा तथा दुनिया का दूसरा लम्बा तट माना जाता है। यह चैन्नई के पूर्व में बंगाल की खाडी से जुड़ा हुआ है। यहाँ सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय का निराला दृश्य होता है। यहाँ सागर के भीतर की खतरनाक लहरों के कारण स्नान करना या तैरना खतरनाक होता है। यहाँ विभिन्न स्वादिष्ट व्यंजनों का आनन्द लेते हुए मनोरंजन किया जा सकता है। पास ही एक्वेरियम है जहाँ सागर की रंग-बिरंगी मछलियों को देखना एक सुखद अनुभव होता है।

2. **रामेश्वरम् -** यह पवित्र द्वीप है। यहां सागर पर पुल है जिसके द्वारा हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ र रामेंश्वरम् तक जाना सम्मव है। यहाँ सागर की गहराई कम है। चमकीली धूप में स्नान करना एवं तैरना सम्भव है। द्वीप पर रामेंश्वरम् मंदिर, चारों ओर से वृक्षापली एवं मोहक वातावरण से युक्त है।

ममलापुरम् सादुरंग पट्टिनम्, पिचवरम्, पुलिकेट, मुट्टकाड, मंडपम्, पुम्पुहार, वाट्टिकोटई आदि तमिलनाडु के सुन्दर तट हैं।

3.2.1.7 आन्ध्रप्रदेश के तट

ऋषिकोन्डा, भीसुम्मी पटनम् वोडारेवु, माईपद एवं मंगीनापुड़ी आदि आन्ध्रप्रदेश के प्रमुख सागर तट हैं। इनमें मंगीनापुड़ी, मछलीपुरम् से 11 कि.मी. दूर है जो अपने प्राकृतिक दृश्यों के लिए प्रसिद्ध हैं। यह एक पुराना नगर है। यहाँ फौव्वारों, एवं रोशनी की छटा भी पार्क में देखने को मिलती है। अन्य सागर तटों की तरह यहाँ के तट भी आकर्षक हैं।

3.2.1.8 उड़ीसा के सागर तट

1. **पुरी-** यह हिन्दुओं के चार प्रमुख तीर्थों में से एक है और भगवान् जगन्नाथ की नगरी है। यह बंगाल की खाड़ी के किनारे स्थित है। यहाँ भी तटीय शोभा देखते ही बनती है।

2. चाँचीप्रु- यह उड़ीसा का आदर्श सागर तट है। यह भवनेश्वर से 230 कि.मी. दूर है। यहाँ सागर तट का स्मरणीय अनुभव प्राप्त करना सम्भव है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ सागर का जल, पाँच मीटर नीचे उतर जाता है। यह ज्वारभाटे के समय परिवर्तन होता है। गहीरमाथा गोपालपुर, बोलीघई, प्रदीप आदि प्रमुख तट हैं।

3. कोणार्क तट - यहाँ कोणार्क का सागर तट मोहक है जहाँ प्रसिद्ध सूर्य मंदिर स्थित है। यह तट एक सुखद अनुभूति प्रदान करता है।

3.2.1.9 पश्चिम बंगाल के सागर तट

1. दिघा तट - कलकत्ता से 163 कि.मी. दूर यह उड़ीसा की सीमा बंगाल की खाड़ी पर स्थित है। यह सात कि.मी. चोड़ा तट है। यह कलकत्ता वासियों का लोकप्रिय सागर तट है।

2. शकंरपुर तट - यह शान्त स्थल है। यहाँ शान्ति से छुट्टियाँ बिताने के लिए लोग आते हैं। फ्रेजरगंज, गंगा सागर आदि भी पश्चिम बंगाल के सुन्दर सागर तट है।

3.2.2 पर्वतीय स्थल

प्राकृतिक पर्यटन उत्पाद श्रृंखला में पर्वतीय स्थलों की सैर करना भी मुख्य आकर्षण रहा है। मनुष्य के लिए पर्वत सदैव आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। आकाश की ऊँचाईयों को छूने की मानव अभिलाषा उसे सदैव पर्वतों की ओर आकर्षित करती है। भारत में तो पर्वतराज हिमालय की महिमा, प्राचीन काल से ही रही है। लोग हिमालय की गोद में बैठकर तपस्या करने एवं आध्यात्म की अनुभूति प्राप्त करने के लिए वहां जाते रहे हैं। महाभारत युद्ध के बाद पाण्डव बन्धुओं ने द्रोपदी सहित हिमालय पर कूच किया था। पर्वतारोहियों ने भी हिमालय की ऊँची चोटियों तक पहुँचने के अनेक प्रयास किये हैं।

पर्यटन के सन्दर्भ में सालाना पर्वतीय स्थलों के प्राकृतिक वातावरण का आनन्द लेने के लिए जहाँगीर और नूरजहाँ पर्यटन पर जाते थे। ब्रिटिश शासन काल में पर्वतों की वादियों में समय बिताने और पर्यटन करने का सिलसिला अंग्रेजों ने आरम्भ किया। केन्द्र सरकार ने गर्मियों में शिमला में राजधानी बनाने की परम्परा शुरू की। धीरे-धीरे सम्पन्न एवं मध्यम श्रेणी के लोगों के मन में भी पर्वतीय स्थलों का मोहक वातावरण बसने लगा।

3.2.3 भारत के पर्वतीय पर्यटन केन्द्र

भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है जहां प्रकृति बहुत ही मेंहरबान है। यहाँ के सागर तट, पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं, वहीं पर्वतीय स्थलों का रोमांच भी कम नहीं है। पर्यटकों की पर्वतों पर सैर की प्रवृति के कारण भारत में अनेक पर्वतीय पर्यटन स्थल विकसित हुए हैं।

सतपुड़ा - गुजरात में सतपुड़ा, वन्सदा आदि प्रसिद्ध पर्वतीय स्थल हैं। सतपुड़ा का अर्थ है सर्पों का आवास। सतपुड़ा का पर्वतीय पर्यटक स्थल 875 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है जहाँ वातावरण ठंडा और खुशनुमा रहता है। यहाँ पक्षियों की मधुर चहचहाट और सूर्योदय-पॉइन्ट से सूरज की शोभा को निहारने के लिए पर्यटक लालायत रहते हैं।

होर्सले पर्वतमाला - आन्ध्रप्रदेश जायें तो तिरूपति से 144 कि.मी. दूर पर्वत पर होर्सले नामक अंग्रेज कलेक्टर द्वारा विकसित यह स्थल अपनी वन सम्पदा एवं अन्य आकर्षण के कारण पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसके अलावा हिमाचल प्रदेश में चम्बा जिले में भरमोर पर्वतीय स्थल पर, भेड़पालक चरवाहों का लुभावना केन्द्र है। यह चम्बा से 65 कि.मी. एवं धर्मशाला से 80 कि.मी. दूर है।

चैल शिमला - शिमला के सौन्दर्य को और भी मोहक बनाने वाला चैल, काल्का से 86 कि.मी. दूर है। यह पूर्व में पटियाला राज्य की राजधानी थी। हिमालय की गोद में बसा यह भी सुन्दर स्थल है।

डलहाऊजी - घोलाघर पर्वत श्रृंखला के पश्चिम में कम ऊँचाई की यह पर्वत श्रृंखला भी हिमाचल के चम्बा जिले में हैं। यह 2039 मीटर की ऊँचाई वाला है।

धर्मशाला - हिमाचल प्रदेश में स्थित यह एक आध्यात्म स्थल है बौद्धों के गुरू दलाई लाभा ने यहाँ अपना केन्द्र बनाया है। चीड़ के वृक्षों से आच्छादित यह मनमोहक पर्वत स्थल है। घोलघार का अर्थ है हिमालय की श्वेत बर्फ से ढकी सफेद पर्वत श्रृंखला। धर्मशाला, जहाँ तापमान बदलता रहता है, एक मोहक पर्वतीय स्थल है।

कसौली - शिमला की पहाड़ियों की ओर जायें तो कसौली समुद्र तट से 1927 मीटर की ऊँचाई पर पहला पर्वतीय स्थल है। यह हिमालय की पहली ऊँची पर्वत श्रृंखला के साथ फैली हुई है। शिमला से 77 कि.मी. तथा चण्डीगढ़ से 64 कि.मी. दूर है। हिमालयी ऑक एवं चीड़ वृक्षों की कतारें यहाँ मनमोह लेती है।

कुर्फी - यह शिमला से मात्र 16 कि.मी. दूर है। 2633 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ गहरी घाटियाँ और वन हिमालय पर्वत की ऊँचाई को छूते हुए दिखाई देते हैं। यहाँ राष्ट्रीय स्नोस्टेचर प्रतिस्पर्द्धा होती है।

कुल्लु - हिमाचल प्रदेश में यह जिला मुख्यालय है। 1219 मीटर की ऊँचाई पर है। यहाँ का दशहरा उत्सव, हिमाचल की परम्परा एवं संस्कृति का प्रतीक है एवं प्रसिद्ध है।

मनाली - यह कुल्लु घाटी का प्रमुख पर्यटन स्थल है जो 1829 मीटर की ऊँचाई पर है। तिब्बती शरणार्थियों देशी-विदेशी पर्यटकों के लिए यह मुख्य आकर्षण स्थल हैं।

शिमला - यह हिमाचल की राजधानी है। यह उत्तरी भारत का लोकप्रिय पर्वतीय स्थल है। 2130 मीटर ऊँचाई पर स्थित यह पर्वतीय स्थल गर्मियों एवं सर्दियों दोनों मौसम में पर्यटकों का प्रिय है।

भारतीय पर्वतों का सरताज हिमालय पर्वत है जो दूर-दूर तक फैला है। भारत के पर्वतीय स्थल पर्यटन का बड़ा केन्द्र है। हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय स्थल पर्यटकों की भारी संख्या को अपनी ओर आकर्षित करते हैं वैसे ही कश्मीर की वादियाँ एवं पर्वतीय स्थल भी प्राकृतिक पर्यटन उत्पाद की बड़ी मिसाल हैं।

गुलमर्ग - यह 2730 मी. की ऊँचाई पर है। मुगल सम्राट जहाँगीर का यह पसन्दीदा पर्यटन स्थल रहा है। जम्मू-कश्मीर में यह श्रीनगर से 56 कि.मी. दूर है। गुलमर्ग का अर्थ है फूलों की वादी। यहाँ से नागंगा पर्वत की शोभा का अवलोकन मोहक होता है। यह ट्रेकिंग का भी केन्द्र है।

लेह - सिन्धु नदी से 10 कि.मी. दूर है। इसकी घाटी में 3500 मी. की ऊँचाई पर स्थित लेह भी जम्मू-कश्मीर की शान है।

पहलगाँव - श्वेत बर्फ से ढकी पर्वत श्रृंखला से घिरा पहलगाँव ट्रेकिंग, कोलाहाली ग्लेशियर एवं अमरनाथ गुफा की यात्रा के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण पड़ाव है।

सोनमार्ग एवं श्रीनगर - सोनमार्ग का अर्थ है स्वर्ण मार्ग। जोजिला और लद्दाख से पूर्व यह भारत का प्रमुख पर्वतीय स्थल है। यह भी अत्यन्त मोहक परिवेश वाला समृद्ध पर्वतीय केन्द्र है। हिमालय की वादियों तथा लम्बी पर्वत श्रृंखला की गोद में फैले पर्यटन के प्रमुख केन्द्रों की सैर के बाद यदि केरल की ओर रूख करें तो पालघाट से 75 कि.मी. दूर केरल का नेल्लियाम्पट्टी, ट्रावनकोर के पूर्व नरेशों का पर्वतीय स्थल के साथ ही पर्यटन धाम पीरमेंद आदि कई पर्वतीय स्थल है।

महाराष्ट्र में लोनावाला और खण्डाला, महाबलेश्वर, पंचगनी, मणिपुर में इम्फाल, मेंघालय में शिलांग नागालैंड में कोहिमा, सिक्किम में गंगटोक, तमिलनाडु में कुन्नूर, कोडाई केनाल, उट्टी, उत्तर प्रदेश में अलमेंड़ा, नैनीताल, चमौली, कौसनी, पिथोरागढ़, रानीखेत और पश्चिम बंगाल में दार्जलिंग आदि पर्वतीय स्थल हैं। इस प्राकर भारत में प्राकृतिक पर्यटन उत्पादों की सूची बनाये तो यह इतनी विस्तृत है कि समस्त पर्वतीय स्थलों की श्रृंखला का संक्षेप में वर्णन करना एक दुष्कर काम होगा। प्रत्येक पर्वत स्थल का अपना प्राकृतिक परिवेश और सौन्दर्य है। प्राकृतिक पर्यटन उत्पादों में हर रूचि के पर्यटकों को मोह लेने की अद्भुत क्षमता है। केवल इस पक्ष पर ही बल दिया जाये तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम आ सकते हैं।

3.2.4 वन्य जीवन एवं अभयारण्य

भारत के पक्षी विहार एवं अभयारण्य भी विश्वभर में लोकप्रिय हैं। भारतीय संस्कृति में पशु, पक्षी एवं जीवों की रक्षा करना, धर्म का अभिन्न अंग रहा है और महावीर एवं बुद्ध ने उन युगों में जब पशु वध जैसी विकृत प्रवृतियाँ पनपने लगी तो अहिंसा का संदेश देकर जीवों की रक्षा का अभियान चलाया। अशोक महान् ने भी विशेष पशुओं और पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध लगाये और वनों एवं वन्य जीवन के संरक्षण के उपाय किये। भारत में जीवों की रक्षा, पशुओं की पूजा, पक्षियों को चुगा या दाना डालने और वृक्षों की पूजा जैसे कई ऐसे विधि विधान आज भी जारी है जो यह दर्शाते हैं कि भारत में वनों एवं वन्य जीवन की महत्ता को किस प्रकार प्राचीन काल से जीवन का एक अभिन्न अंग बनाया गया था। भारत में प्रकृति पूजन के विविध विधि-विधान आज भी जारी हैं।

राजा महाराजाओं ने भी वनों एवं वन्य जीवन का सन्तुलन बनाये रखने के प्रयत्न किये। वन्य-जीवों के शिकार पर पाबन्दी थी और ऐसा करने वालों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वनों की अन्धाधुन्ध कटाई और वन्य जीवों के शिकार कारण खतरे में पड़े वनों एवं वन्य जीवों के संरक्षण के लिए अभयारण्यों की स्थापना की गई। राजस्थान में ग्रेट इन्डियन बस्टार्ड या सारस, असम में गेंडों गुजरात में शेरों, राजस्थान में टाईगर आदि के संरक्षण के लिए अभयारण्य घोषित किये गये। दुनियाँ भर के लोगों के लिए ये अभयारण्य एवं वन्य जीवन से आबाद वन आज आकर्षण के बहुत बड़े केन्द्र हैं और पर्यटन विकास के महत्त्वपूर्ण स्थल भी।

राजस्थान में तो वन्य जीवन एवं वनों की रक्षा हेतु प्राणों तक का त्याग करने की परम्पराएं रही हैं। राजस्थान के जोधपुर सम्भाग में खेजड़ी के विश्नोई जाति के लोगों ने अब से 270-75 साल पूर्व वृक्षों के काटने के तत्कालीन रियासत के आदेशों के खिलाफ 363 स्त्री-पुरूष वृक्षों से लिपट गये और अपने प्राणों की आहुति दे दी लेकिन जीवित रहते वृक्षों की कटाई सहन नहीं की। विश्नोई जाति के लोग इतना ही अटूट प्रेम वन्यजीवों से भी करते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण हैं जर्बाके विश्नोई, जीवों की रक्षा करते हुए शिकारियों की गोली के शिकार हुए वृक्षों, वनों और वन्य जीवन के संरक्षण की ऐसी गौरवमयी मिसाल दुनियाँ में मिलना दुर्लभ है।

ऐसी समृद्ध परम्परा को ध्यान में रखते हुए राजस्थान में कई अभयारण्यों एवं शिकार निषिद्ध क्षेत्रों की स्थापना की गई है। राजस्थान में अभयारण्यों की एक लम्बी सूची है। देर आये, दुरूस्त आये, यदि भारत में बाघों की घटती संख्या और विनाश को रोकने के लिए देश की बाघ परियोजनाओं को ही लें तो राजस्थान में रणथम्भौर, सरिस्का, उत्तरप्रदेश में कोरबेट राष्ट्रीय उद्यान, मध्यप्रदेश में कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, उड़ीसा में सिम्लीपाल राष्ट्रीय उद्यान, बिहार में पालमाऊ, तमिलनाडु में कालाकद मुन्दकराई, असम में मानास पश्चिम बंगाल में बक्सा, सुन्दरवन, केरल के पेरियार, महाराष्ट्र में मेंघघाट, उत्तरप्रदेश में इन्द्रावती, आन्ध्रप्रदेश में नागरापन एवं अरूणांचल में नामदाफा परियोजनाओं के नाम प्रमुख हैं। राजस्थान में मनोहारी पखेरूओं एवं पक्षियों का बिहार, भरतपुर का घना पक्षी विहार भी विश्व प्रसिद्ध है।

चिड़ियाघरों में रंग-बिरंगे पक्षियों तथा वन्य-जीवों को देखना आनन्ददायक अनुभूति होती है लेकिन अपने प्राकृतिक आवास अर्थात् घने वनों में पशु-पक्षियों की चहचहाट और हलचल तो आदमी को मंत्रमुग्ध करने वाली होती है। ज्यों-ज्यों मनुष्य ने कृषि कार्यों के साथ विकास किया, वह प्रकृति के मोहक वातावरण से दूर होता गया। लेकिन आज भी आम जीवन की चकाचौंध से जब व्यक्ति ऊब जाता है तो उसकी इच्छा इन्हीं वनों एवं वन्य-जीवन की मुखर खामोशी में खो जाने को लालायित रहती है। लेकिन इस रिश्ते को भूल जाने के कारण वन एवं वन्य जीवन असुरक्षित होता गया और उसका भारी नुकसान भी हुआ। लेकिन वर्तमान जीवनशैली की त्रासदी के कारण अब फिर से व्यक्ति वनों एवं वन्य जीवन के बीच प्रकृति से अपने पुराने रिश्ते तलाशने लगा है और इससे पक्षी विहार या अभयारण्यों की लोकप्रियता बढ़ने लगी है। इन पक्षियों और पशुओं के बीच जाकर जो रोमांचक आनन्दानुभूति होती है, उसको अभिव्यक्त कर पाना कठिन है।

इन्हीं सब कारणों से इस समय राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्य एवं पक्षी-विहारों के प्रति पर्यटकों का रूझान बढ़ रहा है और इससे पर्यटन विकास में भारी योगदान मिल रह है। इसलिए कहा जाता है कि वन्य जीवन और अभयारण्यों आदि से युक्त प्रकृति से सम्बन्धित पर्यटन उद्योग एक बिना चिमनी और धुए वाला, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं विशुद्ध पर्यटन है।

3.3 विविध मानव निर्मित उत्पाद

भारत के हजारों मंदिरों, स्मारकों, गुफाओं, दुर्गों के विस्तृत फलक पर दृष्टि डालें तो यह इतना विस्तृत है कि गिनती करना कठिन हो जाये क्योंकि भारत दुनियाँ की प्राचीनतम संस्कृति वाला देश है। यहाँ हिन्दू, बौद्ध, जैन एवं अन्य धर्मों का स्वतन्त्र विकास हुआ है और अनेक आक्रमणकर्ता शासकों ने भी शासन किया है। सदियों की यात्रा में अनेक स्मारक, मंदिर, दुर्ग, महल एवं ऐतिहासिक मानव निर्मित पर्यटन स्थल, विगत की वैभवपूर्ण धरोहर को संजोये हुए है।

भारत के प्राकृतिक स्थलों, यहाँ के परम्परागत लोकजीवन, नृत्य, संगीत आदि परम्पराओं के अलावा भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत के कारण पर्यटन क्षेत्र में विशेष पहचान रखता है।

ऐसे में विस्तृत रूप से मानव-निर्मित पर्यटन उत्पादों का वर्णन करने के बजाय प्रमुख पर्यटन उत्पादों का जिक्रमात्र किया गया है। उत्तर प्रदेश से ऐसे उत्पादों पर दृष्टि डालना आरम्भ करें तो वाराणसी से 15 कि.मी. दूर सारनाथ बौद्धों का पवित्र स्थल है जो दुनिया में बौद्ध धर्म के अनुयायियों एवं अन्य धर्मस्थलों में रूचि सम्पन्न पर्यटकों का केन्द्र है। कुसी नगर भी ऐसा ही स्थल है। आगरा के ताजमहल की चाँदनी रात में शोभा देखने के लिए तो दुनिया भर के पर्यटकों का आकर्षण बना रहता है। सिकन्दरा, फतेहपुर सिकरी, लुम्बिनी, बौद्धगया, राजगिर, नालन्दा आदि उत्तरप्रदेश में पर्यटन के प्रमुख आकर्षण केन्द्र है।

यहाँ से मध्यप्रदेश की और रूख करें तो खजुराहो अपने मूर्तिशिल्प एवं प्राचीन मंदिर स्थापत्य एवं सौन्दर्य के लिए दुनियाँ के पर्यटन नक्शे पर छाया हुआ है। साँची एवं मांडु में भी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वैभव एवं परम्परा के अनेक पृष्ठ फड़फडाते हैं।

राजस्थान में शिल्प एवं सौन्दर्य से भरपूर गुलाबी नगर जयपुर भी दुनिया के पर्यटन नक्शे पर अपना प्रमुख स्थान रखता है और उदयपुर के महलों और झीलों की रंगत में दुनिया के पर्यटक खो जाते हैं। माऊन्ट आबू एवं रणकपुर का प्राचीन मंदिर शिल्प और चितौड़गढ़ दुर्ग के जौहर शौर्य, त्याग और बलिदानों की गाथा तो दुनिया के इतिहास में कहीं और पढ़ने को नहीं मिलता। ये भी सशक्त पर्यटन उत्पाद हैं। सुदूर दक्षिण में तमिलनाडु, महाबलीपुरम्, काँचीपुरम् चोलापुरम्, मदुरई, फोर्ट सेन्ट जॉर्ज तो कर्नाटक में बीजापुर, बैलूर, आन्ध्रप्रदेश में नागार्जुन कोडा और हैदराबाद की अपनी कहानियाँ और शानोशौकत है। महाराष्ट्र में अजन्ता एवं एलोरा की गुफाओं को कौन नहीं जानता। एलिफेन्टा, कार्ले भी महाराष्ट्र के पर्यटन केन्द्र हैं।

उड़ीसा में सागर तट पर खड़े कोणार्क के सूर्य मंदिर की चर्चा दुनिया में कहाँ नहीं होती। भुवनेश्वर, उदयगिरी और खानगिरी का अपना अलग ही महत्त्व है। गुजरात में मोथेरा दिल्ली में कुतुबमीनार, जन्तर-मन्तर और भारत के दार्जलिंग, पुरी आदि अनेक नगरों की भी लम्बी श्रृंखला है जो पर्यटन सन्दर्भ में अलग पहचान रखते हैं।

इस प्रकार प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय रूपों में दृष्टि डालें तो भारत की विशाल पुरा सम्पदा, अति प्राचीन संस्कृति, हस्तशिल्प, लोक परम्पराओं, त्यौहारों, उत्सवों आदि के विविध एवं अनेक आकर्षण, पर्यटन विकास की भारी सम्भावनाओं का द्वार खोलते हैं। शर्त यह है कि इस सम्पदा की देखरेख, संरक्षण, संवर्द्धन एवं प्रस्तुतिकरण के कारगर एवं गम्भीर प्रयास किये जाये। यदि ऐसा सम्भव हो तो कोई कारण नहीं कि भारतीय पर्यटन उत्पाद अपनी शक्ति का परिचय देने में सफल न हो।

जहाँ प्राकृतिक पर्यटन के उत्पादों के साथ मानव-निर्मित उत्पादों के जोड़ने का प्रश्न है, यह एक समग्रता का प्रश्न है। भारत में प्राकृतिक पर्यटन उत्पादों के साथ मानव-निर्मित उत्पाद भी अभिन्न रूप से जुड़े हैं। चाहे पर्वतीय स्थल हो या सागर तट, उनके आसपास मंदिर, पुराने दुर्ग, स्मारक, शिल्प से पूर्ण भवन आदि मानव-निर्मित स्थल मिलेंगे। परम्परा के अनुसार प्राकृतिक पर्यटन के साथ-साथ सांस्कृतिक स्मारकों एवं ऐतिहासिक स्थलों के परिवेश से भी परिचय हो तो एक साथ दो काम हो जाते हैं।

प्राकृतिक पर्यटन उत्पादों के महत्त्व को दुगुना करने के लिए अनेक मानव-निर्मित उत्पाद भी सहायक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए पर्वतस्थलीय उत्पादों के साथ यदि हिमालय एवं अन्य पर्वतीय स्थलों पर पर्वतारोहण को बढ़ावा दिया जाये तो पर्यटन का विकास अधिक हो सकता है। जम्मू-कश्मीर, उत्तरप्रदेश, हिमाचल आदि पर्वतीय पर्यटन से सम्बन्धित प्रदेशों में पर्वतारोहण, ट्रेकिंग, बर्फ पर स्केटिंग आदि पर्वतीय खेलों एवं साहसिक कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के प्रयत्न किये जायें तो पर्वतीय पर्यटन में और इजाफा हो सकता है।

यहाँ प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित पर्यटनों की भारतीय सन्दर्भ में चर्चा की गई है। प्राकृतिक स्थलों में चाहे सागर तट हों, वन्य जीवन और अभयारण्य हों या पर्वतीय स्थल, पर्यटन में वृद्धि का इन्हें मूल आधार मानते हुए इनका उपयोग करते समय प्राकृतिक परिवेश को बनावटी बनाने या इसको क्षति पहुँचाने वाले समस्त कारकों पर कड़ी नजर रखी जानी चाहिए। बिना प्रकृति से कोई छेड़छाड़ किये पर्वतीय क्षेत्रों जैसे हिमाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड, मिजोरम आदि जो अपने परम्परागत लोकजीवन को काफी सीमा तक बनाये रख सके हैं, उनकी सांस्कृतिक धरोहर में भी पर्यटन को आगे बढ़ाने की अद्भुत क्षमता है। इन आदिवासी एवं पर्वतीय जीवन से उत्पन्न लोकनृत्य, लोक संगीत, त्यौहार और उत्सवों की अपनी अलग पहचान है। अतः प्राकृतिक पर्यटन उत्पादों को प्रोत्साहन देते समय इन लोक उत्सवों, नृत्यों, संगीत, धार्मिक एवं अन्य त्यौहारों आदि के व्यवस्थित आयोजन द्वारा पर्यटकों के लिए पर्वतीय एवं प्राकृतिक भ्रमण का एक और विशेष साधन तैयार किया जा सकता है जो प्राकृतिक पर्यटन को नई दिशा प्रदान करने में सक्षम हो सकता है।

प्राकृतिक परिवेश में पर्वतीय या अन्य स्थलों पर जैसे सागर तटों पर जल-क्रीड़ाओं या खेलों और पर्वतों पर ट्रेकिंग आदि के आयोजन करके प्रकृति का अवलोकन करने में रूचि रखने वाले पर्यटकों को एक नया उपहार दिया जा सकता है। यह प्राकृतिक पर्यटन उत्पादों को नई दिशा दे सकता है। पर्यटन को नये आयाम देने की दिशा में प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित पर्यटन उत्पादों के सन्दर्भ में और भी कई पहलू जुड़े हुए हैं।

3.3.1 यातायात एवं संचार

पर्यटन उत्पादों के विकास की दिशा में पर्यटन के ढाँचे का समुद्र तटीय, पर्वत स्थलीय एवं अन्य क्षेत्रों में विकास करना भी एक अहम् पक्ष है। इसके लिए यातायात एवं संचार का सुदृढ़ आधार तैयार करना आवश्यक है। कई पर्वतीय एवं दुर्गम स्थल ऐसे हैं जहाँ पर्यटकों के आकर्षण की पूर्ति की भारी सम्भावनाएं मौजूद हैं लेकिन सड़क, वायु, रेल आदि की पूरी व्यवस्था के अभाव में यातायात की सुविधाएं अपर्याप्त है। संचार व्यवस्था भी आवश्यकता के अनुरूप नहीं हैं।

जैसा कि सर्वविदित है कि मैदानी इलाकों की अपनी भौगोलिक स्थितियाँ होती हैं लेकिन पर्वतीय क्षेत्रों में खासतौर से स्थितियाँ अधिक कठिन होती हैं। ऐसे में पर्वतीय क्षेत्र में सड़कों का जाल बिछाना या अन्य यातायात सुविधाओं का सृजन करना विशेष कठिन काम है। यद्यपि आर्थिक एवं पर्यटन पक्षों को ध्यान में रखते हुए पर्वतीय स्थलों पर सड़क निर्माण कार्यों पर काफी ध्यान दिया गया है और कई ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थल हैं जो पर्यटन की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है जहाँ पहुँचना कठिन था, वहाँ सुगमता से पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया गया है। यह प्रशंसनीय प्रयास है लेकिन विस्तृत रूप से फैले पर्यटन आकर्षण के स्थलों के लिहाज से अभी भी यातायात

सुविधाएं अपर्याप्त हैं। बड़ा पहाड़ी स्थल जो वायुसेवा से जुड़ा है, वह श्रीनगर है। अधिकांश पर्वतीय स्थल सड़क मार्ग से जोड़े गये हैं लेकिन इस व्यवस्था को गुणात्मक बनाने की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है।

जैसा कि मानव प्रकृति है, पर्यटक नये-नये गन्तव्य स्थलों की तलाश में रहते हैं। यदि उनके सामने विकल्प होते हैं तो वे बने बनाये रास्ते बदलते हैं। काफी समय से नेपाल के लिए यातायात या वायुसेना आदि सेवाओं के कारण वह पर्यटकों की नजरों में चढ़ा हुआ था लेकिन अब भूटान का सौन्दर्य, पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनने लगा है।

इसलिए बने-बनाये पर्यटन ढाँचे को नये आयाम देने के लिए नये सोच और नई व्यूह-रचना की जरूरत है। लाहौल, बद्रीनाथ और उत्तर-पूर्वी सीमा क्षेत्र में मणिपुर, अरूणाचल, मेघालय आदि क्षेत्र यदि पर्यटन के लिए खोल दिये जाए, इनका समुचित प्रचार-प्रसार किया जाये तो शायद भारतीय पर्यटन में एक नया अध्याय जुड़ जायेगा।

3.3.2 प्रबधंन एवं सेवाएं

भारतीय पर्यटन के क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या पर्यटन प्रबंधन एवं सेवाओं की है। यह उद्योग मूलत: बेहतर सेवाओं और प्रबंधन पर टिका रहता है। ऐसे कई महत्त्वपूर्ण स्थल हैं जहाँ यातायात एवं गन्तव्य स्थलों को बेहतर बनाये जाने से होटल व्यवसाय ने भी गति पकड़ी है। सरकार ने भी पहल करके गेस्ट हाऊस, टूरिस्ट अट, यूथ, होस्टल आदि का विकास किया है लेकिन कमजोर व्यवस्थाओं, प्रबंधन एवं सेवाओं के कारण ये प्रयोग असफल सिद्ध हुए हैं। जहॉ पर्यटन का प्रवाह बढ़ जाता है और निजी क्षेत्र के लोग सक्रिय हो जाते हैं, वहाँ स्थितियाँ फिर भी बेहतर हो जाती बावजूद निजी क्षेत्र के अधिक लाभ कमाने की प्रवृति के। सरकारी स्तर पर प्रयत्न विफल होने का कारण प्रबंधकीय क्षमता में कमी का होना है।

इसलिए जरूरत इस बात की है कि पर्यटन विकास की व्यूह-रचना में प्रबंधन, सेवाओं, यातायात आदि की कमियों पर गंभीर चिन्तन किया जाना आवश्यक है। साथ ही पर्यटन के सन्दर्भ में आम व्यूह-रचना बनाते समय समुद्र तटीय या पर्वतीय या अन्य उत्पादों की प्रकृति और जरूरतो के अनुरूप भिन्नता के साथ योजनाएं बनाकर उन्हें अन्जाम दिया जाना चाहिए। टूरिज्म मार्केटिंग के तौर-तरीके भी अलग-अलग होने चाहिए।

3.4 सारांश

इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य में प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित पर्यटन उत्पादों की अपनी अलग-अलग विशेषताऐं अलग-अलग समस्याएं और स्थितियाँ हैं। जो कुछ है, उसमें सम्भावनाओं की कोई कमी नहीं है। जरूरत बेहतर प्रबंधन और बेहतर सेवाओं का नेटवर्क धीरे-धीरे तैयार करना और विश्व-परिदृश्य में पर्यटन की प्रतिस्पर्द्धा और चुनौतियों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ने की है।

पर्यटन उद्योग ने विगत वर्षों में काफी कुछ अनुभव लिए हैं। अनेक प्रयास भी किये हैं और उनके अच्छे परिणाम भी आये हैं। लेकिन 'आसमान सीमा' है अर्थात् 'स्काई इज दी लिमिट', अभी मंजिल दूर है। पर्यटन उद्योग के विभिन्न उत्पादों की क्षमता को बेहतर बनाने और उनके आकर्षण एवं शक्ति का सम्पूर्ण उपयोग करने का काम अभी अधूरा है।

परिदृश्य तेजी से बदल रहा है और भारतीय पर्यटन उद्योग के और अधिक सुदृढ़ होने की प्रक्रिया जारी है - उज्जल भविष्य की ओर।

3.5 उपयोगी साहित्य

1. Tourism in India : Perspective & Challenges, Romila Chawla, Sonali Publications, New Delhi-2003.
2. Tourism Marketing, S.M. Jha, Himalaya Publishing House, Bombay 1997.
3. Tourist Development : Dougias G. Tearce & HW Durant, Longman UK, 1981.
4. The Development of tourism University of Colombo Press-1963.

3.6 अभ्यास प्रश्न

1. प्राकृतिक एवं मानव निर्मित उत्पादों से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये।
2. भारत में समुद्र तटीय स्थलों के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
3. पर्वतीय स्थलों पर पर्यटन विकास की समस्याएं क्या हैं?
4. भारतीय पर्यटन को नई दिशा देने के उपाय सुझायें।
5. पर्यटन व्यूह-रचना का क्या तात्पर्य है?

खण्ड- 2 : विविध उत्पाद

इकाई-04 प्रदर्शनात्मक कलाएं
इकाई-05 भारतीय संगीत परम्परा
इकाई-06 भारतीय शास्त्रीय नृत्य

इकाई - 04 : प्रदर्शनात्मक कलाएं

रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रदर्शनात्मक कलाओं की परिभाषा
4.3 रंगमंच
4.3.1 आधुनिक रंगमंच
4.3.2 नृत्य
4.3.3 संगीत
4.4 भारतीय रंगमंच : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
4.5 पारसी रंगमंच
4.6 गुजराती रंगमंच
4.7 मराठी रंगमंच
4.8 बंगला रंगमंच
4.9 हिन्दी रंगमंच
4.10 तमिल रंगमंच
4.11 तेलगू रंगमंच
4.12 कन्नड़ रंगमंच
4.13 मलयालम रंगमंच
4.14 सारांश
4.15 उपयोगी साहित्य
4.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

भारतीय संस्कृति की विस्तृत झलक यहाँ के मंदिरों, देवालयों, दुर्गों, महलों, स्मारकों, हस्तशिल्प, गीत, संगीत, नृत्यों-नाट्यो आदि विभिन्न रूपों में मिलती है। मौन में भी संस्कृति वाचाल है। भारतीय लोकजीवन या सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति उसके प्रदर्शनों, मुद्राओं, हाव-भावों उत्सवों, मेंलों, त्यौहारों आदि अनेक अवसरों पर होती है।

इस इकाई का उद्देश्य, प्रदर्शनात्मक कलाओं का विवेचन करना है ताकि पर्यटन के आकर्षण की इन जीवन्त अभिव्यक्तियों के मर्म को समझकर आप यह बताने में समर्थ हो सकें कि किस प्रकार भारतीय जीवन का हर पक्ष अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसे स्थानान्तरित करता रहा है। किसी भी देश या नस्ल की संस्कृति उसके मन, हृदय एवं प्राणों में रची-बसी रहती है और विभिन्न अवसरों पर मुखरित होकर नृत्य नाटक या अन्य विधा के रूप में प्रगट होती है। इस इकाई के अध्ययन से आप यह स्पष्ट कर सकेंगे कि भारत की विशाल और समृद्ध विरासत किस प्रकार सदियों से चली आ रही इन कलाओं में निहित है।

4.1 प्रस्तावना

कोई भी संस्कृति जब ठहर जाती है तो उसके अस्तित्व को बनाये रखना कठिन होता है। वह तब तक जीवित रहती है जब तक उसमें सृजन की क्षमता रहती है। समय के साथ भारतीय प्रदर्शनात्मक कलाओं की शास्त्रीय शैलियों के साथ-साथ कलाओं में परिवर्तन आते रहे हैं। बात कहने के ढंग बदले हैं लेकिन उनकी कलात्मक मौलिकता में अन्तर नहीं आया है।

मिथक, नृत्य, संगीत, नाट्य, प्रस्तुतियाँ आदि भारतीय सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग रहे है। भारतीय प्रदर्शनात्मक कलाएं जन-जन की कलात्मक प्रतिभा को व्यक्त करने का माध्यम रही है। इन कलाओं की यह विशेषता है कि यह अपनी मौलिकता को बनाये रखते हुए दूसरी लोक परम्पराओं से अनुप्रेरित होने और सृजनात्मकता की अद्भुत क्षमता रखती है। कई बार लगता है कि प्रदर्शनात्मक कलाएं आधुनिक जीवनशैली के दबाव में कहीं खो गई है। लेकिन, वास्तव में ऐसा नहीं है। भारतीय जीवन के शाश्वत मूल्यों को लेकर धार्मिक परिप्रेक्ष्य में आरम्भ हुई विविध प्रदर्शनात्मक कलाऐं आज भी अपनी जड़े जमाये हुए हैं और ये मूल्य उसके बाहरी रूपों के बदलाव के बावजूद जीवित हैं।

4.2 प्रदर्शनात्मक कलाओं की परिभाषा

भारत में प्रदर्शनात्मक कलाओं का इतिहास बहुत पुराना है। रंगमंच, नृत्य, संगीत आदि को समृद्ध परम्पराएं भारतीय सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग रही है। दरअसल ये समस्त कलाएं धार्मिक स्थलों पर आराध्य देवों को रिझाने के रूप में आरम्भ हुई पूजा-अर्चना के एक माध्यम के रूप में विकसित हुई और साथ ही मनोरंजन का माध्यम भी बनी। पर्यटन के सन्दर्भ में प्रदर्शनात्मक कलाओं का विशेष महत्त्व इसलिए है क्योंकि हूँ प्रदर्शन की और सबका आकर्षण स्वाभावित होता है।

प्रदर्शनात्मक कलाओं का अस्तित्व इनके प्रदर्शन में निहित है। कोई भी नाट्य कृति, संगीत या नृत्य रचना, जब जीवन्त अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत की जाती है तो वह सुखद हो जाती है और कलाकार एवं दर्शक के बीच एक संवाद स्थापित हो जाता है और प्रस्तुत कला दर्शक के हृदय पर अंकित होने लगती हैं। इस क्षमता के कारण पर्यटको या दर्शकों को प्रदर्शनात्मक कलाएं अधिक रिझाती है।

यों तो टेप से संगीत सुनना, सिनेमा के माध्यम से नाटक की प्रस्तुति या नृत्य की प्रस्तुति आदि कई आधुनिक तौर-तरीके आज विद्यमान हैं। लेकिन नृत्य, संगीत, नाटक, जीवन्त प्रस्तुति है। ये जीवन्त अनुभूतियॉ पैदा करती हैं। ये प्रदर्शनात्मक कलाएं हमारे अनुभवों एवं अनुभूतियों को गहराई तक छूने की क्षमता रखती है। शास्त्रीय नृत्य हो या संगीत या कोई नाट्यकृति उसकी प्रस्तुति ही प्रदर्शन है और वे कलाएं जो अपने भीतर समाहित कलात्मकता को इस प्रकार व्यक्त करती है प्रदर्शनात्मक कलाएं कहलाती हैं। नाट्यकृति को पढ़ने और मंच पर मंचित होते देखने में अन्तर है। नाटक की रचना करने वाले की कल्पना मंच पर साकार हो उठती है। मूर्त के माध्यम से अमूर्त के एहसास की विधाओं में प्रदर्शनात्मक कलाओं का कोई जवाब नहीं। प्रदर्शनात्मक कलाएं सार्थक एवं प्रभावोत्पादक माध्यम है।

4.3 रंगमंच

भारतीय प्रदर्शनात्मक कलाओं में कल्पना, सर्जनात्मकता, सौन्दर्य एवं जीवन का अद्भुत सामंजस्य रहा है। लोक जीवन के साथ-साथ इनके शास्त्रीय स्वरूप भी विकसित हुए हैं। संस्कृत भाषा में कालिदास एवं अन्य नाट्य रचनाकारों की कृतियाँ उच्चकोटि की है जो आज भी नाटक के शाश्वत रूपों एवं झूलों पर प्रकाश डालती है। भारत में हर विधा की श्रेष्ठता के मापदण्ड एवं नियम बनाये गये। नाटक की रचना के लिए उसके मंचित होने के तकनीकी पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया गया। नाटक में कल्पना, मुद्राओं, हावभावों आदि के द्वारा यथार्थ की जिस प्रकार प्रस्तुति की जाती है। उसे देखकर दर्शक को यह अनुमति होनी चाहिए कि यह उसकी या अन्य किसी पात्र के जीवन से मेल खाती है। नाटक भले ही यथार्थ न हो लेकिन उसकी प्रस्तुति यदि यथार्थ के निकट नहीं है तो वह दर्शक के भावों, विचारों पर असर डालने में सफल नहीं हो सकता।

भारतीय रंगमंच का आरम्भ धार्मिक, सामाजिक अनुष्ठान और विभिन्न उत्सवों से माना जाता है जो धीरे-धीरे नाट्यकला के रूप में विकसित हुआ। नाटक, मानव मन के यथार्थ और गहराईयों से जुड़ा होता है। वह जीवन के सुख, दुख, त्रासदी आदि के लिए जिम्मेदार मनुष्य के कार्यों, विभिन्न घटनाओ, भाग्य और प्रारब्ध आदि विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है। प्रारम्भ में नाटकों के विषय धार्मिक, पौराणिक आदि होते थे। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् जैसी अनेक शास्त्रीय नाट्य रचनाओं की भारत में गौरवमयी परम्पराएं रही हैं जो भारतीय रंगमंच के लिए आज भी महत्त्वपूर्ण है।

समय के साथ हर कला विधा में परिवर्तन आते हैं और भारतीय रंगमंच भी इससे अछूता नहीं रहा है। यह कई परिवर्तनों के दौर से गुजरा है। लेकिन भारतीय रंगमंच की जड़ें सदैव भारतीय जीवन में रही और इसकी शैलियाँ भी यहाँ के परिवेश से जुडी रही।

4.3.1 आधुनिक रगंमंच

भारतीय रंगमंच की प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय पहचान भी रही है। इन विविध प्रदेशों की नाट्य या रंगमंच परम्पराओं के बीच पोषित भारतीय रंगमंच अत्यन्त समृद्ध कला है। महाराष्ट्र में मराठी रंगमच, बंगाल में बंगाली रंगमंच परम्परा और राजस्थान में ख्याल आदि कई आंचलिक एवं प्रादेशिक रंगमंच शैलियों की अपनी-अपनी विशेषताएं रही हैं और ये आज भी अपनी जड़ों को मजबूती से जमाये हुए हैं। यद्यपि कुछ प्रादेशिक रंगमंचीय विधाएं आधुनिक मनोरंजन के साधनों की चकाचौंध में गुम हो गई है।

अन्य विधाओं की तरह देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक ढांचे पर विदेशियों के आगमन से कई प्रभाव पड़े, वैसे ही रंगमंच भी कुछ सीमा तक प्रभावित हुआ लेकिन भारतीय रगमंच में सर्वाधिक आधारभूत परिवर्तन 19वीं सदी में पश्चिम के सम्पर्क में आने पर पड़ा। भारतीय रंगमंच अपनी रंगमंचीय परम्परा के गौरव को भूलकर पश्चिमी दुनियाँ के नाट्य प्रयोगों या शैलियों से प्रभावित होकर उनकी नकल करने लगा।

कहते हैं कि किसी भी देश के अपनी संस्कृति एवं सभ्यता से हटकर नकल करने का अर्थ है अपने स्वयं के अस्तित्व को भूलना। नकल का मतलब आत्महत्या के समान माना जाता

है। नेमीचन्द जैन ने भारतीय रंगमंच नामक पुस्तक में लिखा है कि 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय रंगमंच पूरी तरह से पश्चिम रंगमंच की नकल में लग गया था।

लेकिन स्वतन्त्रता के बाद परिदृश्य में अन्तर आया है। स्वतन्त्र भारत की अपनी समस्याऐं और चिन्ताएं अलग हैं। भारतीय रंगमंच ने भी अपनी जड़ें तलाशना शुरू किया और वह भारतीय चिन्तन और भिन्नताओं से जुड़ा। 1960 के दशक राष्ट्रीय रंगमंच आन्दोलन का जन्म हुआ। भारतीय जीवन में आये परिवर्तन जैसे टूटते संयुक्त परिवार, नया राजनैतिक परिवेश, माध्यम वर्ग का मोहभंग आदि नाटक के विषय होने लगे। साथ ही इस क्षेत्र में कई परिवर्तन भी आये। रंगमंच की विदेशी शैलियों में भारतीय नाटकों का मंचन या प्राचीन एवं पौराणिक परम्परा के माध्यम से वर्तमान की ऊँचाईयों की प्रस्तुति, आदि प्रयोग भी शुरू हुए।

आधुनिक जीवनशैली से सम्बन्धित कई नाटक लोकप्रिय हुए हैं जिनमें मोहन राकेश का आधे-अधूरे, बादल सरकार का इन्द्रजीत एवं पागल घोड़ा, गिरीश कर्नाड का तुगलक और विजय तेंदुलकर का सखाराम बाइन्दर आदि नाटकों ने भारतीय रंगमंच पर खूब धूम मचाई है। इस प्रकार नाटक ने एक नई राह पकड़ी है। नेमीचन्द जैन का कथन है कि "इस समय ऐसा लगता है कि कई तरीकों, रूपों और स्तरों पर नई राह के निर्माण के प्रयत्न जारी हैं। इसके अलावा नुक्कड़ नाटकों का भी दौर चला है।

4.3.2 नृत्य

नाट्य और नृत्य परस्पर सम्बद्ध है। नाट्य द्वारा स्पन्दन, शरीरिक भावों, शब्दों, मुद्राओं, अंग संचालन के द्वारा किसी भाव या बात को पात्र प्रगट करता है। रंगमंच पर नाट्य के पत्र जीवन के रंगमंच की तरह प्रकाश ध्वनि, मंचसज्जा आदि विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए प्रतीकात्मक या सीधे तरीके से अपनी बात दर्शकों तक पहुँचाते हैं। यह दृश्य एवं श्रव्य जीवन्त माध्यम है।

इसी प्रकार नर्तक या नृत्यांगना शारीरिक मुद्राओं और अंग संचालन द्वारा प्रतीकात्मक रूप से अपने भावों को प्रगट करते हैं। मध्ययुग में नृत्य और अभिनय का मिश्रण था। नृत्य में अभिनय से सम्प्रेषण क्षमता को बढ़ाया जाता है। नाट्य या रंगमंच की तरह नृत्य का भी उद्गम स्थल मंदिर और देवालय रहे हैं। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में भरतनाट्यम, ओड़ीसी, कत्थक, कत्थकलि, कुचिपुडी, मणिपुरी, भांगड़ा, गर्बा, घूमर, चक्करी आदि अनेक प्रदेशों से जुड़े हुए भारतीय शास्त्रीय नृत्य है और आज भी कई भारतीय नृत्यांगनाएं विदेशों, पर्यटन उत्सवों एवं अन्य अवसरों पर इन शास्त्रीय नृत्यों की प्रस्तुतियाँ देती है। कई भारतीय नर्तक एवं नृत्यांगनाएं विदेशों में भारतीय नृत्यों के प्रति बढ़ते आकर्षण को देखते हुए वहाँ प्रशिक्षण भी प्रदान करने में संलग्न है।

भारतीय नृत्यों को मुगलकाल में मंदिरों से हटकर आम मनोरंजन के साधन बनाने के प्रयत्न किये गये। आज भी वेशभूषा, कथ्य एवं परम्परा की दृष्टि से भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों के अपने रंग हैं जो उत्सवों और मेलों में स्वाभाविक रूप से व्यक्त होते है।

राजस्थान का ही उदाहरण लें तो कंजर बालाओं का चक्करी नृत्य, घूमर या अन्य आंचलिक लोक नृत्य पर्यटन उत्सवों का प्रमुख आकर्षण होता है। वास्तव में देखें तो दुनियाँ भर के पर्यटकों का प्रमुख आकर्षण भारतीय लोक कलाओं और लोकजीवन तथा प्राचीन परम्परा से जुड़े

रंगमंच या नृत्यों में होता है। आधुनिक नृत्य शैलियाँ या रंगमंच पर आधुनिकता की छाप है और वे भारत की पहचान नहीं कराते।

भारतीय नृत्यों एवं कला की एक विशेषता यह भी है कि इसका लक्ष्य मात्र इन्द्रियगत मनोरंजन करना नहीं है बल्कि यह मनुष्य के मन, हृदय एवं आत्मा को छूने की क्षमता रखती है। भारतीय नाटकों की तुलना ग्रीक नाटकों से की जाती है क्योंकि दोनों के नृत्य या नाट्य में भाव एवं मुद्राओं का महत्त्व समान है।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य आज भी इसलिए लोकप्रिय है क्योंकि हजारों साल के अन्तराल के बाद भी उनकी आत्मा में अपना मौलिक स्वरूप जीवित है। इसका प्रमाण भारत का नाट्यशास्त्र है जो मूलत: संगीत, नृत्य, नाट्य आदि विधाओं को समर्पित है। इसमें इन कला की बारीकियों का अद्भुत वर्णन है।

4.3.3 संगीत

भारतीय संस्कृति में संगीत का विशेष महत्त्व है। संगीत को देववाणी के समान माना गया है। इसके माध्यम से भक्त अपने आराध्य देव से संवाद स्थापित करता है। यह हमारी परम्परा का प्रमुख अंग है। संगीत लोक परम्पराओं से होते हुए शास्त्रीयता की ओर बढ़ता गया। दरअसल, अन्य कला विधाओं एवं प्रदर्शनात्मक कलाओं की तरह संगीत का लक्ष्य मात्र कर्ण-प्रिय ध्वनि की रचना करना नहीं है। ज्ञानविका स्मृति में कहा गया है कि जो मनुष्य संगीत की ध्वनि के भीतर छिपे अर्थ, उसके बीच के अन्तराल, लय आदि को समझता है, वह बिना किसी प्रयास के मुक्ति या स्वतन्त्र अनुभव करने की दिशा में अपने आप बढ़ जाता है। इस प्रकार संगीत मनुष्य के भीतर स्पन्दन उत्पन्न कर उसे अलौकिक अनुभूति का आनन्द प्रदान करता है।

कालान्तर में संगीत की भारत में दो धाराएं हुई - कर्नाटक संगीत और हिन्दुस्तानी संगीत। कर्नाटक संगीत अधिक नियमबद्ध और पाठ आधारित है। हिन्दुस्तानी संगीत का विकास उत्तर भारत में हुआ और इसमें खुलापन है।

हाल ही के वर्षों के शास्त्रीय संगीत अधिक लोकप्रिय हुआ है। देश में मेंहर, किराना, अंतशैली, परिपाला, गायन, वादन आदि कई संगीत घराने हैं जिनकी अपनी-अपनी विशेषताएं हैं।

इस प्रकार पर्यटन के विभिन्न साधनों में नृत्य, नाटक, संगीत आदि प्रदर्शनात्मक कलाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

4.4 भारतीय रंगमंच - एतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय रंगमंच ने सदैव भारतीय विचारों का प्रतिनिधित्व किया है और एतिहासिक क्रम को सामाजिक अर्थों में स्पष्ट किया है। भारतीय नाट्य परम्परा का आरम्भ संस्कृत नाटकों से हुआ है और इसी स्रोत से उसे मानवीय जीवन के आदर्श, आकांक्षाओं और भावनाओं को रूपायित करने की प्रेरणा मिली है। भारतीय नाट्य परम्परा की प्राचीनता का अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि ऋग्वेद संवाद एवं यजुर्वेद में नाट्य प्रदर्शन से सम्बन्धित सामग्री एवं पात्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। वाल्मिकी रामायण में वाद्य-यंत्रों तथा नाट्य संघों के संकेत हैं। इस्वीं सदी के प्रारम्भ में मास के 13 नाटक प्राप्त होते हैं जिनमें 'स्वप्नवासवन्दतम्' प्रयोग की दृष्टि से सर्वाधिक लोकप्रिय था। मारा ने सुखान्त संस्कृत नाटकों के साथ “उरूमंगम्" जैसे दुखान्त नाटक

भी लिखे। मास के परवर्ती नाटककारों में शुद्रक का "मृच्छकटिकम्" अर्थात् मांटी की गाड़ी नाट्यकृति संवेदना से पूर्ण ऐसा सामाजिक नाटक है जिसके समस्त विश्व में अनेक प्रदर्शन हो चुके हैं। कालिदास ने तीन नाटक लिखे जिनमें "अभिज्ञान शाकन्तलम्" का विश्व की श्रेष्ठतम नाट्य कृतियों में स्थान है।

उसके बाद महाकवि भवभूति, विशाखदत्त, श्री हर्ष, भट्टनारयण के द्वारा रचित नाटकों में कवि की कल्पना थी लेकिन इनके नाटक मंचन योग्य नहीं माने जाते। श्रीहर्ष, भट्टनारयण, जयदेव, मुरारी एवं राजशेखर दरअसल शास्त्रीय शैली के नाटककार थे किन्तु उन्होंने कुछ नया नहीं रचा। इसके बाद नाटक तो लिखे गये लेकिन उनमें नाटकीय कल्पना का अभाव था। वे जनमानस को नहीं छू सके। यहीं से संस्कृत नाटकों की लोकप्रियता घटने लगी। विदेशी आक्रमणों के कारण भी संस्कृत रंगमंच का पतन होने लगा।

भारतीय नाटकों के प्राण संस्कृत नाटक या पौराणिक आख्यान रहे है। प्रादेशिक नाटकों में विविधता है एवं उन पर संस्कृत नाटकों के अलावा पाश्चात्य प्रभाव भी देखने को मिलते हैं। यद्यपि भारतीय जीवन दर्शन एवं कला की उन पर छाप भी है। प्रादेशिक रंगमंच का विकास उत्तर भारत एवं दक्षिण, दोनों में समानान्तर हुआ। इसलिए रंगमंच के बहुआयामी विकास को समझने के लिए इन पर दृष्टि डालना उचित होगा।

पारसी रंगमंच

गुजराती, उर्दू और हिन्दी रंगमंच पारसियों का ऋणी है। दरअसल पारसी रंगकर्मियों ने ही सर्वप्रथम व्यावसायिक रंगमंच की स्थापना की थी। सन् 1970 में सस्तमजी प्रामगी ने 'ओरिजनल थियुट्रिकल कम्पनी' की स्थापना की। सन् 1877 में खुर्देशजी ने 'विक्टोरिया थियट्रीकल कम्पनी' की नींव डाली और लंदन जाकर शेक्सपीयर के नाटक 'हेमलेट' का मंचन किया। तत्कालिन पारसी नाटक कम्पनियों में न्यू एलफ्रेड थियट्रिकल कम्पनी, प्रिन्स एवं ओल्ड थियट्रिकल कम्पनी आदि प्रमुख थी। इनमें परस्पर प्रतिस्पर्द्धा थी। कुछ तो 1930-34 तक सक्रिय रही। इनके पास सम्पूर्ण नाट्य मंडली होती थी जिसमें निर्देशक, संगीतकार, गायक, मंचसज्जा करने वाले कुशल लोग होते थे। उस समय पुरूष पात्र ही नारी पात्रों की भूमिका निभाते थे। कालान्तर में वादीवाला ने पहली बार गोहर, मुन्नाबाई, मेरी फेन्टन जैसी महिला पात्रों को नाटक में स्थान दिया।

पारसी नाटक आज की फिल्मों की तरह महंगे होते थे। विशेषकर पौराणिक एवं एतिहासिक नाटकों का खर्च उस युग में एक लाख रू. तक पहुँच जाता था। साहित्यिक दृष्टि से ये उत्तम नहीं होते थे। जनता का मनोरंजन करके पैसा कमाना ही इनका एक मात्र लक्ष्य था। इसलिए इनमें चटपटे संवाद, फड़कते गीत और शेरोशायरी का बाहुल्य था। भड़कीले पर्दे होते थे। इन नाटकों में राक्षसों के हवा में उड़ने, आकाश से परियों के उतरने आदि दृश्य, तकनीकों के माध्यम से दिखाये जाते थे।

पारसी नाटकों का आधार किस्से, कहानियाँ, इतिहास, पुराण, शैक्सपीयर के नाटक आदि होते थे। आगा हम काश्मीरी उस समय के प्रसिद्ध नाटककार थे। उन्होंने आँख का नशा, रूस्तम ओ सुहराब जैसे मौलिक नाटक लिखे जो कि बहुत लोकप्रिय हुए। नाट्य शिल्प में अभिनय करने वाले पारसी नाटक अर्द्ध सदी तक भारतीय रंगमंच पर सिनेमा के चलन तक छाये रहे। सिनेमा का मुकाबला न कर पाने के कारण इनका पतन हुआ।

4.6 गुजराती रंगमंच

पारसी रंगमंच ने गुजराती भाषा को भी अपने नाटकों में स्थान दिया था। अत: उसकी छत्र छाया में ही यह शुरू हुआ। बाद में इसने स्वतन्त्र विकास किया। पारसी थियेटर के विदेशीपन एवं गुजरात के ग्राम्य नाटकों को देखकर सर्वप्रथम रणछोड़ भाई उदयराम ने नई शैली की नाट्य-रचना की। उन्होंने शुरू में संस्कृत नाटकों को गुजराती में रूपान्तरित किया। बाद में सत्य हरिशचन्द्र, नल दमयन्ती, ललित दुख दर्शक जैसे पौराणिक एवं सामाजिक नाटक प्रस्तुत किये। इसके बाद पारसी-गुजराती नाटक मंडलियों का स्थान 1878 में मौर्वी आर्य सुबोध मंडली ने ले ली, जिसकी स्थापना बाघजी भाई आशाराम ओझा ने की। इसने त्रिविक्रम नाटक लगातार पाँच सालों तक खेला। 1885 में गुजराती नाट्य मंडलियाँ शुरू हुई जिनमें नरोत्तम गुजराती की बम्बई गुजराती कम्पनी प्रमुख थी। 1885 में दयाभाई ने देश नाटक समाज की स्थापना की जो लम्बे समय तक गुजराती रंगमंच का पोषण करता रहा। बाद में आर्य नीति दर्शक नाटक समाज, आर्य नाटक समाज, आर्य नैतिक नाटक समाज आदि कई मंडलियों ने गुजराती रंगमंच को गति और शक्ति दी। पिछले पचास साल में गुजराती रंगमंच ने लम्बे डग भरे हैं। इस काल में रमणभाई नानालाल, कन्हैयालाल, माणिकलाल मुंशी, रमणलाल देसाई आदि ने गुजराती रंगमंच को समृद्ध किया है। गुजरात विधा सभा द्वारा स्थापित मंडली ने मैना गुर्जरी आदि नई शैली के नाटक प्रस्तुत किये। अब नवीन नाट्य शैलियों के प्रयोग हो रहे हैं। बकुल त्रिपाठी, रसिक लाल पारीख, चन्द्रवदन मेहरा जैसे लेखक एवं रंगकर्मी गुजराती रंगमंच को आगे ले जा रहे हैं।

4.7 मराठी रंगमंच

मराठी रंगमंच को समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाने में नाट्य लेखकों एवं साहित्यकारों की निष्ठा महत्त्वपूर्ण रही है। इन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को रंगमंच का आधार बनाया। महाराष्ट्र में आगरकर, केलकर, सायसर, वामनराव जैसे क्रान्तिकारियों एवं सामाजिक विचारकों के विचारों का मराठी रंगमंच शक्तिशाली माध्यम बना। बाबूराम, कोलहतफर एवं बालगंधर्व जैसे संगीतकारों ने भी इस परम्परा के उत्थान के लिए अपने को समर्पित किया। मराठी रंगमंच आध्यात्मिक, उत्थान, सामाजिक क्रान्ति एवं स्वतन्त्रता जैसे विषयों को लेकर आगे बढ़ा।

मराठी रंगमंच का प्रारम्भ 1843 में हुआ। कन्नड रंगमंच का अनुसरण करते हुए संगली के राजा के आदेश से दरबार के कीर्तनकार विष्णुदास भावे ने संगीत नाटक प्रस्तुत किये। सीता 'स्वयंवर' मराठी का पहला नाटक था। आयोद्वारक कम्पनी ने शेक्सपीयर के कॉमेडी ऑफ एरर का मराठी रूपान्तरण एवं साहुनगरवासी नाटक मंडली ने पौराणिक नाटक पेश किये। इन नाटकों में गणपतराय जोशी ने संत तुकाराम की एवं नारी पात्र की भूमिका बलवंतराव जोग ने निभाई। शेक्सपीयर के हेमलेट जैसे दुखान्त नाटकों के रूपान्तरण भी प्रस्तुत हुए। मराठी रंगमंच का अगला चरण अन्ना साहिब किर्लोस्कर ने 1880 में किर्लोस्कर कम्पनी की स्थापना के साथ प्रारम्भ किया। उन्होंने संगीत सुभद्रा, सुखदा, रामविजय आदि स्वरचित नाटक प्रस्तुत किये। बाबूराव कोलहतकर ने संगीत दिया एवं नारी भूमिका निभाकर दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। 1908 में मामा वरेरकर ने. कुँजबिहारी प्रस्तुत किया। 20वीं सदी तक मराठी नाटक उच्च वर्ग के आकर्षण का केन्द्र रहा लेकिन माधवराव पत्नाकर ने आम आदमी के सुख-दुख को नाटकों में स्वर दिए।

खाडिलकर रचित 'कीचक वध' ने महाराष्ट्र में स्वतंत्रता की जोत जलाई। ब्रिटिश सरकार ने इस पर रोक लगा दी थी जो कांग्रेस सरकार आने पर ही हटी।

1930-32 के आसपास चलचित्र के रूपहले पर्दे के आकर्षण ने मराठी नाटक परम्परा को आघात पहुँचाया। स्वतन्त्रता के बाद लोगों की मराठी रंगमंच में रूचि बढ़ी। आज भी सरकार ने भी प्रोत्साहन दिया। नाट्य शिक्षा की व्यवस्था भी की गई। आज भी मराठी रंगमंच की सम्भावनाऐं है। मराठी भाषा में विजय तेंदुलकर, बसंत कदनेटकर, सतीश आनेकर आदि रंगकर्मियों ने वर्तमान समय में मराठी रंगमंच को नई दिशा दी है।

4.8 बंगला रंगमंच

बंगाल में रंगमंच परम्परा बहुत पुरानी है। 16वीं सदी में चैतन्य महाप्रभु ने धर्म एवं आध्यात्म का प्रचार करने के लिए 'रूकमणि हरण' नाटक मंचित किया जिसमें उन्होंने स्वयं रूकमणी का अभिनय किया। कलकत्ता में यूरोपीय व्यापारियों के आने से वहाँ की नाट्य परम्परा पर पश्चिम का प्रभाव पड़ा। 1770 में कलकत्ता थियेटर की स्थापना हुई।

रूसी यात्री लेवडेफ का भी बंगाली रंगमंच के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 1795 में उन्होंने बंगाली थियेटर को जन्म दिया। बंगला रंगमंच के जन्मदाता गिरीशचन्द्र घोष ने बंगाल के जनजीवन की आकांक्षाओं और भावना के अनुरूप 1872 में नेशनल थियेटर की स्थापना की। यह पहला थियेटर था जिसके पात्रों को नियमित वेतन दिया जाता था। दर्शकों को टिकट लेकर प्रवेश दिया जाता था। गिरीशचन्द्र घोष ने तत्कालिन सामाजिक सन्दर्भों को अपने नाटकों में स्थान दिया तथा पाश्चात्य प्रभावों को भी ग्रहण किया। अमृतलाल बसु, अपदेश मुकर्जी, दामी घोष, दुर्गादास बनर्जी, निर्मलेन्दु लहरी, अमरेन्द्रनाथ आदि प्रभावशाली अभिनेताओं ने बंगला रंगमंच का गौरव बढ़ाया। अभिनेत्रियों में चारूशीला कृष्णकामिनी, नीहारबाल तारा सुन्दरी और प्रभा ने रंगमंच में यथार्थ सजीवता एवं न्यूनता का प्रसार किया। रविन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का भी नये शिल्प के साथ मंचन हुआ।

शिशिर भादुरी इस युग के महान् अभिनेता थे जो चालीस साल तक रंगमंच पर छाये रहे। बंगला रंगमंच को टैगोर परिवार की भी बड़ी देन है। रविन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर रचित 'बाल्मिकी प्रतिभा' में उन्होंने स्वयं अभिनय किया। रविन्द्रनाथ ठाकुर ने लगभग तीन दर्जन नाटकों की रचना की। उन्होंने नये शिल्पगत प्रयोग भी किये।

स्वतन्त्रता के पश्चात् बंगला रंगमंच में विकास का एक नया दौर शुरू हुआ। लोक रूचि रंगमंच से विमुख नहीं हुई थी। निरूपमा राय द्वारा रचित 'श्यामली' और निहाररंजन के उल्का नाटकों का 1954-56 तक प्रदर्शन हुआ। लेकिन दर्शको के मन मैं गिरीश घोष एवं डी.एल. राय जैसा अभिनेताओं की याद ताजा थी।

बंगला रंगमंच की विशेषता यह है कि यह व्यावसायिक रंगमंच हैं जहाँ नियमित रूप से नाटकों का प्रदर्शन होता है। अन्य प्रादेशिक रंगमंचों की तुलना में बंगला रंगमंच आज भी आगे हैं और प्रगतिशील एवं लोकप्रिय है। बादल सरकार, अरूण मुखर्जी, मनोज मिश्र, सांवली घोष, उत्पलदत्त जैसे रंगकर्मी निरन्तर अपने मार्गदर्शन से बंगला रंगमंच को सुदृढ बनाते आ रहे हैं।

4.9 हिन्दी रंगमंच

हिन्दी में भी नाटक की परम्परा काफी समृद्ध रही है। मध्ययुग से ही वैष्णव धर्म भावना से अनुप्राणित संगीत नाटक की परम्परा चलती रही। संस्कृत नाटकों में काव्य की प्रधानता रही। विद्यापति, चण्डीदास, शंकरदेव और उमापति जैसे कवियों ने इस दिशा में गहरा योगदान दिया।

रामलीला और कृष्ण लीला की परम्पराएं उत्तर भारत में सदियों से प्रचलित थीं। भारतेन्दु से पूर्व कृष्ण लीलाऐं मुस्लिम शासनकाल में, अवध के नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में काफी लोकप्रिय रही। नवाब स्वयं कृत्य बनते थे। भारतेन्दु के उदय से पूर्व पारसी थियेटर कम्पनियाँ हिन्दुस्तानी नाटकों का प्रदर्शन आरम्भ कर चुकी थी। लेकिन उनमें अधिक कलात्मकता नहीं थी।

भारतेन्दु ने सुरूचिपूर्ण कलात्मक रंगमंच की स्थापना का बीड़ा उठाया। हिन्दी रंगमंच की परम्परा को उन्होंने नया रंग-रूप दिया। भारतेन्दु ने प्राचीन एवं पाश्चात्य नाट्य शैलियों का समन्वय किया। उन्होंने भारत की परतन्त्रता के कारण भारत दुर्देशा, प्रेम जोगिनी आदि नाटकों के द्वारा राष्ट्रीय नव जागरण का सन्देश देने का प्रयास किया। वे हिन्दी रंगमंच के उत्थान के लिए आजीवन सक्रिय रहे। उनसे प्रेरणा पाकर उनके समकालीन देवकीनन्दन चौधरी ने सीता हरण, शिवनन्दन सहाय ने कृष्ण-सुदामा, राधाचरण गोस्वामी ने अमर सिंह राठौड़ और लाला श्रीनिवासदास ने रणधीर प्रेम मोहिनी की रचना की। भारतेन्दु का रचना काल बहुत कम था। इसलिए गिरीश घोष की तरह हिन्दी रंगमंच को पूरी तरह वे पुष्ट नहीं कर पाये।

भारतेन्दु के बाद बड़े नगरों में कई नाट्य मछलियाँ स्थापित हुई। इलाहबाद में 1898 में रामलीला नाटक मंडली तथा 1908 में हिन्दी नाट्य समिति द्वारा सीता स्वयंवर, महाराणा प्रताप और महाभारत पूर्वार्द्ध का प्रदर्शन हुआ। 1909 में काशी में भारतेन्दु नाट्य मंडली और काशी नागरिक नाट्य मंडली की स्थापना हुई। ये भारतेन्दु एवं अन्य नाटककारों के नाटकों का मंचन करती थी। हिन्दी रंगमंच में पंडित माधव शुक्ला का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कलकत्ता में हिन्दी नाट्य परिवार की स्थापना की। इन संस्थाओं के नाटकों पर पारसी नाटक मंडलियों का प्रभाव तो था परन्तु मोहक दृश्यों, काव्यात्मक गीतों एवं आदर्श प्रस्तुतिकरण पर अधिक बल दिया जाता था। 1900 से 1925 तक पारसी एवं अन्य मंडलियाँ नाटक करती रही। इस काल में आगा हसन कश्मीरी, राधेश्याम पाठक, नारायण प्रसाद बेताब, तुलसीदास शैदा एवं हरिकृष्ण जौहर आदि रंगमंच के प्रमुख लोग थे। राधेश्याम के वीर अभिमन्यु कश्मीरी के सूरदास, सीता को पारसी थियेटर ने भी अपनाया।

हिन्दी रंगमंच की इसी पृष्ठभूमि में जयशंकर प्रसाद का अवतरण हुआ। वे नाट्य रचियता थे। उन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे। वे अभिनय की दृष्टि से कठिन थे यद्यपि नाट्य रस से भरपूर थे। ध्रुव स्वामिनी, स्कन्द गुप्त, चन्द्रगुप्त आदि नाटकों का सफल प्रदर्शन महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में होता था। भाषा में काव्यात्मकता के कारण सामान्य रूचि के लिहाज से वे लोकप्रिय नहीं थे। भारत की प्राचीन कथा-भूमि पर ही रामकुमार वर्मा ने चारून्बिसा, जगदीशचन्द्र माथुर ने कोणार्क, रामवृक्ष बेनपुरी ने अम्बपाली और पृथ्वीराज शर्मा ने उर्मिला आदि नाटकों की रचना करके प्रसाद की नाटक परम्परा का पुनरूत्थान किया।

प्रसाद के रचनाकाल में ही इटसन, जॉर्ज बर्नाडशा के क्रान्तिकारी विचारों से प्रभावित होकर आदर्श विरोधी, व्यंग प्रधान, यथार्थवादी एवं साम्यवादी छाया ताकि विभिन्न नाटकों से प्रभावित होकर लक्ष्मीनारायण मिश्र, गोविन्द दास एवं उपेन्द्रनाथ अश्क आदि ने नाटक लिखे। विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती आदि हिन्दी रंगमंच की नवीन धारा के प्रवर्तक थे।

हिन्दी रंगमंच की समस्या यह रही कि इसमें व्यावसायिक नाटक मंडलियों का विकास नहीं हुआ। 1944 में केवल पृथ्वीराज कपूर ने पृथ्वी थियेटर की स्थापना की। इसका आदर्श कला थी। पृथ्वीराज ने इसी भावना से प्रेरित होकर शकुन्तला, दीवार, गद्दार, पठान, आहुति, कलाकार, किसान आदि नाटकों का बम्बई एवं देश में प्रदर्शन किया। पृथ्वी थियेटर के प्रदर्शनों को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। इसके बाद अंग्रेजी, संस्कृत के अनुदित नाटकों का बम्बई, दिल्ली, पटना, जबलपुर आदि नगरों में प्रदर्शन हुए। बम्बई की नाटक मंडली ने अंधायुग, नाटक तोता-मैना के प्रदर्शन से यश पाया। दिल्ली नाट्य संघ ने संस्कृत नाटकों में मुद्राराक्षस प्रस्तुत किया। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा इसका प्रशिक्षण देती है। दिल्ली स्थित इस प्रशिक्षण विद्यालय में आवश्यक संसाधन है। इसने इब्राहिम अल्कामी, वी.वी कारंत, जैसे सफल निर्देशकों के माध्यम से रंगकर्मियों की प्रशिक्षित जमात खड़ी की है। आधुनिक युग में सुरेन्द्र वर्मा, शंकर शेष, मणि मधुकर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शरद जोशी आदि के नाटकों ने हिन्दी रंगमंच को नई दिशा दी है। सचदेव दुबे, एम.के. रैना, श्यामानन्द जालान, मोहन महर्षि, भानुभारती आदि अनेक नाट्य निर्देशक भी अभिनय के प्रयोगों द्वारा हिन्दी रंगमंच को पुष्ट कर रहे हैं। इससे हिन्दी रंगमंच के लिए आशा की किरण जगती है।

4.10 तमिल रंगमंच

दक्षिण भारत में आधुनिक रंगमंच की परम्परा उत्तरी भारत के समान न तो आधुनिक ही है और न उतनी समृद्ध ही। 19वीं सदी के अंत तक तमिलनाडु में अभिनीत नाटकों का स्तर इतना नीचा था कि भद्र परिवार के माता-पिता अपने परिवार के किसी सदस्य को नाटक देखने की स्वतन्त्रता नहीं देते थे। नाटकों की कथावस्तु प्राय: घिसी-पिटी पौराणिक होती थी। ये तथाकथित नाटक गीत-प्रधान होते थे। संवाद का कोई सुनिश्चित लिखित रूप नहीं था। गीतों के मध्य उन संवादों को वे पात्र अपनी इच्छा से भर देते थे। आरम्भ में न नाटक अच्छे थे, न प्रस्तोता और न उनका रंगमंचीय संगठन ही।

तमिल में रंगमंच के उद्धार के लिए अव्यवसायी शिक्षित नाट्य-मंडलियाँ 19वीं सदी के आरम्भ से प्रयत्नशील हुई। 1890 में वैल्लारी के कृष्णमाचारी ने 'सरस विनोदिनी सभा' की स्थापना की। धीरे-धीरे शिक्षित जनों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ। इन्होंने पी.एस मुदालियर के नेतृत्व में 'सगुणविलास सभा' की स्थापना भी की। मुदालियर महोदय महान् अभिनेता थे।

तमिल रंगमंच के विकास की दिशा में उन्होंने एतिहासिक महत्त्व का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त म्यूजियम थियेटर, कन्हैया एण्ड कम्पनी तथा बाल विनोद नाटक सभा जैसी संस्थाएं भी रंगमंच के उत्थान के लिए खुली। इन सभाओं द्वारा तमिल रंगमंच का स्तर उन्नत हुआ और नाटकों के अभिनय ने भी नया स्वरूप और शक्ति प्राप्त की। इन नाट्य मंडलियों के प्रयत्न से ही व्यावसायिक नाट्य कम्पनियों की असम्भ्रन्तता एवं अन्य त्रुटियाँ धीरे-धीरे दूर हो

सकी। आधुनिक काल में इन्द्र पार्थसारथी, मुत्थुस्वामी, त्यागराजन चौरामास्वामी आदि प्रमुख तमिल नाट्यकार हैं।

4.11 तेलगू रंगमंच

तेलगू रंगमंच की परम्परा बहुत पुरानी हे। पद, भजन और गेय काव्य बहुत लोकप्रिय थे। बाद में भागवतमु और भमकलापयु का प्रदर्शन होता था। इनमें कृष्ण कथा नृत्य संगीत के माध्यम से प्रस्तुत की जाती थी। छाया नाट्य और यक्ष गान आदि भी खूब लोकप्रिय हुए इनकी भाषा स्थानीय होती थी। परन्तु आधुनिक तेलगू रंगमंच का जन्म 19वीं सदी के प्रथम चरण में हुआ। 'चित्रनलीयम्' संभवत: तेलगू नाटक था जिसका प्रदर्शन आन्ध्र नाटक पितामह लेखक-अभिनेता कृष्णमाचार्य ने प्रस्तुत किया था। इन्होंने लगभग तीस नाटक प्रस्तुत किए जिनमें शार्ड प्रहलाद और अजामिल मुख्य हैं। इसी के आसपास श्रीनिवास राव ने भी रामराज, शिलादित्य और कालिदास का प्रदर्शन वेल्लारी में किया।

आन्ध्र में कई उच्चकोटि के अभिनेता हुए सन् 1919 में गुजरादा अप्पावराव का 'कन्या सुलक्कम' प्रस्तुत हुआ जिसमें गोविन्द राजुल्य ने 'गिरीशम्' की प्रभावशाली भूमिका की थी। सामाजिक नाटकों में भी यह नाटक एक आदर्श बना रहा। तेलगू नाटक के इतिहास में राजमन्नार के 'थप्प वरीडी' का बड़ा महत्त्व है। अन्ध्र के महान् अभिनेता टी राघवाचारि ने पुंगल (पोंगल) के अवसर पर 'म्यूजियम थियेटर' मद्रास में इसे प्रस्तुत किया। राजमन्नार अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के नाट्य लेखक हैं। 1930-40 के बीच मधुकृष्ण के 'अशोकम्' चलम् के 'चित्रांगी' और शशांक कविराजु के 'शंबूक वध' तथा 'खूनी' का अभिनय हुआ।

स्वाधीनता के उपरान्त आन्ध्र में कई नाटक मडलियॉ काम कर रही हैं। एकांकी नाटक और रेडियो रूपकों की रचना बड़ी तेजी से हो रही है। आन्ध्र नाटक कला परिषद्, 'तेलगू लिट्ल थियेटर' और 'आन्ध्र थियेटर फेडरेशन' नामक संस्थाएं नाट्य प्रदर्शन कर रंगमंच को लोकप्रिय बनाने की दिशा में प्रयत्नशील है। आधुनिक युग में बी. रामदास, कुंदुरथी, अत्रे तथा पी.पी. राजमन्नाद ने तेलगू रंगमच की प्रभाव परिधि बढ़ाने में सशक्त योगदान दिया है।

4.12 कन्नड़ रंगमंच

कन्नड़ रंगमंच का ऐतिहासिक विकास सुनिश्चित नहीं है। बिना व्यावसायिक नाट्य मंडली के रंगमंच की वास्तविक प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती। दुर्भाग्य से कन्नड में, नाट्य व्यवसाय के रूप में प्रभावी नहीं रही। दत्तात्रेय नाटक मंडली और विश्वगुणादर्श नाटक मंडली ने कन्नड़ के रंगमंच को गति और शक्ति दी है। कन्नड़ में अंग्रेजों और संस्कृत नाटकों के रूपांतर तो प्रस्तुत हुए पर कन्नड़ नाटक अरसे तक अभिनीत नहीं हो सका। बड़ी कठिनाई से गुबी वीरन्ना की गुंबी थियेट्रिकल कम्पनी ने पौराणिक एवं अन्य प्रकार के नाटकों के प्रदर्शनों द्वारा कन्नड़ रंगमंच को जीवित रखा है। पिछले कुछ वर्षों में कन्नड़ रंगमंच का उत्थान और पतन होता रहा है। कन्नड के निर्माण में स्व. टीवी. कैलाशम् श्रीनारायण राव और श्रीरंग के नाम अविस्मरणीय रहेंगे। तोलुगति और होमरूलु द्वारा कैलासम् ने अभिनय की नई परम्पराओं का सृजन किया है। नारायणराव रचित स्त्री धर्म-रहस्य संभवत: कन्नड़ का पहला आधुनिक मौलिक नाटक था। इन नाटककारों ने कन्नड़ रंगमंच के लिए ही नाटकों की रचना की थी। आधुनिक युग में शिवराम

कारन्थ, ए.एन. कृष्णाराव, लक्ष्मणराव, आद्यरंगाचार्य, गिरीश करनाड़ तथा चन्द्रशेखर कम्बार कन्नड़ रंगमंच की उन्नति में संलग्न है।

4.13 मलयालम रंगमंच

नाट्यकला के सभी देशी रूपों में 'कथकली' केरल के लोक जीवन की आकांक्षा और भावनाओं का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि है। कथकली की कला जितनी सूक्ष्म और जटिल है उतनी ही विशुद्ध भी। वेष और मुखौटों की रचना, काव्य की कोमलता, गीत-वाद्य-नृत्य का योग और आँगिक भाव-भंगिमाएं - 'कथकली' को पूर्णता प्रदान करती है। अभिनेता अपने अभिनय की कुशलता से संधिम और बेष्टिम आदि आहार्य साधनों के बिना ही दर्शकों को पृथ्वी से स्वर्ग तक ले जाता है और श्रृंगार, वीर, करूण और रौद्र आदि रसों की लहरों में लीन कर देता हे। कथकली के साथ केरल में प्राचीन काल से ही संस्कृत नाटक भी अभिनीत होते थे। केरल में वर्षों तक संस्कृत नाटकों के मलयालम रूपान्तर भी अभिनीत होते रहे हैं।

मलयालम के नाटक नाट्य शैली के प्रभाव में भी लिखे गए हैं। रंगमंच के माध्यम से सामाजिक समस्याओं के समाधान की खोज की गई है। अनुकरण की लहर मध्य में भी कन्निकर एम. पद्यनाथ पिल्लई तथा एम कुमार पिल्लई ने उससे ऊपर उठकर अपने नाटकों द्वारा मूल मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतिकरण इनके नाट्य-प्रयोगों में बड़ा ही मर्मस्पर्शी हुआ है।

केरल में भी स्थायी रंगमंच की रचना का प्रयास हो रहा है। 'कलानिलयम्' नामक नाट्य संस्था अस्थायी नाटक भवन में कई महत्त्वपूर्ण रंगमंचीय नाटकों को प्रस्तुत कर चुकी है। कुरूक्षेत्र, देवदासी तथा नूरजहाँ के प्रदर्शनों ने इस संस्था को बड़ा गौरव प्रदान किया है। थोपलमासी ने 'तुमने मुझे कम्यूनिस्ट बनाया' जैसे प्रसिद्ध नाटक को 'केरल पीपुल्स आर्ट क्लब' ने प्रस्तुत कर यश उपार्जित किया है। पन्नकुनम वर्की, के.वी. पन्निकर तथा जी. शंकर पिल्लई ने अपने नाटकों से मलयालम रंगमंच के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

4.14 सारांश

दक्षिण भारतीय रंगमंच का इतिहास भले ही उत्तर भारतीय रंगमंच जैसा गौरवमय न रहा हो फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि आधुनिक युग में मध्य नाट्य शैलियों के भरपूर प्रयोग वहाँ पर भी हो रहे है। इसे दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि अब दक्षिण भारतीय रंगमंच सही दिशा में अग्रसर होकर नूतन व पुरातन का उचित सन्निवेश कर रहा है। अत: इस रंगमंच की विपुल उपलब्धि प्राप्त करने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

भारतीय नाटकों के संदर्भ में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि जहाँ पारम्परिक नाटक मिथक, आख्यान अथवा लोककथाओं पर आधारित थे वहीं आधुनिक नाटक अपनी परम्परा के साथ यूरोपीय रंगमंच के प्रभाव तथा बनार्ड शॉ, इब्सन, सैमुअल बैंकेट एवं बतौल्लस ब्रेख्त आदि की रचना प्रक्रिया से नया रूप धारण कर सामने आए। भारतीय भावभूमि तथा पाश्चात्य कला जगत के सम्मिश्रण ने अनेक अभिनव नाट्य प्रयोगों को जन्म दिया। रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से भी ये नाटक निरन्तर सराहे गए। इन नाटकों में गिरीश करनाड का हयवंदन (कन्नड़), अंत्रे का नॉन गजेटेड ऑफिसर (तेलगू) विजय तेंदुलकर कृत घासीराम कोतवाल (मराठी), कावालम नारायण पत्रिकर का पशु गायत्री तथा जी शंकर पिल्लई का किरात (मलयालम), अरूण मुखर्जी

कृत मारीच संवाद एवं साँवली घोष रचित नाथवती अनाथवत (बंगला), हबीब तनवीर का चरनदास चोर (छत्तीसगढ़ी) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का बकरी (हिन्दी), रतन कुमार थियम लिखित उचेक लैंगमेई डोंग (मणिपुरी), बकुल त्रिपाठी का लीला (गुजराती) तथा चो रामास्वामी का लीला बोला (तमिल) आदि प्रमुख है। सर्वथा नूतन अंतर्दृष्टि से ओतप्रोत ये नाटक भारतीय रंगमंच को एक नई गति व शक्ति प्रदान कर रहे हैं।

इन प्रदर्शनात्मक कलाओं के अलावा भारत में प्रदर्शनात्मक कलाओं का प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय स्तर पर एक लम्बा सिलसिला मिलता है। इसमें माच (ख्याल), नौटंकी, स्वांग, भगत, भवाई, जावा, गंभीरा, कीर्तनियाँ, अंकिया, तमाशा, रम्मत, गवरी, फड़, कड़ा, छऊ, कुचिपुड़ी, प्रतालियों का खेल, रामलीला, आदि कई प्रदर्शनात्मक कलाएं शामिल हैं।

4.15 उपयोगी साहित्य

1.	भारतीय रंगमंच	-	डॉ. अज्ञात (हिन्दी संस्थान, कानपुर)
2.	रंगदर्शन	-	नेमीचन्द्र जैन
3.	भारतीय नाट्य परम्परा	-	नेमीचन्द्र जैन (म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी)
4.	नाट्य प्रस्तुति एक परिचय	-	रमेश राजहंस (राजकमल प्रकाशन)
5.	रंगमंच	-	बलवंत गार्गी (राजकमल प्रकाशन)
6.	भरत और भारतीय नाट्य कला	-	सुरेन्द्रनाथ दीक्षित (राजकमल प्रकाशन)

4.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों के उत्तर 15 शब्दों में दीजिए :-

1. संस्कृत नाटक किस प्रकार विभाजित होते थे?
2. रामलीला का नाटकों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा।
3. पृथ्वी थियेटर का योगदान समझाइये।
4. उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के नाटकों में मुख्य अन्तर क्या है?

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिए :-

1. पारसी नाटकों की विशेषताऐं एवं प्रभाव समझाइये।
2. पुनर्जागरण आन्दोलन का बंगला एवं मराठी नाटकों पर क्या प्रभाव पड़ा।
3. भारतेन्दु का हिन्दी नाटक को क्या योगदान है?
4. कन्नड़ रंगमंच की क्या विशेषताएं हैं?

इकाई - 05 : भारतीय संगीत परम्परा

रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 पश्चिम एवं भारतीय संगीत की तुलना
5.3 हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत
5.4 भारतीय संगीत परम्परा का उद्भव एवं विकास
5.5 भारतीय संगीत परम्परा में नया मोड़
5.6 आधुनिक युग में भारतीय संगीत
5.7 भारतीय संगीत का माधुर्य
5.8 राग-रागिनी और थाट
5.8.1 राग
5.8.2 रागिनी
5.8.3 थाट
5.8.4 भारतीय संगीत में संगम और श्रुति
5.8.5 भारतीय संगीत के प्रमुख वाद्य
5.9 आधुनिक भारत में संगीत
5.9.1 उस्ताद बड़े गुलाम अली सा.
5.9.2 डागरबंधु
5.9.3 गिरिजा देवी
5.9.4 उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ
5.9.5 पंडित रविशंकर
5.9.6 वी.जी. जोग
5.10 सारांश
5.11 कुछ उपयोगी साहित्य
5.12 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समृद्ध भारतीय संगीत परम्परा के उद्भव एवं विकास के सन्दर्भ में जानकारी पाने में समर्थ होंगे। साथ ही भारत की शास्त्रीय संगीत धाराओं का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और न केवल भारतीय संगीत शैलियों के विस्तृत परिवेश में इनके बीच के अन्तर को भी स्पष्ट कर सकेंगे बल्कि आपको भारतीय राग-रागिनियों के बारे में भी दिलचस्प जानकारी मिल सकेगी। पश्चिम की संगीत शैलियों और भारतीय संगीत शैलियों के अन्तर को जानना भी आपके लिए सम्भव हो सकेगा। आधुनिक युग में संगीत के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों और इनकी दशा और दिशा का भी आपको समुचित ज्ञान होगा। इस प्रकार संगीत परम्परा के विविध पक्षों के ज्ञान से आप भारतीय संगीत की विशेषताओं एवं उत्कृष्टता से भी परिचित हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भारतीय संगीत परम्परा के व्यापक क्षेत्र का सम्पूर्ण ज्ञान कराने के साथ इस इकाई में आपके लिए यह भी सम्भव हो सकेगा की जीवन में सफलता, सुख और स्वधीनता के साथ गुणों की रचना करने में भारतीय संगीत किस प्रकार एक प्रेरक शक्ति की भूमिका का निर्वाह करता है। ज्ञानविका स्मृति में कहा गया है की जो मानुष्य बाँसुरी की ध्वनि के भीतर छिपे अर्थ, उसके बीच के अन्तराल, लय आदि को समझता है वह बिना किसी प्रयास के मुक्ति या स्वतन्त्र अनुभव करने की दिशा में अपने आप बढ़ेगा।

भर्तहरि ने अपने 'नीतिशास्त्र' में लिखा है कि भोजन, निद्रा, भय और यौन ये तो सभी प्राणियों में लगभग समान आवश्यकताएं होती हैं लेकिन भारतीय अर्थों में धर्म, मनुष्य को पशुओं से अलग करता है। इसके अतिरिक्त हमारी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य मनुष्यों को माया के जाल से छुटकारा दिलाकर उन्हें पूर्ण सत्य या 'ब्रह्मा' को जानने में सहायता करती है। इसी प्रकार संगीत भी जीवन में उच्च लक्ष्य प्राप्ति में एक निर्णायक कि भूमिका निभाता है। भारतीय संगीत की आत्मा इसकी लय और मधुरता है और इसे संगीत ने सदियों से निरन्तर बनाये रखा है।

भारत में मुगलों के आगमन से भारतीय संगीत परंपरा कर्नाटक और हिन्दुस्तानी, इन दो भागों, बँट गई। हिन्दुस्तानी संगीत ने संगीत की अन्य शैलियों के साथ आदान-प्रदान किया और एक नयी संगीत शैली को जन्म दिया जबकि कर्नाटक संगीत ने अपना मौलिक स्वरूप और शुद्धता कायम रखी। इसने सामवेद, गन्धर्व उपवेद, भरत के नाट्यशास्त्र आदि की संगीत परम्परा में अपनी जड़ें जमाये रखी। शायद, भारतीय संगीत परम्परा संगीत के क्षेत्र में सर्वाधिक पुरानी है इस्लाम के प्रभाव के बावजूद हिन्दुस्तानी संगीत ने अपना धर्मनिरपेक्ष स्वरूप निरन्तर बनाये रखा है।

हिन्दुस्तान संगीत को समृद्धि में मुस्लिम संगीतज्ञों जैसे तानसेन से बड़े गुलाम आली खाँ, नौशाद और जाकिर हुसैन ने बहुत योग दिया और इसके विकास के प्रयत्न किये। वहीं हिन्दु संगीत कलाकारों जैसे स्वामी हरिदास, पंडित रविशंकर, लता मंगेशकर का भारतीय संगीत की आत्मा को जीवन्त बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

इसी प्रकार आधुनिक युग में भी एस.एम. राना, टैगोर, पंडित विष्णु दिगम्बर पालकर, प.वी.एन. भातखडे आदि ने केवल हमारी संगीत परम्परा की मधुरता और सौन्दर्य का पुनरोत्थान किया बल्कि इसके वैज्ञानिक आधार को मजबूती देने तथा सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अभ्यास, दोनों स्तरों पर व्यवस्थित बनाने में गहरा योग दिया। प्राप्त आंकडों से यह भी प्रमाणित होता है कि भारतीय संगीत ने स्वतन्त्रता संग्राम में भी अपनी भूमिका निभाई।

यही कारण है कि भारत में आजादी के बाद भारतीय शासकों ने यह सुनिश्चित करने के प्रयास किये कि भारतीय संगीत की हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक शैलियों को ऊँचाईयों पर पहुँचने में प्रोत्साहन दिया जाये। आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं संगीत नाटक अकादमियों ने इस दिशा में अग्रणीय भूमिका निभाई।

इन्डिया टोबेको कम्पनी सहित सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं ने संगीत के विकास एवं इसे लोकप्रिय बनाने में सराहनीय कार्य किया। इन दिनों सरकारी एवं निजी दोनों ही स्तरों पर संगीतज्ञों, वाघ एवं नृत्य कलाकारों के विदेशों में भ्रमण के आयोजन किये जा रहे हैं ताकि

भारतीय संगीत परम्परा के स्वर दुनियाँ भर में गूंज सके। साथ ही पंडित रविशंकर जैसे संगीतज्ञ, पूर्व और पश्चिम के संगीत मेलजोल को बढ़ाने में योग दे रहे हैं।

5.2 पश्चिम एवं भारतीय संगीत की तुलना

भारतीय संगीत, शुद्ध रूप में सुर, ताल, लय और राग पर आधारित है अर्थात् यह 'मैलोडियस' है लेकिन पश्चिम संगीत में यह सामंजस्य नहीं है। सामंजस्य के लिए निरन्तरता और बार-बार दोहराये जाने की तकनीक अपनानी पड़ती है। पश्चिमी लोग, भारतीय संगीत की विशेषताओं से कम, परिचित हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय संगीत पूर्णत: आध्यात्मिक हैं लेकिन पश्चिमी संगीत में यह बात नहीं है। भारतीय संगीत की यात्रा भक्ति संगीत के साथ ही शुरू होती है, इसे आत्मिक सुख या आत्मा के आनन्द के लक्ष्य से अपनाया गया है इसलिए भारतीय संगीत की आत्मा 'लय' या 'मैलोडी' है। पॉल हिन्दरमिथ लिखते हैं कि भारतीय संगीत में इसके रचनाकारों का व्यक्तित्व झलकता है।

सामंजस्य (हार्मोनी) एक निरन्तर क्रमिक विकास या निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया है। पश्चिमी संगीत की पृष्ठभूमि, भौतिकता और इन्द्रिय सुखों की पूर्ति करने से जुड़ी है जबकि भारतीय संगीत के मूल में मनुष्य को भौतिक चेतना से कहीं दूर आत्मिक या अलौकिक संसार की अनुभूतियाँ देने में है। जिस प्रकार प्रकृति की सम्पूर्ण-रचना में ध्वनि और संगीत व्याप्त है। ठीक उसी तारतम्य के साथ भारतीय दर्शन में संगीत, मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति का साधन है।

भारतीय जीवन दर्शन एवं हिन्दुओं की धार्मिक मान्यताओं, विश्वासों एवं संस्कृति पर आधारित भारतीय शास्त्रीय संगीत की धारा अबाध गति से 13वीं सदी तक बहती रही लेकिन भारत में मुगलों के आने के बाद इसकी पृष्ठभूमि में बदलाव आया और यह दो शाखाओं हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत में बदल गई।

5.3 हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत शैलियाँ

हिन्दुस्तानी संगीत को अकबर के समय काफी पोषण और प्रोत्साहन मिला। संगीत कलाकारों का मान-सम्मान बढ़ा और संगीत के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए विशेषकर उत्तर भारत में। दक्षिण या कर्नाटक मौलिक रूप से उत्तर की कर्नाटक संगीतीय शैली से दूर हटती गई। यद्यपि दक्षिण और उत्तर की संगीत विद्या का उद्गम समान है लेकिन समय के साथ उत्तर में संगीत पर प्रभाव अधिक पड़े और दक्षिण की अनेक शास्त्रीय शैलियों ने अपने स्वरूप को संरक्षित करने में सफलता प्राप्त की।

संगीत के विद्वान् डेनियल का कथन है कि यह गलत धारणा है कि दक्षिण की संगीत परम्परा अधिक प्राचीन है और उत्तर के संगीत ने विभिन्न प्रभावों को ग्रहण कर लिया। उनका कहना है कि कुछ छोटे बिन्दुओं को छोड़कर, तथ्यों पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि ये दोनों ही संगीत शैलियाँ प्राचीन है। दक्षिण में संगीत के क्षेत्र में व्यवस्थित सुधार किये गये जबकि उत्तर भारत की शैलियों में सिलसिलेवार शैलियों और रागों को व्यवस्थित बनाये रखने के उतने प्रयास नहीं हुए और वे बाहरी प्रभावों के सामने झुकती रहीं। लेकिन कई सन्दर्भों में अस्थायी परिवर्तनों के बाद उत्तर में भी संगीत शैलियाँ अपनी मूल जड़ों की ओर लौटती रही।

प्राचीन संगीत रूपों एवं वाद्यों को फारसी या पर्सियन स्पर्श दिये जाने के बारे में कहा गया है कि मुस्लिम शासन में पुरानी कथाओं की ही अकबर के दरबार में पुनर्रचना की गई ताकि

नये शासकों के लिए उन्हे स्वीकार्य बनाया जा सके और सृजनशील कलाकारों को प्रशंसा और सहयोग मिल सके। इस प्रकार समय की अनिवार्यताओं और कला क्षेत्र में उपलब्धियों की मान्यता प्राप्त करने हेतु संगीतज्ञों ने अपने आपको नई राग-रागिनियों के सर्जकों के रूप में दरबार में प्रस्तुत किया। इन प्रयासों के कारण ही उत्तर भारत में मुगल काल में हिन्दुस्तानी संगीत शैली का विकास हुआ।

अमीर खुसरो (1253-1319 ए.डी.) जो पर्सियन दरबार दिल्ली में संगीत के एक विद्वान कलाकार थें उनका कथन है कि "भारतीय संगीत इतना कठिन और परिष्कृत है कि 20 साल तक अभ्यास या रियाज करके भी कोई विदेशी संगीतज्ञ उसमें पारंगत नहीं हो सकता।"

सार रूप में कह सकते है कि भारतीय संगीत चाहे उत्तर का हो या दक्षिण का, उसमें एकता है और उसकी आत्मा एक है। वैदिक काल से 13वीं सदी तक उत्तर और दक्षिण की संगीत धाराओं के बीच कोई अन्तर या विषमता नहीं रही। लेकिन यह कहना गलत होगा कि इन दो धाराओं के बीच कोई अन्तर नहीं है। समय और स्थान के कारकों से उत्तर और दक्षिण की संगीत प्रस्तुतियों में फर्क आया। इनके बीच आधारभूत अन्तर आया। ऐसे में हिन्दुस्तानी संगीत शैली के सन्दर्भ में भारत में संगीत परम्परा के उद्भव एवं विकास पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

5.4 भारतीय संगीत परम्परा का उद्भव एवं विकास

भारत में संगीत परम्परा का समय के साथ आध्यात्मिक या आत्मिक आनन्द की अनुभूतियाँ देने वाली कला के रूप में विकास हुआ। इसकी उत्पत्ति और उद्भव वैदिक काल से भी पुरानी है। ऋग्वेद की पृचालों, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषद् में संगीत परम्परा की थाती छिपी है। सामवेद के सपन, तीन या चार स्वरों तक सीमित थे। "नारद दीक्षा" में समन के गायन के बारे में मार्गदर्शन मिलता है। वेदों में संगीत के विभिन्न सन्दर्भ, भारतीय संगीत परम्परा की प्राचीनता के समुचित प्रमाण प्रस्तुत करते है।

इसके पश्चात् भरत के नाट्यशास्त्र में प्राचीन भारत के संगीत के बारे में विसतृत ज्ञान प्राप्त होता है। पौराणिक ग्रन्थों में भी कम्काला, अश्वातार एवं अर्जुन, आदि प्रारम्भिक काल के संगीत रचनाकार माने गए हैं। इसके बाद संगीत की गन्धर्व शैली आई। नाट्यशास्त्र में भरत ने संगीत के विविध पक्षों के बारे में नाट्यशास्त्र में विस्तार से प्रकाश डाला है उसने किसी स्थिति विशेष और उसके अनुरूप भावों की चर्चा करते हुए, एक प्रकार के गीत का सन्दर्भ देते हुए उसे 'ध्रुव' का सम्बोधन दिया है जो साजिन्दों या आर्केस्ट्रा द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण विचार परिप्रेक्ष्य अर्थात् स्थान, व्यक्ति विशेष दृश्य की जानकारी श्रोताओं को देता है। बाद में गन्धर्व या मार्ग शैली के बारे में अभिनव गुप्ता ने नाट्यशास्त्र की टिप्पणी में इस बारे में चर्चा की है। संगीत के सन्दर्भ में सारंग देव 'संगीत रत्नाकर' में भी उपयोगी जानकारी दी है। मार्ग या गन्धर्व गीतों से पूर्व रामायण एवं महाभारत जैसै महाग्रन्थों में व्याख्यान मिलते है। स्वरों या 'मेलोडी' के सात प्रकार 'जति' कहलाते थे। ये वीणा या बांसुरी पर उत्पन्न किये जाते थे। व्याख्यानों का प्रचलन - वैदिक काल में भी जारी था। 'ध्रुव' को नृत्य का संगीत माना जाता था। इसे लास्य भी कहते थे। प्रारम्भिक गीत अर्थात् पूर्वारंग, एक वाद्य संगीत माना जाता था। इसके दो प्रकार माने गये हैं - निर्गट - जिसे देवों का सुर माना गया है और - बहिर्गुट - असुरों का स्वर माना गया है।

रामायण काल में जाति, नृत्यों, वाद्यों आदि का वर्णन आता है जो गान्धार परम्परा की विविधता प्रगट करता है। मालविकाडिनी में आपस में दो दलों के बीच संगीत प्रतिस्पर्द्धाओं के प्रसंग आते हैं। कुछ पुराणों में पहली बार रागों और वृहद-देशी 'मतंग' के बारे में बारीकी के साथ वर्णन मिला है। यह 8-9वीं सदी के समय के हैं। इसके पश्चात् 1131 ए.डी. में सन्दर्भ कोष 'पान्सो लास्सा' या 'अभिलाषीतार्थ चिन्तामणी', जिसका संकलन चालूक्या नरेश सोमेश्वर ने किया, में संगीत के बारे में वर्णन मिलता है।

लेकिन संगीत के विकास के एतिहासिक प्रसंग में सारंग देव (1210-1247 ए.डी.) जो कि संगीत की महान् प्रतिमा थी, ने संगीत को गति और ऊँचाई दी। उन्होंने भारतीय संगीत में महत्त्वपूर्ण रचनाएं की 13वीं सदी में जैनमत के पारसदेव की समयसार में संगीत की झलक मिलती है। सारंग देव की 'संगीत रत्नाकर' के बारे में भी तेलगु लेखकों सिंगनू पत्र (15वीं सदी) में टिप्पणियाँ लिखी हैं। 12वीं सदी में जयदेव के 'गीत-गोविन्द' में अपने 'प्रबन्दिश अर्थात् संगीत-रचनाओं में राग और ताल के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला है। 'प्रबन्दिश' - संगीत रचनाऐं भी जयदेव के कृष्ण और राधा के प्रसंग में प्रस्तुत भक्ति-संगीत ने भारतीय संगीत-प्रेमियों के ह्रदय में अपनी आमेट-छाप छोड़ी।

5.5 भारतीय संगीत परम्परा में नया मोड़

'रत्नाकर' की रचना के बाद की अवधि में जबकि हिन्दु और पर्सियन संस्कृतियों का मिश्रण हो गया था, उत्तर भारत और दक्षिण की शैलियों में भिन्नता आ गई थी। यद्यपि उनकी मौलिक सामग्री और राग, समान थे। लेकिन श्रुति और रागों के नाम अलग-अलग थे। उनके 'मेलोडिक कन्टेन्ट' अलग हो गये थे। डा. वी. राधन ने कहा है कि दक्षिण ने प्राचीन संगीत की शुद्धता का संरक्षण किया और इसके भावी विकास की वैज्ञानिक प्रवृतियाँ अपनाई।

मध्यकालीन 'भक्ति' आन्दोलन ने भक्ति-गीतों की रचना को बढ़ावा दिया। इनकी संगीत कला से सम्बद्धता, एक आध्यात्मिक प्रयास था, और यह आत्मिक विकास और आनन्द का विचार भारतीय जीवन-दर्शन के सदियों से केन्द्र में रहा। परन्तु समय के साथ उत्तर भारत में विभिन्न संगीत शैलियों और तौर-तरीकों का हिन्दुस्तानी संगीत में मिलन होता रहा।

13वीं सदी में अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत को नई दिशा दी। उसने संगीत में कव्वाली प्रस्तुत की और भारतीय संगीत में पर्सियन संगीत शैली की खूबियाँ मिश्रित करना आरम्भ किया। कहते हैं कि उसी ने 'सितार' का चलन भी आरम्भ किया। उनके अलावा चैतन्य महाप्रभु (1435- 1533 ए.डी) ने भी संगीत के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया। उन्होंने 'संकीर्तन' के माध्यम से यह कार्य सम्पादित किया जो कि रागों पर आधारित होता था। बाद में यह 'ध्रुपद' गायिकी का एक शक्तिशाली माध्यम बन गया और इस शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त करने में गहरा योग दिया। इन्होंने मल्हार राग का विकास किया।

इसके पश्चात् राजा मानसिंह ने अपनी प्रेयसी मृगनयनी की प्रेरणा से चार रागों की रचना की। इस काल में अकबर और संगीत की प्रतिमा तानसेन ने दरबार में नई रागों जैसे मिया की मल्हार, मियां की टोडी, ध्रुपद आदि नई रागों की रचना की। यहाँ यह कहना भी समीचीन होगा कि तानसेन के गुरू वृन्दावन के स्वामी हरिदास उच्चकोटि के संगीत रचनाकार थे और उन्होंने ध्रुपद और धमाल की रचना की।

संगीत में उनका सबसे बड़ा योग यह था कि उन्होंने मौलिक रागों का 19 रागों में वर्गीकृत किया जैसे उद्सहामी, महुआ, अभंग आदि। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के अतिरिक्त उन्होंने संगीत की चार महत्त्वपूर्ण कृतियाँ रची जैसे सद्रंगा चण्डोग्या, रागमाला, रागमंजरी और नर्तन निर्णय। इस प्रकार अकबर के समय उसके संरक्षण में उत्तर भारत का हिन्दुस्तानी संगीत परवान चढ़ा और उसने बुलन्दियाँ छूने में सफलता पाई।

दामोदर मिश्र (1625 ए.डी.), हृदय नारायण देव (1644 ए.डी.), भाव भट्ट (1627 ए.डी.) और अहोबाला (1725 ए.डी.) ने भारतीय संगीत की ध्वजा को फहराये रखने का अनूठा कार्य किया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है की राजपूताना (अब राजस्थान) ने भी हिन्दुस्तानी संगीत के विकास यात्रा में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

राजा अनूप सिंह (1649-1701) बीकानेर ने भावभट्ट को संरक्षण एवं प्रोत्साहन देने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। उन्होंने रगों को 20 भागों में पिरोया और इन कला-ग्रन्थों की रचना की और संकलन किया। भक्ति आन्दोलन के भक्त-कवियों कबीर, मीरांबाई, सहजोबाई, तुलसीदास, सूरदास, गुरूनानक, दादू दयाल आदि ने भारतीय संगीत को नये आयाम दिये। इन्होंने भारतीय संगीत को एक जन आन्दोलन बनाया और इसकी लोकप्रियता में चार चाँद लगाये।

जब 1779 ए.डी. में मोहम्मदशाह रंगीला ने साम्राज्य सम्भाला तो संगीत को समर्पित महान् कलाकारों को संरक्षण दिये जाने की परम्परा को फिर से आरम्भ किया गया। कई नये 'ख्यालों' की रचना की गई। इसके बाद जयपुर के राजा प्रताप सिंह (1779-1804) ने अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन आयोजित कराया।

इससे यह सिफ़ारिश की गई की राग 'विलावल' हिन्दुस्तानी संगीत का अभिन्न अंग है। साथ ही सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया कि सबकी सहमति से संगीत पर एक ग्रंथ 'संगीत सार' का सम्पादन किया जाये। बाद में इस ग्रन्थ की रचना की गई। फिर पटना राजस्व क्षेत्र के नवाब मोहम्मद रजा ने अपनी पुस्तक 'नगमा-ए-अफसी' में राग विलावल पर अपने विचार व्यक्त किये और उसने जयपुर के सम्मेलन में की गई सिफारिशों पर सहमति व्यक्त की कि यह राग, भारतीय संगीत कि विरासता का अंग है। साथ ही कृष्ण नन्द व्यास ने भी 'संगीतसार कल्पदरूपम्' कि रचना की।

5.6 आधुनिक युग में भारतीय संगीत

भारत के पुनर्जागरण काल में सभी क्षेत्रों में स्वचेतना जागृत हुई और इस नवजागरण से संगीत भी अछूता नहीं रहा। यह चेतना की चिनगारी सर्वप्रथम बंगाल से उठी जो की ब्रिटिश शासन को करीब से जनता था। टैगोर परिवार इस पुनर्जागरण की मशाल लेकर आगे बढ़ने वालों में प्रथम था।

राजा एसआर एस.एम. टैगोर ने 1975 में 'संगीत सार संग्रह' ग्रन्थ के प्रकाशन के साथ भारतीय संगीत परम्परा के पुनरोत्थान के लिए 'पायोनियर' की भूमिका निभाई। उन्होंने 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक' पुस्तक भी लिखी। यद्यपि नोबल पुरस्कार विजेता रविन्द्रनाथ टैगोर मूलतः साहित्यकार और कवि थे लेकिन उन्होंने संगीत रचनाएं भी की। उनका रविन्द्र भारती और शान्ति निकेतन कलाकारों के आकर्षण केन्द्र बन गये। उन्होंने कलाकारों को उनकी पसन्द और रुचि का वातावरण उपलब्ध कराया।

इसके साथ ही कई रियासतों या तत्कालिन राज्यों ने कलाकारों की प्रतिभा को निखारने में सहायता की। दरभंगा, कोल्हापुर, पटियाला, बनारस, जयपुर, अलवर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर आदि रियासतों के नरेशों ने कला के पोषण में गहरा योग दिया। इस प्रकार तत्कालीन राज्यों का कला को संरक्षण मिला और उन्होंने भारतीय संगीत और कला की ध्वजा फहराये रखी। इन्हीं के प्रयासों से संगीत और नृत्य की विभिन्न शैलियाँ पनपी जिनमें जयपुर घराना, लखनऊ घराना, बनारस और पटियाला घराना आदि प्रमुख थे।

इन प्रयासों का कुछ विपरीत प्रभाव भी पड़ा। इनकी आपस की प्रतिस्पर्द्धा के कारण कई उभरती प्रतिभाओं को इनका शिकार होना पड़ा।

भारतीय संगीत परम्परा की विकास एवं उत्थान-प्रक्रिया के सन्दर्भ में विष्णु दिगम्बर पालुसकर के नाम की चर्चा नहीं की जाये तो इस काल के कला-पोषण के प्रयासों की बात अधूरी रहेगी। यह पं. विष्णु दिगम्बर पालुस्कर के ही अथक प्रयास थे जिनके कारण 'गान्धर्व संगीत महाविद्यालय' की स्थापना लाहौर में की गई।

लाहौर इस समय 1901 में पंजाब राज्य की राजधानी था। जैसी कि अपेक्षा थी इस महाविद्यालय ने प्रारम्भिक या शुरूआती महत्त्वपूर्ण एवं सकारात्मक भूमिका निभाते हुए संगीत, विशेषकर हिन्दुस्तानी संगीत को नये आयाम और नई दिशा दी। साथ ही उन्होंने इस महाविद्यालय की एक शाखा बम्बई (मुम्बई) में खोली जो कि 1908 में एक सेन्ट्रल प्रोविन्स था। उन्होंने संगीत के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालते हुए 60 रचनाएं लिखी। इस प्रकार भारतीय संगीत परम्परा को एक ठोस आधार देने एवं आगे बढ़ाने में उनकी महत्ती भूमिका थी। इतना ही नहीं पालुस्कर ने राष्ट्रीय स्तर पर कई संगीत-सम्मेलनों के आयोजन किये जिनमें देश के उत्कृष्ट कोटि के संगीत-विद्वानों एवं कलाकारों ने भाग लिया। इस प्रकार के प्रयासों से हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत के अध्ययन एवं प्रसार का मार्ग प्रशस्त हुआ। साथ ही भारतीय संगीत जनसाधारण में लोकप्रिय हुआ।

इस प्रकार इतिहास के उस धुंधलके में भारतीय संगीत परम्परा और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं संवर्द्धन के महान् कार्य को पूर्ण करने में वे एक मील के पत्थर बने। वे कला के प्रसार, प्रचार और समृद्धि के स्तम्भ थे।

भारतीय संगीत परम्परा के दूसरे महत्त्वपूर्ण एवं समकक्ष व्यक्तित्व विष्णु नारायण भत्खण्डे थे जिन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने की दिशा में सराहनीय भूमिका अदा की। उन्होंने 1921 में 'श्री-माल-लक्ष्य-संगीतम्' और 'अभिनव राग मंजरी' का प्रकाशन किया जिसमें उन्होंने उत्तर भारत के संगीत (हिन्दुस्तानी संगीत) के समस्त महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला। पंडित भतखण्डे भी जयपुर सम्मेलन की सिफारिशों से सहमत थे जिनमें राग विलावल को भारतीय संगीत के एक अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी गई थी। उन्होंने प्रमुख रागों का वैज्ञानिक आधार पर वर्गीकरण किया। भारतीय संगीत के सिद्धान्तों पर उन्होंने मराठी में चार ग्रन्थ लिखे और भारतीय संगीत की प्रमुख रचनाओं का सात ग्रंथों में संकलन किया।

सार रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत के वैज्ञानिक एवं सिलसिलेवार अध्ययन (हिन्दुस्तानी संगीत के विशेष सन्दर्भ में), आधुनिक काल के प्रसंग में पंडित विष्णु दिगम्बर पालस्कर एवं विष्णु नारायण भतखण्डे भरतीय संगीत की दुनियॉ में शीर्षस्थ नाम है।

भारतीय संगीत को शैक्षणिक एवं स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में स्थापित करने में जिस प्रकार प्राचीन काल में भारतीय ऋषि-मुनियों की अहम् भूमिका थी, उसी प्रकार ये दो व्यक्ति ऐसे थे जिन्होंने इन ऋषि-मुनियों की परम्परा और भारतीय संगीत को गति और ऊँचाई दी।

5.7 भारतीय संगीत का माधुर्य

संगीत के विदेशी विद्वानों विलियम जोन्स एवं अगस्तस विलार्ड का मत है कि दो या अधिक रागीनियों का समन्वय करने की भारतीय संगीतज्ञों की अपनी शैली और अपने नियम हैं। इन शैलियों के आन्तरिक गुण का निर्णय विदेशी संगीत विद्वानों द्वारा तय नियमों से नहीं होगा। संगीत के मर्मज्ञ या उस्ताद स्वयं यह निर्णय करते है कि श्रवण-इन्दिया या कानों के लिए कर्णप्रिय संगीत रचना कैसी होनी चाहिए। भारतीय संगीत की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार मानी गई है -

1. भारतीय संगीत में विविधता एवं दोहराने की प्रवृति है।
2. संगीत रचना पर प्रथम या अन्तिम बंध प्रमुख रहता है।
3. गायकी में कुछ बंधों को थोड़ी विविधता के साथ बार-बार दोहराया जाता है।
4. संगीत रचना में स्वतन्त्रता होती है और ठहराव (पॉज) का उपयोग रचना के माधुर्य की वृद्धि के लिए किया जाता है।

5.8 राग, रागिनी और थाट

इन्साईक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका में संगीत को परिभाषित करते हुए कहा है कि "लगातार नियमित ध्वनियों को कुछ सैद्धान्तिक आधारों पर छोड़ा जाये तो संगीत की उत्पत्ति होती है।"

राग-रागिनियों को भारतीय संगीत की पद्धति या तरीका या ढंग कहा गया है। तरीके (मोड) की दो प्रकार से महत्ता है। एक तो शैली के लिए प्रयुक्त तरीका और दूसरा वह जो इसका ज्ञान करता है अर्थात् समझा जाता है। इसी तरीके या 'मोड' को भारतीय संगीतज्ञों की भाषा में 'थाट' 'राग' या 'रागिनी' की संज्ञा दी जाती है। ये दो प्रकार के तरीके होते हैं जैसे वृहद् और लघु। थाट, राग, रागिनी आदि शब्दों का विशेष अर्थ और भाव है?।

5.8.1 राग

वे मूल नोट्स या स्वर जिनके साथ संगीत की लय या 'मेलोडी' निरन्तर चलती है और, जिसमें बारीक विविधता का पुट रहता है, उसे राग कहते हैं। संगीत की लय और ताल होती है।

5.8.2 रागिनी

यह भी संगीत की सृष्टि-प्रक्रिया का ढंग है और प्रतीकात्मक रूप से रागों की तुलना स्त्री के रूप में प्रगट की गई है।

5.8.3 थाट

राग-रागिनियों में जहाँ प्रमुख ध्वनि एक के बाद एक निरन्तरता के साथ चलती है वहीं 'थाट' में आपस में परस्पर ध्वनियों के बीच का फासला तय होता है।

उत्तरी भारत या हिन्दुस्तानी संगीत पुस्तकों में 6 राग बताये गये हैं और इनका वर्गीकरण स्त्री और पुरूष रागों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हर राग के साथ कोई छवि या 'इमेज' जुड़ी हुई है जैसे मेघ और हिन्डोल आदि रागों का दृश्यात्मक चित्रण राजस्थान की लघुचित्र शैलियों (मिनियचर पेन्टिंग्स) में मिलता है।

जबकि दक्षिण में कर्नाटक संगीत में कुछ विशेष रागों और दिन विशेष समय के सम्बन्ध में कुछेक मामलों में ज़ोर दिया गया है जैसे राग निलाम्बरी का सम्बन्ध रात्रि शयन काल से माना जाता है हिन्दुस्तानी संगीत में उत्तरी भारत, में रागों का सम्बन्ध समय के साथ जुड़ा हुआ है एवं इसमें समय और राग के नियमों का विस्तार से पालन किया जाता है। सर विलियम जोन्स का मत है कि ज्ञान की हर शाखा में काव्यात्मक कथाएं या 'फेबल्स' मिलती है। ग्रीक या यूनानी अन्वेषणपूर्ण प्रतिभाओं ने भी भारतीय छह रागों के परिवार कि संकल्पना के समान रोचक कोई कथा नहीं रची है।

भारतीय संगीत कि छह रागों का 5 रागिनियों के साथ मिलन और 8 इनके पुत्र राग हैं। यह रागों का रागिनियों या अप्सराओं के साथ विवाह या गठबंधन और उनकी 8 सन्तानें, एक ऐसी भारतीय संगीत कि संकल्पना है जो दुनियाँ के कलाजगत में अनूठा है। यह राग-रागिनियाँ आदि सब एक 'संगीत परिवार' है अर्थात् संगीत कि विविध विधाएं है। यहाँ भारतीय संगीत के 'सरगम' और श्रुति आदि कि चर्चा करना भी आवश्यक है।

5.8.4 भारतीय संगीत में सरगम और श्रुति

भारतीय संगीत कि सम्पूर्णता पर दृष्टि डालें और इसकी ध्वनि या 'टॉन' को देखें तो सरगम और श्रुति की चर्चा करना भी आवश्यक होगा।

5.8.4.1 सरंगम

स्वर या नोट्स की संख्या तो उतनी ही है जितनी की आधुनिक यूरोपीय संगीत में है लेकिन इसके अलावा प्राचीन ग्रीक के संगीत की तरह ही कई है। इन नोट्स या स्वरों के नाम इस प्रकार हैं। -1. स्वरण सादज 2. रेहकब 3. गन्धर 4. मध्यम 5. पंचम् 6. देवत् एवं 7. निखद । लेकिन इन स्वरों का प्रथम अक्षर जैसे सा, रे, ग, म, प, द, नि आदि। सा, प्रमुख या डोसिनेटिंग स्वर है। अब यह प्रश्न खड़ा होता है की श्रुति से क्या अभिप्राय है।

5.8.4.2 श्रुति

हर स्वर में कोई श्रुति या श्रुतियाँ होती है। जैसे स्वरण की श्रुति बुतरा, कुमुदवती, मनेजरिका, छनोदोवति है। रेखक की दयवन्ती, रंजासु, वक्तिका और सिद्धि श्रुति है। गन्धर की करोधी और मध्यम की बाजार, प्रारिनि, प्रीती, मंजरी काश्ती और पंचम् स्वर में पिक्ता, सिर पानी (संदिपनि), अल्मनि, मंडाती तथा देवत् में रोहिनी और रमैया व 'नि' स्वर में उग्र एवं जुबां का श्रुतियाँ निहित है।

5.8.5 भारतीय संगीत में प्रयुक्त वाद्य

भारतीय संगीत के क्षेत्र में उपयोग में लिये जाने वाले वाद्यों का भी अपना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष है। इनमें भी विविधता है। यहाँ विशेषकर हिन्दुस्तानी संगीत से जुड़े वाद्य-यन्त्रों कि चर्चा करना समीचीन होगा।

1. **सितार -** यह वाद वाद्य है। इसमें कई तार फैले रहते है जो यन्त्र के ऊपरी सिरे पर बंधे रहते हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार तनाव या कुछ कम स्तर पर संयोजित किया जा सकता है।
2. **वीणा-** संगीत में इसके लम्बे समय से चली आ रही भूमिका के बारे में याज्ञवल्क्य श्रुति ने लिखा है कि जो व्यक्ति वीणा के सिद्धान्त जनता है, जठि पर जिसकी निपुणता है और जो 'श्रुति' और 'ताल' का ज्ञाता है उसे बिना प्रयास के मोक्ष प्राप्त होता है। यह भी तर वाद्य है। जिसके दोहरे तार होते हैं। इसका मोतियां एवं कछुए की खाल से अलंकरण किया जाता है।
3. **तबला -** यह गोल होता है और इस पर चमड़ा कसा जाता है। भीतर से पोला होता है। अंगुलियाँ या हाथ से इससे विशेष प्रकार की ध्वनि का सृजन होता है।
4. **मृदंगम् -** यह अंडे की तरह का वाद्य है। इसके बायें और दायें भाग की ध्वनि या 'रिदम' भिन्न-भिन्न होती है। हाथों की अंगुलियों से वाद्यवादक विभिन्न प्रकार की ध्वनि रचता है।
5. **हार्मोनियम -** विभिन्न स्वरों की रचना करने वाला हस्त वाद्य है। इसे संयोजन के साथ गायन की लय या ध्वनि के अनुरूप संचालित किया जाता है। यह संगीत में रचा-बसा वाद्य है।
6. **वायलिन -** यह स्वदेशी वाद्य नहीं है लेकिन भारत में इसका प्रयोग चलन में है। इसे वादक द्वारा अपनी सुविधा के अनुसार रखकर बजाता है।
7. **सन्तुर -** यह स्वदेशी वाद्य है। यह भी तार वाद्य है और विशेष प्रकार की ध्वनि की सृष्टि करता है।
8. **बाँसुरी-** दो प्रकार की बाँसुरी का भारत में उपयोग होता है- पश्चिमी एवं पूर्वी। पश्चिमी बाँसुरी, एक बादलों की तरह मंडराने वाले वातावरण की सांयकाल जैसे वातावरण की रचना करती है। पूर्वी बाँसुरी का प्रयोग आदिवासी या सपेरे करते हैं। कृष्ण को बाँसुरी वादन में निपुण माना गया है इसको कृष्ण एवं गोपियों के संदर्भों से सम्बन्ध किया गया है। कृष्ण अपनी बाँसुरी की धुन से सबको मोहित कर देते थे।
9. **तम्बुरा -** यह सितार, की तरह का वाद्य है जिसका उपयोग कर्नाटक संगीत में अधिकांशतः किया जाता है।

5.9 आधुनिक भारत के संगीत प्रकाश-स्तम्भ

भारतीय संगीत के प्रकाश-स्तम्भों की आधुनिक युग में चर्चा करें तो ज्ञात होगा कि ये वो हस्तियाँ है जिन्होंने संगीत के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। इस प्रकार के निस्वार्थ समर्पण के लिए इनके प्रती कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। इन संगीतज्ञों का मिशन केवल संगीत की पताका को फहराते रहना रहा है। इन भारतीय संगीत के प्रकाश-स्तम्भों पर दृष्टि डालें तो यह

स्पष्ट होगा कि किस प्रकार उन्होंने संगीत की सेवा में जीवन संघर्ष और साधना की और इसे ऊँचाईयाॅ दी।

5.9.1 उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ

सबसे पहले उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ (1902-1968) की चर्चा करें तो उचित होगा क्योंकि उन्हें संगीत-सम्राट के नाम से पुकारा गया है। यह संयोग ही था कि उनका जन्म लाहौर (उस समय के पंजाब की राजधानी) के कौसर घराने में हुआ। उन्होंने संगीत की शिक्षा-दीक्षा अपने चाचा काले खाॅ से ली जो पटियाला घराने के फतेह अली खाँ के शिष्य थे। राग केदार, यमन, बागेश्वरी, विहाग आदि के साथ ठुमरी एवं मयाना, उनकी जीवनशैली का अंग बन गई। यहाँ तक की भी उन्होने जब स्व. जी.एल. वाला सुब्रहमन्यम् के साथ दक्षिण भारत की यात्रा की और कुछ कर्नाटक शैली के गीत गाये तो वे वहाँ भी अत्यन्त लोकप्रिय हुए और लोगों ने उनकी संगीत शैली की सराहना की। उनका सर्वाधिक योगदान यही नहीं है कि उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत की शुद्ध शास्त्रीय संगीत को ही गाया बल्कि इसे भारतीय जन-जन में लोकप्रिय भी बनाया। जब वे गाते थे "का करूँ सजनी आये ना बालम" या "तिरछी नजरिया के बान", "बाजूबन्द खुल जाये, प्रेम की मारे कटार, रैन अँधेरी डर लागे" आदि के साथ संगीत के सुर छेड़ते थे तो श्रोताओं को यह एहसास होता था कि समय कहीं रूक गया है।

भारत के राष्ट्रपति ने बड़े गुलाम अली खाँ को 'पद्म विभुषण' के अलंकरण के साथ राष्ट्रीय सम्मान से नवाजा। संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली के वे फैलो बनाये गये। इस प्रकार यह गलत नहीं होगा यदि हम उन्हें इतिहास पुरूषों जैसे तानसेन, हरिदास, बैजू बावरा, फैय्यज खान, विष्णु दिगम्बर, जालुस्कर और औंकारनाथ ठाकुर जैसे संगीत के महापुरूषों की श्रेणी में रखें।

5.9.2 डागर बंधु

यह जुगलबंदी करने वाले संगीतज्ञ हैं नासिर जैरूद्दीन (1932 में जन्म) और नासिर फैजुद्दीन (1934-1989) जो दिल्ली वासी हैं। दोनों ध्रुपद शैली के गायक हैं। उनके चाचा रियाजुद्दीन खाँ डागर उनके बड़े भाई नासिर मोईनुद्दीन और उस्ताद नासिर आमेनुद्दीन डागर ने उन्हें ध्रुपद की शिक्षा दी। 1963 में उन्होंने संगीतज्ञों का चार दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन ध्रुपद शैली को समर्पित करते हुए आयोजित किया। इससे ध्रुपद को आगे बढ़ाने में गहरा योग मिला उन्होंने दिल्ली में ध्रुपद सोसायटी की स्थापना की। इस प्रकार हर साल ध्रुपद के आयोजकों की परम्परा शुरू करके उन्होंने इस शैली को लोकप्रिय बनाने के प्रयास किये।

5.9.3 गिरिजा देवी (1929)

गिरिजा देवी का जन्म बनारस के जागीरदार ठिकाने बाबू रामदास के यहाँ 10 मई 1929 को हुआ। उनके पिता पंडित शम्भूनाथ मिश्र एवं सूर्या प्रसाद ने उन्हें संगीत की बारीकियाँ सिखाई। श्रीचन्द मिश्र ने तानसेन के

सेनिया घराने के संगीत का उन्हें प्रशिक्षण दिया। उन्होंने आरा (बिहार) में केसरबाई, गंगुबाई के साथ संगीत सभा में शिरकत की और लोगों का मन मोह लिया। 1985 में उन्हें लखनऊ में नाईटेंगिल ऑफ नार्थ इन्डिया कहा गया। तत्कालिन उपराष्ट्रपति राधाकृष्णनन एवं नेपाल नरेश ने उनकी संगीत प्रतिभा को सराहा। संगीत में वे ठुमरी की मलिका थी।

5.9.4 उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ (1919)

बिस्मिल्ला खाँ का वाद्य संगीत अर्थात् शहनाई वादन में कोई सानी नहीं है। शहनाई के स्वरों की पृष्ठभूमि में हिन्दु मंदिरों आरती की पावन रस्म पूरी की जाती है। इस कारण शहनाई के साथ आध्यात्मिक आयाम जुड़ गये। उन्होंने अपने मामा उस्ताद अलीबख्श खॉ से शहनाई बजाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उन्हें इलाहाबाद संगीत सम्मेलन में स्वर्ण पदक मिला। फिर कलकत्ता में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में उन्हें मान्यता मिली और पहली बार आकाशवाणी पर उनका प्रदर्शन हुआ। प्रारम्भ में शहनाई को भारतीय शास्त्रीय संगीत का वाद्य नहीं माना जाता था। लेकिन उनके मामा ने शहनाई पर 'मियां की टोडी राग छेड़ी, तो शहनाई ऊँचाईयाँ छूने लगी। उन्हें देश और विदेश में शहनाई वादन के लिए ढ़ेरों प्रशंसा प्राप्त हुई। 1965 में भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मश्री' से विभूषित किया।

5.9.5 पंडित रविशकंर (1920)

पंडित रविशंकर का जन्म भी बनारस के एक संगीत-प्रेमी घराने में हुआ। 1934 से उन्होंने आकाशवाणी पर राग छेड़े। 1966 से उनका सितारवादन एक फैशन बन गया। उन्होंने बनारस में प्रशिक्षण केन्द्र खोला। पश्चिम में भी उनका सितारवादन लोकप्रिय हुआ।

उन्होंने विभिन्न रागों जैसे नटभैरव, बैरागी, तिलकश्याम कामेश्वरी, रागेश्वरी, गंगेश्वरी, परमेश्वरी, मोहनकोष आदि का इजाद किया। उनका मत है कि सुर और राग का अन्तर्राष्ट्रीयकरण होना चाहिए।

5.9.6 वी.जी. जोग (1922)

वी.जी. जोग भारत के प्रसिद्ध वायलीन वादक हैं। उनका जन्म पूना से 60 कि.मी. दूर महाराष्ट्र में हुआ। गोविन्द गोपाल जोग के संगीत प्रेमी परिवार थे उन्हें बचपन से ही संगीतमय वातावरण मिला और उन्होने तबलावादन से शिक्षा शुरू की।

उनके पिता और भाई उन्हें संगीत की दुनियाँ में लाये। फिर गनपाल पुरोहित, पं. विगनेश्वर शास्त्री, डा. एस.एन. रत्नाकर, उस्ताद अलाउद्दीन आदि से उन्होंने वायलिन वादन एवं संगीत शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने संगीत पर 'बेला शिक्षक' पुस्तक लिखी। भतखण्डे संगीत विद्यालय ने उन्हें मास्टर ऑफ म्यूजिक का सम्मान दिया।

आकाशवाणी पर वे सुगम संगीत के प्रोड्यूसर रहे। यहाँ तक की नेताजी सुभाष चन्द्र बोस उनकी धुनों के प्रशंसक थे। वे कर्नाटक और हिन्दुस्तानी, दोनों संगीत शैलियों में माहिर थे। उन्होंने वायलिन की कला को नये आयाम दिये।

5.10 सारांश

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है कि भारतीय और पश्चिम संगीत का अपना-अपना अलग परिवेश है और भारतीय संगीत की आत्मा में 'मेलोडी' बसी है तो पश्चिमी संगीत का आधार 'हार्मनी' है। मेलोडी का निर्माण 'टॉन्स' से होता है जो अपनी निरन्तरता और दोहराये जाने के कारण एक दूसरे से सम्बन्धित होती है। जबकि 'हार्मनी' का आधार 'म्यूजिकल स्पेश' है।

वास्तव में 'मेलोडी' संगीत का प्राण है परन्तु 'मेलोडी' की रचना करना अत्यन्त दुष्कर एवं साधना से पूर्ण मार्ग है।

साथ ही हमने हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत शैलियों के बीच भी तुलना करने का प्रयास किया है। यह भी बताने की कोशिश कर चुके हैं कि ये दोनों शैलियाँ एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी इनकी आत्मा एक है। वैदिक काल से लेकर 18वीं सदी तक इन दोनों शैलियों के बीच कोई अन्तर नहीं रहा। हिन्दुस्तानी संगीत की संज्ञा उत्तरी भारत की संगीत धारा को दी गयी। मुगलों के आगमन के बाद उत्तर भारत के संगीत में नई शैलियों और तौर-तरीका का मिश्रण होने लगा। इसके राजनैतिक और तत्कालीन दबाव था। अकबर के समय भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रोत्साहन मिला। इनका विकास हुआ। इसके अलावा भारतीय शास्त्रीय संगीत के पोषण और विकास में भक्ति आन्दोलन का प्रमुख योग रहा। मुक्ति के लिए संगीत रचनाएं लिखने और संगीत को माध्यम मानने के कारण भारतीय संगीत को बल मिला। इस प्रकार परिवर्तन के अनेक दौरों से गुजरने के बावजूद भारतीय रागों की ढाँचागत विशेषताएं तो समान हैं लेकिन इनकी प्रस्तुति या 'रेन्डरिंग' की शैली और वर्ण भिन्न-भिन्न हैं।

हमने यह भी प्रयास किया है कि भारतीय संगीत परम्परा के उद्भव और विकास की तह में झांका जाये। विशेषकर हिन्दुस्तानी संगीत के विविध पहलुओं पर दृष्टि डालने की कोशिश की गई है। भारतीय संगीत की 'मेलोडी' की विशेषता को भी समझने का प्रयास किया गया है। राग-रागिनियों की विशेषताओं पर ध्यान देने का भी प्रयास किया है। सरगम और श्रुति पर प्रकाश डाला गया है।

भारतीय संगीत परम्परा के समृद्धि से भरपूर संसार और आधुनिक युग की संगीत-हस्तियों की झलक प्रस्तुत करने के अलावा भारतीय संगीत वाद्यों की भी चर्चा की गई है। साथ ही संक्षेप में संगीत के प्रकाश-स्तम्भों बड़े गुलाम अली, गिरिजादेवी डागर बंधु, उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ, पंडित रविशंकर, पंडित वी.जी. जोग आदि की संगीत उपलब्धियों और भारतीय संगीत में इनके योग की जानकारी प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न किया है।

भारतीय संगीत परम्परा की सदियों की विकास यात्रा को संक्षिप्त सर्वेक्षण में समेटना तो सम्भव नहीं है लेकिन इस संगीत धारा की विशेषताओं का हमें कुछ परिचय तो मिल ही जायेगा और इसकी उत्कृष्टता से हमारा थोड़ा साक्षात्कार होना तो मुमकिन है। यदि संगीत में रूचि रखने वालों का इस दिशा में कुछ और ध्यान आकर्षित होता है और वे भारतीय संगीत की तहो में झांकने का प्रयास करते हैं और प्रेरित होते हैं तो परम्परा का पक्ष और प्रबल बन सकेगा।

5.11 कुछ उपयोगी साहित्य

1. Joseph Machlis, The Enjoyment of Music, New York, W.W. Norton & Co., 1957.
2. William Jones & N. Augustus William, Music of India, Calcutta, Shusil Gupta (Ind.) Pvt. Ltd. 1962.

5.12 अभ्यास प्रश्न

1. मेलोडी और 'ध्वनि' का अन्तर स्पष्ट कीजिये।
2. आप भारत और पश्चिम के संगीत के बीच किस प्रकार तुलना करेंगे।

3. क्या आप मानते हैं कि हिन्दुस्तानी और कर्नाटक भारतीय संगीत शैलियाँ एक दूसरे के विरूद्ध जाती हैं?
4. एतिहासिक सन्दर्भ में भारतीय संगीत परम्परा की विकास यात्रा पर प्रकाश डालें।
5. संक्षेप में भारतीय संगीत के प्रकाश-स्तम्भों का परिचय दीजिए।
6. किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखें -

   1. राग 2. रागिनी 3. थाट 4. सरगम 5. श्रुति

इकाई - 6 : भारतीय शास्त्रीय नृत्य

रूपरेखा :

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 भारतीय के नृत्य
 6.2.1 नाट्य नृत्य आदि का वर्गिकरण
 6.2.2 नाट्य
6.3 पश्चिमी एवं भारतीय नृत्यों का तुलनात्मक अध्ययन
6.4 भारतीय नृत्य शैलियाँ
 6.4.1 दासी अट्टम्
 6.4.2 कुचिपुड़ी
 6.4.3 कथकली
 6.4.4 मोहिनी अट्टम्
 6.4.5 यक्षगण
 6.4.6 कथक
 6.4.7 मणिपुरी नृत्य
 6.4.8 ओड़िसी
6.5 भारतीय नृत्यों क्रमिक विकास की पृष्ठभूमि
6.6 भारतीय नृत्य परम्परा पर इस्लाम का प्रभाव
6.7 आधुनिक युग में भारतीय नृत्य परम्परा का पुनरोत्थान
6.8 महान् नृत्य कलाकार जिन्होंने नृत्य परम्परा का पाषण किया
6.9 सारांश
6.10 उपयोगी साहित्य
6.11 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

शास्त्रीय नृत्यों की भारतीय परम्परा को अच्छी तरह समझने के लिए हमें इस बात का प्रयास करना चाहिए कि पश्चिमी नृत्य-परम्परा और भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के बीच मौलिक अन्तर क्या हैं? इसके लिए दोनों का तुलनात्मक विवरण आपको इसे समझने में मदद करेगा। साथ ही इस इकाई में आप भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के उद्भव, विकास का भी ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हो सकेंगे। इकाई का लक्ष्य यह बताना भी है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा का इस सन्दर्भ में क्या योगदान रहा। इस प्रकार भारतीय नृत्य परम्परा के सम्पूर्ण परिवेश से आप परिचित हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भारत में प्राचीनकाल में नृत्य, केवल मनोरंजन के माध्यम नहीं थे बल्कि ये एक पवित्र रीति रिवाज था। नृत्य, संगीत आदि समस्त प्रकार की कलाएं धर्म से जुड़ी हुई थी और इनका

प्रदर्शन, मंदिरों और देवालयों में होता था। आराध्य देव को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न कलाओं के आयोजन किये जाते थे। साथ ही मनुष्य की आन्तरिक या आत्मीय अनुभवों की अभिव्यक्ति का नृत्य, संगीत आदि माध्यम होते थे। कलाओं का लक्ष्य मनुष्य के आँख, कान आदि इन्द्रियों का रिझाना-मात्र नहीं था। उनमें अन्तरमन की सुगन्ध व्याप्त होती थी। हिन्दु दर्शन में नृत्य की अवधारणा में विश्व की रहस्यमयी लय के प्रतीक रूप में भारतीयता की आत्मा में यह रची बसी थी। जब पश्चिमी दुनियाँ ने सभ्यता की दुनिया में शायद पाँव भी नहीं रखा था, उस समय भारत ने ज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक विकास कर लिया था और यहाँ की जीवनशैली अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी।

भारतीय कलाओं में प्राचीनकाल से धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का नृत्य, सबसे बड़ा साधन रही है। जिस प्रकार वर्षा की बून्दों के साथ धरती का सम्पूर्ण वातावरण हर्षित हो उठता है, सभी जीव खुशी से झूम उठते हैं और मोर नाचने लगता है उसी प्रकार मनुष्य अनादिकाल से अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति, नृत्यों के रूप में करता आया है।

यह नृत्य परम्परा उन्नत समाजों में भी रही है और अनवरत यह प्रवृति चली आ रही है। इस प्रकार एक धार्मिक भाव को प्रगट करने के साथ नृत्य पवित्र मनोरंजन का साधन भी रहा है। यह कला, मनुष्य को इन्द्रिय आनन्द से ऊपर उठाकर अलौकिक अनुभूतियों की ओर ले जाती है। इस प्रकार नृत्य कला भी उतनी ही पुरानी है जितना स्वयं मनुष्य। लेकिन समय के साथ नृत्य के रूप बदलते गये। समसामयिक नृत्य शैलियों में से कुछ नई हैं तो कुछ अपने प्राचीन रूप में ही चलन में हैं। शास्त्रीय शैलियों के रूप में आज भी प्राचीन नृत्य शैलियाँ जीवन्त हैं। यद्यपि कुछ शैलियों में थोड़ा परिवर्तन भी हुआ है लेकिन शास्त्रीय नृत्यों की आत्मा में आज भी प्राचीन नृत्यों की सुगंध समाई हुई है।

शास्त्रीय नृत्यों की यह खूबी है कि हजारों वर्षों के अन्तराल के बाद भी उनकी आत्मा मौलिक रूप में सुरक्षित है। इसका प्रमाण, भारत का नाट्यशास्त्र है जो मूलतः संगीत, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं को समर्पित है। इसमें इस कला की बारीकियों का अद्भुत वर्णन किया गया है।

शास्त्रीय नृत्यों की परम्परा, एक लम्बे समय अर्थात् 13वीं सदी से अबाध रूप से जारी रही। भारत में इस्लाम के आगमन के बाद इन कलाओं पर भी आक्रमण हुआ। भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैली सहित यहाँ की संस्कृति को इस्लाम ने प्रभावित किया। इसके बाद नृत्य एवं अन्य कलाओं के रूप बदलने लगे। इस्लाम का कत्थक नृत्य शैली पर गहरा असर हुआ।

नृत्यों के प्रदर्शन के पवित्र स्थल, मंदिर थे। कलाकार, मंदिरों में अपनी भक्ति या श्रद्धा का प्रदर्शन इन नृत्यों के द्वारा करते थे। देवों को रिझाना या प्रसन्न करना प्रमुख उद्देश्य था। लेकिन मुगलों के आने के बाद राजदरबार, महफिल आदि में मनोरंजन के लिए इनका उपयोग होने लगा और नृत्य, अपने मूल स्रोत और स्थान से उखाड़ दिये गये। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मुगलकाल में नृत्य, लोकप्रिय बने और आम मनोरंजन के साधन हो गये लेकिन इनका सौंदर्य एवं पवित्र स्वरूप एवं स्वभाव अस्त-व्यस्त हो गया। मुगलकाल में यद्यपि शास्त्रीय नृत्यों का अवमूल्यन ही हुआ था लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में पाँव जमने के बाद तो अंग्रेजों ने उन नृत्यों का मजाक उड़ाना आरम्भ कर दिया।

ठाकुर रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरूणडले, पं. शंकर, मेडम रूथ, सन्त डेनिस आदि कई ऐसे नृत्य कला के पारखी और कला मर्मज्ञ हुए जिन्होंने प्राचीन शास्त्रीय नृत्य शैली को पुनर्जीवित करने एवं इसकी परम्परा के संरक्षण के अनूठे प्रयास किये। इस प्रकार समय के थपेड़ों के बावजूद भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा ने हार नहीं मानी और इसका परिणाम यह हुआ कि ये नृत्य आज नई ऊचाईयॉ छू रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक विरासत का ये एक पड़ाव बन गये हैं और भारतीय संस्कृति और सभ्यता अभिन्न रूप में संसार में अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुए है। पश्चिमी आलोचक भी इन नृत्यों की अतुलनीय उपलब्धियों की प्रशंसा करते नहीं थकते।

6.2 नाट्य-नृत्य आदि का वर्गीकरण

भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की विशेषताओं की तह में जाने से पूर्व यह समीचीन होगा कि नाट्य, नृत्य आदि के अन्तर को समझकर उनका वर्गीकरण किया जाये। नृत्य के साथ विनय, वाचिका आदि के सन्दर्भ भी समझने चाहिए क्योंकि ये नृत्य गुढ अर्थों और भावों से ओतप्रोत होते हैं और मुद्राओं आदि के अलावा अंग संचालन के द्वारा प्रतीकात्मक रूप से भावाभिव्यक्ति करते हैं। कई बार विभिन्न कलाओं के भीतर छिपे अर्थों को नहीं समझ पाने के कारण उनके बारे में आलोचक भी सही राय या समीक्षा प्रस्तुत नहीं कर पाते। इसलिए मौलिक शब्दों के अर्थ स्पष्ट होने आवश्यक हैं।

6.2.1 नृत्य

नृत्य, शारीरिक-मुद्राओं या अंग संचालन पर आधारित होता है। इनमें तीन प्रमुख मुद्राएं होती है जो लास्य या ताल के समर्थन से संचालित की जाती हैं। अंगों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति के कारण कई आलोचक नृत्य कला को एक कम दर्जे की या 'इन्फीरियर' कला मानते हैं लेकिन कुछ आलोचक इस विचार से सहमत नहीं हैं। नृत्य के विरूद्ध जो धारणा पनपी, उसका कारण मध्य युग में नृत्य और अभिनय का आपसी मिश्रण था। कुछ लोग नृत्य की तुलना मुकाभिनय (मिभीकरी या पेन्टोमाईम) से करते हैं लेकिन यह तुलना गलत है। वास्तव में संकेतों या प्रतीकात्मक रूप से अंग संचालन के द्वारा सम्प्रेषण (कम्यूनिकेशन) का यह एक प्रतीकात्मक या प्रभावी माध्यम है। नृत्य-सम्प्रेषण का अर्थ है कि नृत्य के माध्यम से नृत्यांगना या नर्तक कुछ कहता है।

'अभिनय' के द्वारा नृत्य के रंग-रूप, शैली आदि को संवारा जाता है। नृत्य में अभिनय के पुट से नृत्य की सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि होती है।

नृत्यांगना और नर्तक अपने कथ्य को नृत्य में अभिनय के पुट द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। किसी भी बात को दूसरों तक प्रभावपूर्ण ढंग से पहुँचाने या उनको स्पष्ट रूप से समझाने के लिए मनुष्य की एक-एक गतिविधि ही सम्प्रेषण या संचार है। इसके कारण अभिनय के विभिन्न रूप हुए। जब किसी से कोई बात, जिस मनस्थिति या भाव के साथ कहते हैं तो शब्दों के साथ चेहरे और अंगों' की मुद्रा के साथ उसका तालमेल होना जरूरी है। ऐसा होने पर ही कथा का पूर्ण प्रभाव प्रगट होता है।

6.2.2 नाट्य

नाट्य शब्द की उत्पत्ति 'नट' शब्द से है। स्पन्दन या शारीरिक भावों, मुद्राओं, शब्दों, अंग- संचालन आदि के साथ शारीरिक क्रियाओं से नाटक या नाट्य का सम्बन्ध है। नृत्यों की

तरह नाटक या नाट्य में भी किसी विचार, भाव, सिद्धान्त या बात को प्रगट किया जाता है। नाट्य के पात्र अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करते हुए मंच पर प्रकाश, ध्वनि, मंच-सज्जा आदि विविध तकनीकों का उपयोग करके प्रतीकात्मक या सीधे तौर अपनी बात, दर्शकों तक पहुँचाते हैं। यह दृश्य और श्रव्य माध्यम है। लक्ष्य भले ही मंचनकर्ता और दर्शक, के बीच संवाद कायम करने का हो या नर्तक-नृत्यांगना और दर्शकों के बीच एक सम्बन्ध या वैचारिक एकता कायम करने का, प्रदर्शन कलाओं या प्रफोर्मिंग आर्ट्स का लक्ष्य एक है। माध्यम, तकनीक और तौर-तरीके भिन्न हैं। विविध विधाओं का अपना विधि-विधान है।

6.3 पश्चिमी एवं भारतीय नृत्यों का तुलनात्मक अध्ययन

पश्चिमी एवं भारतीय नृत्यों की तुलना से पूर्व इस सन्दर्भ में युनान या ग्रीक तथा भारत के नाट्यशास्त्र पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा। भारत के नाट्यशास्त्र में नाट्य की परिभाषा में कहा गया है कि नाट्य, देवों, असूर सम्राटों एवं गृहस्थों की संसार में नकल या मिमीकरी है। इसकी तुलना अरस्तु या अरिस्टोटल की ट्रेजेडी की परिभाषा से करें तो उसमें कहा गया है कि "ट्रेजेडी या दुखान्त नाटक किसी भी कार्य या एक्शन की नकल (इमिटेशन) है। यह कार्य महत्त्वपूर्ण, सम्पूर्ण एवं 'प्रोपर मेग्नीट्यूड' या ऊँचाई का होना चाहिए।" इस प्रकार इन दोनों परिभाषाओं में एक साम्य या समानता यह है कि दोनों में ही यह बात प्रगट की गई है कि नाट्य का लक्ष्य, मनोरंजन के अतिरिक्त भी है।

ग्रीक में नाट्य या नाटक या 'ड्रामा' में 'ट्रेजेडी' को सर्वाधिक उच्च विद्या माना गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र में भी नाट्यकला को उच्च कला माना गया है। ग्रीक नाट्यों में किसी कथा, कथानक और काव्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है। भारत में यह एक दृश्य माध्यम हे और भारत ने भी प्रस्तुत पर विशेष बल दिया है। यद्यपि अरिस्टोल ने हिंसा दृश्यों की मंच पर प्रस्तुति को त्याज्य माना है लेकिन भरत ने ऐसा नहीं कहा है। लेकिन यह अवश्य कहा है कि हिंसात्मक दृश्य को नियन्त्रण या संयम और सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए। उसका विभत्स रूप नहीं। ग्रीक नाटकों में कथानक की संगठनात्मक संरचना (यूनिटी) और समय (टाईम) के बारे में बंधनात्मक प्रावधान किया है लेकिन भारतीय नाट्य अवधारणा में इस प्रकार के बंधन नहीं है। यहाँ साधारणत: प्रभाव की एकरूपता या एकरसता पर जोर दिया गया है।

भारतीय एवं ग्रीक नाटकों की तुलना इसलिए की गई है क्योंकि नृत्य या नाट्य एवं नृत्य एक दूसरे से कहीं न कहीं सम्बद्ध या सम्बन्धित हैं। इनमें भाव और मुद्राओं का महत्त्व, समान रूप से है।

अब ग्रीक या युनान काल के बाद के पश्चिम की नृत्य परम्परा एवं भारतीय नृत्य परम्परा के बीच तुलनात्मक दृष्टि डालेंगे। पश्चिम में कला सदैव गिरजाघरों या चर्च से अलग, एक धर्मनिरपेक्ष रूप में रहीं। वे अपनी कला का रूप आदर्शवादी मानते हैं। कला को वे लोकप्रिय होने एवं जनरूचि की मानते हैं। लेकिन वास्तव में पश्चिम की कला को देखें तो अधिकांश का धरातल इन्द्रियगत है और इससे हटकर आध्यात्म या पवित्र अनुभूतियों का आनन्द अपने नृत्यों के माध्यम से शायद ही कर पाते होंगे।

विशेषकर अमेरिका में बड़े नगरों या उधोग केन्द्रों में नाट्यघरों का फैशन है जहां नृत्य भी होते हैं। वहाँ की आधुनिक जीवनशैली में लोग दिन-रात अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते

या धन एकत्रित करने में जुटे रहते हैं। ऐसे में जीवन की सरसता कम हो जाती है वे ऐसे साधनो की ओर ध्यान मोड़ लेते हैं जहां उनके रूखे जीवन में रोमांच ओर मनोरंजन का एहसास है। इसलिए वे तेज संगीत या ढोम-धड़ाके वाले संगीत के साथ एक-दूसरे के हाथों में हाथ डालकर ऐसे नृत्य करते है जो झूमने को विवश करे। कसरती या एक्रोबेटिक ऐसे नृत्य भी युवा और अन्य लोग करते हैं जिनमें नफासत या नजाकत के बजाय उछलकूद होती है। सहज अंतरगता या सरलता का ऐसे नृत्य में अभाव होता है। विभिन्न देशों के नृत्यों का नाट्यघरों में भी आयोजन होता है लेकीन उनमें विभिन्न देशों की सांस्कृतिक पहचान नहीं होती है। कहीं-कहीं अश्लीलता के निकट की अभिरुचि भी दृष्टिगोचर होती है।

भारत के श्रीरांगिनी जैसे विद्वान रदयार्ड किपलिंग के इस वाक्य से सहमत नहीं हैं कि "पूर्व, पूर्व है और पश्चिम, पश्चिम और ये दोनों कभी नहीं मिलते।" वे लिखती हैं कि पश्चिम में नृत्य कलाकारों की संख्या वृद्धिगत है और वे अनुभव करते हैं कि नृत्य कला के अपने कार्य हैं न कि मात्र कुछ समय के लिए प्राचीन मनोरंजन प्रस्तुत करना। इनके लिए पूर्व के नृत्यों में गहन अर्थ छिपा रहता है।

ये केवल इंद्रिय भावनाओं या इंद्रियों कि तुष्टि करने वाली बाह्य अभिव्यक्ति नहीं है। विभिन्न देशों या नस्लों के नृत्य, शोध के विषय हैं। दरअसल, ये नृत्य विभिन्न देशों और नस्लों की अपने आत्मा की पारदर्शी अभिव्यक्ति के माध्यम है।

इस संदर्भ में यह व्यक्त करना भी आवश्यक है कि पश्चिम का समाज, मूलतः भौतिकवादी है। पश्चिम सभ्यता कुल मिलकर उपभोगवादी सभ्यता है। इससे यह स्पष्ट है कि उपभोक्तावादी लोगों का ध्यान हमेशा अपनी शरीर या इंद्रियाओं तक सीमित सुविधाओं, सुखों और मनोरंजन तक सीमित रहते हैं। नृत्य को इसलिए वे मात्र मनोरंजन का एक साधन समझते हैं। जबकि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूलाधार आध्यत्मवाद है। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि चाहे नृत्य हो या संगीत या नाट्य, यहाँ की हर गतिविधि और कला का लक्ष्य, संस्कृति को समर्पित लोगों के अंतिम साक्ष्य, संसार की भौतिक-सुविधा में लिप्त होने से बचाकर उन्हें मुक्ति के ऐहसास की ओर ले जाने में सहायता करना है।

पश्चिम की भागदौड़ भरी ज़िंदगी के कारण उत्पन्न दबावों और तनावों से मुक्त होने और शांति की तलाश करने के लिए अनेक पाशc लोग पूर्व या भारत के नृत्यों और कला दे प्रति रुझान प्रदर्शित कर रहे हैं और वे भारत में नृत्यों का प्रशिक्षण लेने आते हैं।

इसके अलावा कई भारतीय कला-गुरु पश्चिम में जाकर भारतीय शास्त्रीय संगीत, नृत्य आदि का प्रशिक्षण दे रहे हैं। अनेक ऐसे नाम हैं जिन्होंने पश्चिम में जाकर भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार का व्यावहारिक कार्य किया है।

उन्होने यह दर्शाया है कि भारतीय संगीत और नृत्य, केवल मनोरंजन नहीं है। ये इससे कहीं अधिक गूढ अर्थ लिए हु ए और साधना के साथ इनका अभ्यास करना पड़ता है। ये मनुष्य की आत्मा तक पहुँचकर जीवन के उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति में योग देते हैं।

6.4 भारतीय नृत्य शैलियाँ

भारतीय नृत्य शैलियों का विविधतापूर्ण एक लम्बा दायरा हैं। इनको दो बड़े भागों में बाँटा गया है। मार्गी और देसी शैलियाँ, इनमें मार्गी शैली में वे नृत्य शामिल हैं जो केवल मंदिरों में देवों

को प्रसन्न करने के लिए किये जाते हैं। देसी में वे शैलियाँ हैं जो सभा-समारोह से सम्बन्ध रखती है। पूजा-अर्चना के रूप में प्रस्तुत नृत्यों के पीछे कई प्रसंग और कथाएं जुड़ी हैं।

नाट्यशास्त्र से लेकर आगे तक साहित्य और कला की दो प्रमुख धाराएं मानी गई हैं। इनमें एक मार्गी या नाट्यधर्मी और दूसरी धारा-देसी या लोकधर्मी मानी गई है। ये एक-दूसरी धारा की पूर्णता में योग देने वाली अर्थात् 'कम्पलीमेन्ट्री' धाराएं हैं। इस पर संगीत और नृत्य के लेखक एकमत हैं चाहे वे मतंगा या सारंगदेवा या बाद के लेखक हों। कापेला वात्सायन ने भी इस विचार को माना है। इन अब धारणाओं का दूसरी सदी ए.डी. से 11वीं सदी एडी. के बीच परिमार्जन हुआ। इस प्रकार शास्त्र और प्रयोग, मार्गी और देशी आदि एक दूसरे के सहायक हैं न कि अपने आप में अलग-अलग। इसको बाद में ताण्डव या लास्य के रूप में परिभाषित किया गया। ताण्डव मूलत: पुरूषों का नृत्य है और लास्य, महिलाओं का परन्तु जब पुरूष और स्त्री, एक दूसरे से प्रेम हो तो दोनों इसमें भाग ले सकते हैं।

कहा गया है कि शिवाजी ने ताण्डव नृत्य किया था। इसलिए यह पुरूषों का नृत्या माना गया है। वैसे इसमें वे सभी नृत्य सम्मिलित हैं जहाँ शक्ति और वीरता की भावना की नृत्य में अभिव्यक्ति की जाती है अर्थात् ऐसे नृत्य में पुरूष और स्त्री दोनों भाग ले सकते हैं। जब यह नृत्य बिना चेहरे पर भाव लाये किया जाता है वो इसे प्रेक्षानी ताण्डव कहते हैं। यदि चेहरे पर भाव के साथ हो तो वह इहुस्पा ताण्डव कहलाता है। कुल सात प्रकार के ताण्डव नृत्य होते हैं जैसे - अन्वना - जो प्रसन्नता प्रगट करे। संध्या - जो ताण्डव शाम को प्रस्तुत हो। उमा - जो शिव ने पार्वती के साथ नृत्य किया। गौरी- जो गौरी के साथ नृत्य किया। त्रिपुरा - जो शिव ने त्रिपुरा राक्षस के वध के बाद किया, मृत्यु पर समहरे नृत्य जो शरीर से आत्मा के मुक्त होने पर किया जाता है आदि।

'लास्य', नृत्य का मुलायम या नाजुक तत्व है। यह महिलाओं द्वारा किया जाने वाला नृत्य है जिसे शिव ने पार्वती को सिखाया और उसके पश्चात् यह कला भारत की महिलाओं तक पहुँची। लास्य का प्रमुख भाव, प्रेम है। पुरूष भी प्रेम से इसमें भाग लेते हैं। जैसे कृष्ण ने गोपियों के साथ लास्य नृत्य किया। शास्त्रीय नृत्यों के कुछ क्षेत्रीय स्वरूप भी हैं।

6.4.1 दासी अट्टम्

दासी अट्टम्, नृत्य शैली, दक्षिण में तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक से सबंधित है। इसकी जड़ें भी भारत के नाट्यशास्त्र में है। हाल ही में इस प्रकार के नृत्य को भरतनाट्यम् कहा जाने लगा है। ऐसा शायद इसलिए किया गया है क्योंकि यह देवदासियों द्वारा किया जाता रहा है जिन्हें सम्मान के साथ नहीं देखा जाता।

6.4.2 कुचिपुड़ी

दक्षिण में प्रारम्भिक रूप से नृत्य-नाटिका - शिव-लीला नाट्यम् होता था। इसके बाद शैवमत के स्थान पर वैष्णवों ने उसके स्थान पर वैष्णव मत का प्रचलन कर दिया और नृत्य का नया रूप प्रस्तुत करते हुए विष्णु के दस अवतारों की भक्ति के साथ कृष्ण की आराधना शुरू कर दी। उनकी नृत्य-नाटिका, आन्ध्रप्रदेश में कुचिपुड़ी कहलाई और तमिलनाडु में इसे भागवत मेंला नाटक, कहा गया।

6.4.3 कथकली

तुलनात्मक दृष्टि से यह लघुकथा है। इसका स्थान, केरल में है। यह आर्यों से पूर्व के नृत्यों तथा बाद में ब्राह्मणों द्वारा प्रस्तुत किये गये नृत्यों का मिलन है। 1650 में केरल में जयदेव की रचना कृष्णपदी पर आधारित नृत्य-नाट्य आरम्भ किया गया। इसमें कृष्ण-अट्टम् की नई तकनीक प्रयुक्त की गई। लेकिन कुछ परिवर्तन भी किये गये। रामा-अट्टम् ने अत्यधिक लोकप्रियता पाई। शीघ्र ही रामायण के समस्त प्रसंगों का नाट्यकरण हुआ। महाभारत, शिवपुराण, भागवतपुराण आदि पावन-ग्रन्थों के प्रसंगों पर नाट्य-रचनाऐं लिखी गई। रामा-अट्टम् का कथानक व्यापक होने के कारण इसके स्थान पर नाट्यकृति का नाम, कथकली रखा गया। इस कला-रूप को जीवन्त रखने में मलमाली कवि वालाथोल नारायण मेनन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब कथकली केरलाकला। मंडल, संगीत नाटक अकादमी एवं दिल्ली के इन्टरनेशनल सेन्टर फॉर कथकली के प्रयासों से यह सुदृढता के साथ स्थापित हो गया है।

6.4.4 मोहिनी अट्टम्

इस नृत्य की पृष्ठभूमि में विष्णु द्वारा रति रूप धारण करने का प्रसंग है। इस सन्दर्भ में मेनका ने देव विजय नृत्य किया। इसका संगीत कर्नाटक संगीत है और भाषा मलयालम्। इसमें दासी अट्टम् की कई बातों की समानता है लेकिन इसका प्रभाव उससे यहाँ कहीं अधिक है।

6.4.5 यक्षगण

यह नृत्य-नाट्य कर्नाटक में प्रचलित है। इसके लगभग 50 नाटकों का कथानक रामायण और महाभारत की कथाओं से लिये गए हैं। यह एक ग्रामीण नाट्य-कला है। इसलिए इसमें नृत्य और मेकअप आदि कथकली से सरल होते हैं। यह ग्रामीण अंचल में मंचित किया जाता है।

6.4.6 कथक

विद्वानों के अनुसार कथक का इतिहास बहुत लम्बा है जो वैदिक काल से चला आ रहा है। कथक-शब्द कथा से लिया गया है जिसका अर्थ कथा या कहानी कहना हे। प्रारम्भ में कथक का लक्ष्य आर्यों की पौराणिक गाथाओं को नृत्यों में प्रस्तुत करना था। बाद में कथक नृत्यांगनाओं आदि ने भक्ति से प्रेरित काव्य को आधार बनाया। मध्ययुग में कृष्ण और उनकी लीलाएं, कथक नृत्य का स्थायी आधार बन गये। कवि जयदेव की गीत गोविन्द की रचना के बाद 12वीं सदी में कथक नृत्य परवान चढ़ गया। संगीत की ध्रुपद शैली मूलतः धार्मिक है और 15वीं सदी से कथक से सम्बद्ध है। तानसेन की प्रतिभा से अकबर के शासनकाल में यह कला सर्वाधिक ऊँचाई पर पहुँची। 16 चुने हुए फूलों, फलों, पक्षियों और पशुओं के प्रतीकों के उपयोग के साथ पावन और आत्मा की ऊँचाईयों को छूने वाले संगीत की पृष्ठभूमि में दिये गये संगीत के साथ कथक नृत्य की प्रस्तुति की जाती है। इससे विभिन्न भावों की भाषा, संकेत, मुद्राओं की अभिव्यक्ति की जाती है। लेकिन मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही कथक शैली का भी पतन शुरू हुआ। इस समय कथक की दो शाखाएं हैं ये उन शहरों के नाम से हैं जहाँ ये शैलियाँ विकसित हुई।

ये लखनऊ और जयपुर घराने के कथक कहलाते हैं। इन शैलियों और घरानों के कथक गुरू हैं और इन शैलियों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। संगीत में भी घराने हैं। इस समय वेशभूषा आदि की दृष्टि से कथक कलाकार अपनी पसन्द के अनुसार प्रस्तुति देते हैं। ये व्यापक रूप में हिन्दू या मुगल शैली से प्रभावित कथक हो सकता है।

6.4.7 मणिपुरी नृत्य

यह कहा जाता है कि कृष्ण ने 1764 नें तत्कालीन मणिपुर के शासक भाग्यचन्द्र के सम्मुख मणिपुरी नृत्य की सही प्रकृति प्रकट की, इसलिए उसने मणिपुर की रासलीला की रचना की। यह लीला पहली बार इम्फ़ाल के गोविंद जी मंदिर में प्रदर्शित की गयी।

उन्होने तीन बसंत रास और कुंजरास रची। ईश्वरीय दृष्टि के साथ उन्होने नृत्य की विभिन्न मुद्रायें बनाई। यह ऐसा नृत्य है जिसमें शरीर या अंग संचालन और उसकी विभिन्नताओं के मौलिक तत्व मौजूद हैं। मणिपुरी नृत्य शैली की मुद्राओं की अभिव्यक्ति और भावों के शरीर के मुलायम संचालन से प्रगट करने के कारण विशेष पहचान है। यह गीतमई ग्रेस या नाजुक और लचीली तरलता, भारत के अन्य शास्त्रीय नृत्यों मे इतनी अधिक विकसित नहीं हुई है।

6.4.8 ओडिसी

ओडिसी नृत्य, भारत का सबसे पुराना नृत्य माना जाता है। तुलनात्मक रूप से इसे हाल ही में पुनः पाया या खोजा गया है लेकिन इसका संबंध दासी अट्टम और कुचीपुड़ी से माना जाता है। लेकिन शोधकर्ताओं के अनुसार इसमें विभिन्नता के कई पहलू हैं। उड़ीसा, जिसे मंदिरों की भूमि माना जाता है, वहाँ के विद्वानों ने इस नृत्य को विकसित करने में गहरा योगदान दिया है। इसके अलावा, भुवनेश्वर एवं पुरी के मंदिरों ने भी इस भक्ति-नृत्य के विकास में गहरा सहयोग दिया है जो कि कला और संस्कृति के केंद्र माने जाने हैं। यधपि ओडिसी नृत्य अब मंचों पर होने लगा है लेकिन उड़ीसा के मंदिरों के अभिनय से लिए गए हैं। नृत्य के भिन्न-भिन्न भागों के प्रदर्शन के बीच कोई विराम नहीं होता। नृत्य की शैली सिलसिलेवार होती है।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय नृत्यों का संसार अत्यंत समृद्ध है और विविधताओं से परिपूर्ण है।

इस संदर्भ मे यह देखना भी उचित होगा कि भारत में नृत्यकला के कृतिम विकास पर भी एक नजर डाली जाए।

6.5 भारतीय नृत्य के क्रमिक विकास की पृष्ठभूमि

भारत में नृत्य परंपरा का आरंभ सिंधु घाटी की सभ्यता से माना जाता है। मोहनजोदड़ों (अब पाकिस्तान में) की खुदाई के अवशेषों में नृत्य-मुद्रा में एक नृत्यांगना की मूर्ति मिली है। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में संगीत एवं नृत्य के सामूहिक कार्यक्रमों के बारे में उल्लेख है। उषा सबसे प्राचीन नृत्यांगना मानी जाती है। भारत को नृत्यों का जनक माना जाता है। नृत्य परम्परा की इस प्राचीनता के बारे में कपिला वात्सायन ने भी अपने विचार व्यक्त किए हैं।

नृत्य, भारत के समस्त जीवन मेन बसे हुए हैं चाहे विवाह हो, जन्म हो,, फसल कटाई, सामुदायिक उत्सव या कोई अन्य समारोह, यहाँ तक कि मृत्यु या अंतिम यात्रा से भी नृत्य जुड़े हुए है। सामवेद में भी भारत मेन मार्ग और देवी शैली नृत्यों के बीच के अंतर को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार यजर्वेद, ब्राह्मण और ग्रंथ सूत्रों में रीति-रिवाजों से जुड़े नृत्यों का वर्णन है। इस प्रकार वेदमंत्रों और रीति-रिवाजों के साथ सदियों से नृत्यकला का नाता रहा है। शिव को भारतीय नृत्य परम्परा का जनक या संस्थापक माना गया है जिनहोने तांडव नृत्य प्रस्तुत किया उनकी धर्मपत्नी पार्वती जिन्हें उमा, गौरी, दुर्गा या काली आदि नामों से पुर्जा जाता है, उन्होने भी लास्य-नृत्य में भाग लिया। जैसा कि लास्य नृत्य में प्रेम, प्रमुख कथानक होता है। इस नृत्य ने

कला को तरल और मुलायम स्पर्श दिये। तांडव और लास्य नृत्यों को एक दूसरे का पूरक माना जाता है। इस दोनो शैलियों ने भारतीय नृत्य परम्परा को समृद्ध किया एवं इनके विकास को गति दी।

पाणिनी की अष्टाध्यायी, अमरसिह के अमरकोष, वात्सायन के कामसूत्र, शुक्रनीतिसार आदि में नृत्य शैली की विविधता, नृत्य कलाकारों और संगीतज्ञों आदि की बारे में विभिन्न प्रकार के संकेत और वर्णन है। इसके पश्चात महाग्रन्थों जैसे वेदव्यास के महाभारत, बाल्मीकी की रामायण आदि की रचना हुई जहां संगीत और नृत्य के शास्त्रीय एवं लोकप्रिय रूपों के संदर्भ है। महाभारत में भिन्न-भिन्न आदिवासी समुदायों, शासक परिवारों एवं समाज के अन्य वर्गों के विविधतापूर्ण नृत्यों का हवाला दिया गया है।

भगवान कृष्ण और अर्जुन, इस विधा से परिचित थे। विष्णु के आठवें अवतार कृष्ण, ने गोपियों और राधा के साथ रासलीला और नृत्य किए। यह भक्तिपूर्ण आध्यात्मिक नृत्य थे। अर्जुन ने नृत्य कला, भगवान शिव, इंद्रा की अप्सराओं और क्षेत्रीय नर्तकों से सीखी। साथ ही हरिवंश पुराण में भी विष्णु के समूह नृत्य का वर्णन है। बाद में यही नृत्य, राम-लीला में परिवर्तित हुआ। रामायण में राम के अयोध्या में जन्म पर नृत्यों और संगीत के साथ महलों में उत्सव मनाने का वर्णन किया गया है। दरबारी नृत्य कलाकारों द्वारा शासीन नृत्य पेश किए जाते थे जबकि आम लोग उन नृत्यों को क्षेत्रीय बदलाओं के साथ करते थे।

लेकिन जब तक भरत के 'नाट्यशास्त्र' की चर्चा नहीं करेंगे तो सारे विवरण की विश्वसनीयता प्रमाणित नहीं हो सकेगी। भरत का नाट्यशास्त्र, नृत्य और नाट्य कला को ही समर्पित है। इसका महत्व इस सीमा तक है कि आर्यों ने इसे पांचवे वेद की संज्ञा दी है। यधपि भरतमुनी ने नाट्यमंचन, नृत्यकला की बारीकियों और नाट्य के विभिन्न पक्षों के बारे में विस्तृत जानकारी अपने रचना में प्रस्तुत की है।

यहाँ तक कि नाट्य वेषभूषा, भावों की प्रस्तुति आदि सभी पक्षों को विस्तार से समेटा है। नाट्यकला के संदर्भ में समय, स्थान, नाट्य की रचना, समीक्षा आदि अनेक संबन्धित पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

नाटक शब्द को नृत्य-नाट्य के रूप में लिया गया है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य कलाकारों के कार्यों (एक्शन) या मूवमेंट आदि के बारे में भी बताया है। इसमे नाट्य की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है - "शारीरिक भाषा या बॉडी अर्थात शरीर के संचालन के माध्यम से मनुष्य के मस्तिष्क में उत्पन्न प्रसन्नता, दुख और अन्य प्रका के भावों के विभिन्न परिवर्तनों के प्रभाव को अभिव्यक्ति देने की कला ही नाट्य है। मन के भावों को शरीर की भाषा में व्यक्त करना ही नाट्य है।"

नाट्य को नृत्य का वह तत्व मन गया है जो रस की सृष्टि करता है। रस और भाव, दोनों ही चेहरे की अभिव्यक्ति से प्रगट हटे हैं। नृत्य पर एक और माहटवापूर्ण पुस्तक है - "अभिनय दर्पण"। यह 12वीं सदी का ग्रंथ है जिसे नंदिकेश्वरा ने लिखा। नाट्य और नृत्य शास्त्र पर लिखे गए ग्रन्थों और पुस्तकों में इन कलाओं का सैद्धांतिक पक्ष धनंजय की रचना 'दादरूपका' में सामने आया। यह 10वीं सदी का है। उसी अवधि में, अभिनव गुप्ता ने 'अभिनव भारती' की रचना की। उन्होने अपने पूर्व विद्वानों 7वीं सदी के हर्ष, कला के सुप्रसिद्ध समीक्षक आनंद के कुमार स्वामी आदि के उद्धर्त किया है।

पाली साहित्य में भी इस पर 'हतमुड्डा' नामक रचना मिलती है। सारंगदेव ने अपने रचना 'संगीत रत्नाकर' में इन कलाओं की उत्पत्ति के बारे में भिन्न वर्णन किया है। अंत में जयदेव की चर्चा करना अति आवश्यक है जिन्होंने 'गीत गोविन्द' की रचना के माध्यम से एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिसका प्रभाव 12वीं सदी से लेकर वर्तमान युग तक निरन्तर कायम है। इस रचना का प्रभाव भारत के सभी क्षेत्रों तक व्यापक रूप से पड़ा। यह सभी वर्गों में लोकप्रिय रचना बन गई। वास्तव में भारतीय नृत्य और कला परम्परा की समस्त विशेषताओं से युक्त यह एक महत्त्वपूर्ण संकेतक बन गया।

इस प्रकार समृद्ध भारतीय शास्त्रीय नृत्य कला के विकास की संक्षिप्त समरेखा के बाद यह समझना भी हमारे लिए आवश्यक है कि इस्लामी आक्रमणों के बाद मुगलकाल में शास्त्रीय नृत्य शैली में क्या बदलाव आये और इस्लाम ने किस प्रकार भारतीय शास्त्री नृत्यों पर असर डाला।

6.6 भारतीय नृत्य परम्परा पर इस्लाम का प्रभाव

इस्लाम के भारत में आने और अपना साम्राज्य स्थापित करने से पूर्व भारतीय नृत्य परम्परा की पृष्ठभूमि, धार्मिक और भक्तिमय थी। भारतीय नृत्य शैलियाँ उन्हें रास नहीं आई और उन्होंने इन्हें पसन्द नहीं किया। इसलिए मुस्लिम शासकों ने फारस (पर्सिया), मध्य एवं पश्चिम एशिया से भारी संख्या में संगीतज्ञों और नृत्य कलाकारों का आयात किया। इन्होंने भारतीय संगीत और नृत्य परम्परा को प्रभावित किया।

13वीं सदी में अमीर खुसरो ने नई रागों जैसे राग यामन और कफे आदि की कल्पना की। इनका नृत्यों के साथ चलन बढ़ने लगा। समय के साथ इनमें नजदीकियाँ बढ़ी। 'कथक' शैली के साथ विदेशी शैलियाँ जुड़ने लगी। कई फारसी (पर्सियन) शब्द कथक नृत्य में आये जैसे तालिम (कथक का प्रशिक्षण), रियाज (अभ्यास), आमद (प्रदेश), सवाल-जवाब (प्रश्नोत्तर), सलामी (नमन या नमस्कार) आदि। दक्षिण भारत के दासी अट्टम् नृत्य कलाकार भी समामु (सलामी), तराना (प्रसन्नता का अभिप्राय) आदि शब्दों का उपयोग करने लगे।

मुगलों के आने से नृत्यों की आत्मा में बसी हिन्दू पौराणिक कथाएं एवं धार्मिक आस्थाएं नृत्यों से अलग होने लगी। अब राजशाही, सामाजिक एवं समसामयिक प्रसंग नृत्यों से जुड़कर अकबर को छोड़ बाकी मुगल शासकों के समय कथक भी धर्मनिरपेक्ष रास्ते पर चल पडा। नृत्य कलाकार लय या 'रिदम्' पर थिरकने लगे और सेमांचक प्रभाव पैदा करने लगे।

लेकिन अकबर के शासनकाल में कथक ने नई ऊँचाईयॉ छूना शुरू कर दिया जबकि ध्रुपद इससे सम्बन्धित हुआ और तानसेन ने नये रागों का सिलसिला आरम्भ किया। लेहरा, बार-बार दोहराये जाने वाली लय थी जो साजिन्दों या तबलावादकों और नृत्य कलाकारों के ध्यान को केन्द्रित रखने में सहायक थी। अकबर ने कलाओं के शोषण में योग दिया और काफी संख्या में नृत्य कलाकार, संगीतज्ञ, कवि आदि उसके दरबार की ओर आकृष्ट हुए कथक कलाकारों की वेशभूषा में 'चुस्त पजामा' या चूड़ीदार पजामा शामिल हुआ। साथ में 'अंगरखा' जुड़ा। समय के साथ वेशभूषाएं बदलीं लेकिन कथक में यह वेशभूषा कायम रही।

साथ ही समानान्तर नृत्य धारा भक्ति आन्दोलन से संलग्न रहते हुए चलन में रही। इसके अग्रणीय भी चैतन्य महाप्रभु थे। वे कृष्ण के भक्त और सन्त थे जो 13वीं सदी के

प्रारम्भिक काल में हुए। वे भक्ति गीतों को गाते हुए अपना कार्य करते थे। गाते-गाते भक्ति संगीत में खो जाते, नाचते और झूमते थे। उनके नृत्य की शैली अत्यन्त आकर्षक थी। उनके हजारों भक्तों ने उनकी इस आध्यात्म से पूर्ण शैली को अपनाया।

भक्ति संगीत की उस काल की दूसरी सबसे बड़ी भक्त मीरांबाई थी। वे राजपूत राजकुमारी थी जो सांसारिक और भौतिक सुख त्यागकर अपने आराध्य भगवान् कृष्ण की भक्ति में लीन हो गई। वे सार्वजनिक तौर पर भक्ति गीतों के साथ नृत्य करते हुए भक्ति-रस में डूब जाती थी। चित्तोड़गढ़ के शासक, जहाँ मीरा का विवाह हुआ, वे इस तरह एक राजकुमारी के सार्वजनिक रूप से गाने और नाचने से रूष्ट हो गये। लेकिन तानसेन और सम्राट अकबर, मीरा के प्रशंसक बन गये।

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही कथक नृत्य के दिन भी फिर गये और इसकी पुरानी शान कम होने लगी। इसका एक कारण यह भी था कि औरंगजेब संगीत और नृत्य का कट्टर दुश्मन था। उसका आदेश था कि संगीत और नृत्य को जमीन में दफना दिया जाए ताकि पवित्र कुरान पर आधारित इस्लाम के वातावरण को ये प्रदूषित न कर सके। इससे संगीत और नृत्य कलाकारों का दरबार से पलायन हो गया और वे राजपूत एवं मुस्लिम सरदारों या मुखियों की ओर उन्मुख हो गये ताकि राजशाही संरक्षण पा सकें। इस प्रकार संगीत और नृत्य की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति होना कठिन हो गया। इसके बाद में अंग्रेज आये और उन्होंने इन कलाओं को अस्त-व्यस्त पाया।

6.7 आधुनिक युग में भारतीय नृत्य परम्परा का पुनरोत्थान

जैसा कि बताया गया है कि जब भक्ति के स्थानों या मंदिरों से संगीत और नृत्य हटकर राजदरबार में पहुँच गये तो उनकी प्राचीन पहचान और चमक समाप्त हो गई। यही कारण है कि अंग्रेजों का शासन आने पर वे उपेक्षा और घृणाभाव के साथ नृत्यांगनाओं को मजाक करते हुए "नाचने वाली लडकियाँ" कहंने लगे। विक्टोरियन युग में कला सम्बन्धी गतिविधियों को अंग्रेज नैतिक रूप में हेय या नीचा समझते थे।

लेकिन भारत में सुधार आन्दोलन के जन्म के साथ सांस्कृतिक परम्पराओं को समेटने और सहजने की प्रवृति आगे बढ़ी। क्योंकि भारत की सांस्कृतिक परम्पराओ की जड़ें धर्म में थी, इसलिए इस क्षेत्र की उपलब्धियों के साथ धर्म से जुडी प्राचीन कलाओं के प्रति भी जागरूकता बढ़ी। दक्षिण में, नृत्यांगनाऐं देवों के प्रति समर्पित थी और उन्होंने प्राचीन भारतीय नृत्य परम्परा को संरक्षण देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके नृत्य, एकल नृत्य होते थे और वे मंदिरों में किये जाते थे। यह महिलाओं के नृत्य होते थे। इसके बाद दक्षिण में नायर जाति के वीर रस के नृत्य होने लगे। ये पुरूषों द्वारा किये जाते थे। उत्तर और पूर्वी भारत के नृत्यों में इन क्षेत्रों के प्रकृति से निकटता के कारण शान्त और मुलायम भावों से नृत्य होते थे। लेकिन अंग्रेजी शासन में भारतीय नृत्य कला उपेक्षित एवं हास्य का शिकार रही।

पुनर्जागरण काल में मध्यम वर्ग ने अपनी सांस्कृतिक जड़ों की पहचान करने की कोशिश की। इससे प्राचीन कलाओं और शिल्प के पुनरोत्थार की प्रक्रिया चलने लगी। अनेक कवि, लेखक, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ आदि आगे बढ़े और सांस्कृतिक पहचान कायम करने के लिए एक जन आन्दोलन बनने लगा। रविन्द्रनाथ टैगोर, कवि वेलाथोल मेनन (नायर) आदि ने भारतीय नृत्य

परम्परा के पुनरोत्थान के पुरजोर प्रयास किये। टैगोर स्वयं एक नृत्य कलाकार थे और उन्होंने क्वेलाथोल के बचपन से ही नृत्य कला का अवलोकन किया था। इसलिए ये दोनों कवि भारतीय नृत्य परम्परा के भविष्य के प्रति सजग थे।

इसी प्रकार उदय शंकर, जो स्वयं एक नृत्य-कलाकार थे, उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इस कला को समर्पित किया। उन्होंने भारतीय कला परम्परा का न केवल भारत में ही बल्कि पश्चिम में भी प्रसार किया। इसके अलावा मेनका अय्यर, रूकमणि देवी अरूण्डले, बाला सरस्वती, रामगोपाल, कलानिधि, मृणालिनी, साराभाई, राजा एवं राधा रेड्डी, वैजन्तीमाला, यामिनी कृष्णमूर्ति, प्रताप एवं पँवार, गुरू केलुचरण महापात्र, प्रकाश यदगुड्डे, गुरू कुन्जा कुरूप आदि ने भारतीय नृत्य परम्परा के प्राचीन वैभव को? पुनर्जीवित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार नृत्यों एवं संस्कृति के प्रति समर्पित इस पीढ़ी तथा नवोदित संगीतज्ञों एवं कलाकारों ने भारत की सांस्कृतिक विरासत को पुनः प्रतिष्ठित करने एवं स्थापित करने में अत्यंत सराहनीय भूमिका का निर्वाह किया।

टैगोर के शब्दों में किसी भी कला, जैसे कि नृत्य कला के प्रसार की कोई सीमा नहीं है क्योंकि ये कलाएं जीवन की अभिव्यक्ति देते है और वे ऐसी शक्तियाँ हैं जो सत्य, सौन्दर्य और महानता के रहस्यों को खोलती हैं।

6.8 महान नृत्य कलाकार जिन्होंने नृत्य परम्परा का पोषण किया

भारतीय नृत्यों को लोकप्रियता की ऊंचाइयों तक ले जाने में जिन नृत्य कलाकारों की अहम भूमिका रही उनमें उदयशंकर भी प्रमुख है। उन्होने भारतीय नृत्यों का पश्चिम में प्रसार करने और इनकी श्रेष्ठता कायम करने में पहल की। उनके देहावसान के बाद लंदन के एक समाचार-पत्र ने अपने श्रद्धा यों प्रगट की "नृत्य के इतिहास में उन्हें नृत्य के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करने के लिए सदैव याद किया जाएगा। उन्होने भारतीय नृत्यों की जो नई शैली प्रस्तुत की, वह पूर्व और पश्चिम दोनों से प्रभावित थी परंतु उसकी आत्म भारतीयता से परिपूर्ण थी। उन्होने भारतीय नृत्य शैली पर अपने प्रतिमा की गहरी छाप छोड़ी।"

उदयशंकर का जन्म बंगाली परिवार में हुआ जो जैसोर (अब बांग्लादेश) में बस गया। वे 18 वर्ष की आयु में इंग्लैंड चले गए। वहाँ रोयल कॉलेज ऑफ आर्ट में शिक्षा ग्रहण की। लंदन में आयोजित एक चेरिटी शो में नृत्यांगना पावोलोवा का उनकी ओर ध्यान गया उसके बाद वे फ्रांस गए। वहाँ कला-अध्ययन किया। उन्होने विश्व भ्रमण किया ओर भारतीय नृत्यों का प्रसार किया। 1938 में वे भारत आए। अल्मोड़ा में इंडिया कल्चरल सेंटर की स्थापना की। उन्होने अपने नृत्य-दल के साथ नए विचारों का समावेश करते हुए भारतीय नृत्य परम्परा में महत्वपूर्ण योग दिया।

भारतीय नृत्य परम्परा की समृद्धि में योग देने वाली हस्ती कमला वर्धन थी। नृत्य कला को ऊंचाइयां देने के लिए उन्हें 'भारत नाट्य रत्न से बेंगलोर की एक संस्था ने सम्मानित किया। वे मद्रास मेमन जन्मी, सिंगापूर रही और बेंगलोर मे विवाह किया। उन्होने तमिल में माया, परिमल माधविम जैसे नृत्य कम्पोज़ किए। बंगाली में भी उन्होने नृत्य का सृजन किया। भारत नाट्यम के लिए एक से स्थान स्थापित किए। उनकी प्रतिमा बहुमुखी थी और उन्होने भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा को नए आयाम दिये।

नृत्य-प्रतिभाओं में कथक शैली की नृत्यांगना रानी कर्णा का नाम भी लोकप्रिय है। वे जयपुर घराने की कलाकार है। लेकिन लखनऊ घराने के कथक में भी दखल रखती हैं। जयपुर घराने के सुंदर प्रसाद और लखनऊ घराने के ब्रिजू महाराज, केलुचरण महापात्र आदि से उन्होने शास्त्रीय नृत्यों का प्रशिक्षण किया। भारत नाट्यम और मणिपुर नृत्य भी उनके प्रिय रहे हैं। उन्होने अपना कलकता स्कूल ऑफ म्यूजिक खोला। उन्होने कथक नृत्य में कई प्रयोग किए हैं। उन्होने भारत और विदेशों मे भारतीय शास्त्रीय नृत्यों का प्रसार करने में गहरा योग दिया है।

6.9 सारांश

इस प्रकार भारत में शास्त्रीय नृत्यों की एक लंबी परम्परा चली आई है। वेदों से लेकर अब तक शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ कई दौरों से गुजरा है। शिव का तांडव, पार्वती का लास्य नृत्य आदि ने नृत्य कला को नए आयाम दिये। प्रागेतिहासिक एवं वैदिक साहित्य में भी भारतीय नृत्य कला की चर्चा की गई है।

भारतीय नृत्यों की यह विशेषता भी है कि यहाँ के लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य एक दूसरे से विपरीत होने के बजाय आपस में पूरक हैं और नृत्य कला की समृद्धि को बढाते हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार संगीत, नृत्य, अभिनय आदि सांस्कृतिक गतिविधियां धर्म और भक्ति की धारा से जुड़ी रही हैं और इनकी इस पृष्ठभूमि ने इन्हे आलौकिक अभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान की है।

13 सदी में अन्य कलाओं के साथ आदान-प्रदान हु आ। मुगलकाल में अनेक परिवर्तन हु ए। मंदिरों में नृत्य स्थानांतरित होकर राज दरबार तक पहुँचा। अंग्रेजों ने भारतीय नृत्यों का मज़ाक उड़ाया। लेकिन भारत के पुनर्जागरण ने फिर अपने जड़ें टटोलना शुरू किया और सांस्कृतिक वीरासत का पोषण करना शुरू किया। भारतीय संगीत एवं नृत्य परंपरा ने फिर करवट ली। इस संदर्भ में राजेन्द्रनाथ टैगोर, रुक्मणी अरुंडले आदि ने भी महती भूमिका निभाई।

इस प्रकार अनेक आघातों और प्रभावों को झेलते हुए भारतीय शास्त्रीय नृत्यों ने अपने आत्माँ को जीवंत रखा/पुष्ठ रखा।

भारत और पश्चिमी नृत्य शैली का अंतर यह रहा कि वहाँ का समाज, भौतिकवादी होने के कारण उनके नृत्य-संगीत भी धरातलीय हैं जबकि भारत की नृत्य इंद्रिय सुख की रचना से ऊपर उठकर मनुष्य को अलौकिक आनंद की अनुभूतियाँ देते हैं। साथ ही हमने भारतीय नृत्यों के क्रमिक विकार एवं आधुनिक योग के उन कला मर्मज्ञों एवं प्रतिभाओं की भी चर्चा की जिन्होने भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने में अहम योग दिया।

6.10 उपयोगी साहित्य

1. The Dances of India : A General Survey & Dancer's Guide-London, Tricolor Books.
2. Kapila Batayan : Tradition of Indian Folk Dave, New Dehli, Clarion Books, 1989.
3. Projesh Bannerji, Basic Concepts of Indian Dance, New Delhi, Clarion Books, 1984.

6.11 अभ्यास प्रश्न

1. नाट्य-नृत्य एवं नृत्य की परिभाषाएँ दीजिये।
2. भारतीय नृत्यों के उदभव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।
3. भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों का वर्गीकरण कीजिये।
4. भारतीय नृत्य परंपरा पर इस्लाम का क्या प्रभाव पड़ा? भारतीय एवं पश्चिमी नृत्य शैलियों का अंतर स्पष्ठ करें।

खण्ड- 3: ऐतिहासिक परिदृश्य

इकाई- 07 ऐतिहासिक इमारतें

इकाई- 08 भारतीय संग्रहालय

इकाई- 09 भारत का वन्य जीवन व अभयारण्य

इकाई- 10 भारत की हस्त कलाएं

इकाई - 7 : ऐतिहासिक इमारतें

रूपरेखा :

7.0 उदेश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 ऐतिहासिक इमारतों का वर्गिकरण

7.3 प्रमुख ऐतिहासिक इमारतें

- 7.3.1 उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक इमारतें
- 7.3.2 बिहार की ऐतिहासिक स्थल
- 7.3.3 मध्य प्रदेश ऐतिहासिक स्थान
- 7.3.4 राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतें
- 7.3.5 तमिलनाडू के ऐतिहासिक स्थल
- 7.3.6 कर्नाटक के ऐतिहासिक भवन
- 7.3.7 आन्ध्रप्रदेश की ऐतिहासिक धरोहर
- 7.3.8 महाराष्ट्र की ऐतिहासिक विरासत
- 7.3.9 उड़ीसा के मोन्यूमेंट्स
- 7.3.10 दिल्ली की ऐतिहासिक इमारतें
- 7.3.11 अन्य पर्यटक स्थल
- 7.3.12 क्षेत्रीय ऐतिहासिक परिवेश

7.4 सुविधाएं, संग्राहलय एवं अन्य

7.5 सारांश

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.7 अभ्यासर्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य

भारत ने अपनी संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं को अपने मूर्तिशिल्प, स्थापत्य एवं ऐतिहासिक इमारतों में व्यक्त किया जो अपनी जटिल कारीगरी, प्रतीकों, आस्थाओं और मान्यताओं एवं इतिहास के जीवन्त गवाह के रूप में आज भी दुनिया भर के पर्यटकों का आकर्षण बनी हुई है। इस इकाई का लक्ष्य इन इमारतों के ऐतिहासिक सन्दर्भों, उनके निर्माण की विशेषताओं और लोकप्रियता की ओर संकेत करना है। किसी भी एतिहासिक इमारत को देखकर पर्यटकों एवं दर्शकों के मन में कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं और वे जानना चाहते हैं कि किसी इमारत के इस मनमोहक रूप के पीछे क्या कहानी जुड़ी हुई है।

इस इकाई के माध्यम से आप पर्यटकों या दर्शकों की जिज्ञासा को पूर्ण करने में सक्षम हो सकेंगे। भारतीय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं यहाँ की अनेक ऐतिहासिक इमारतों के बारे में आप बहुत कुछ जानते होंगे फिर भी अपार ऐतिहासिक सम्पदा के कुछ प्रमुख भवनों पर हम दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे जो भारत भ्रमण पर आने वाले आमतौर से हर पर्यटक के आकर्षण का केन्द्र होती है।

7.1 प्रस्तावना

विश्व प्रसिद्ध समृद्धि एवं प्राचीन भारतीय विरासत की अंग इन अनेक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतों की इतनी बड़ी तादाद और इनसे जुड़े रोमांचक प्रसंगों से प्रभावित पर्यटकों की यह समस्या होती है कि यह सम्पदा इतनी विस्तृत और व्यापक है कि क्या देखें और क्या छोड़े? इस दुविधा को दूर करने के लिए यदि उन्हें आप संक्षिप्त जानकारी दे देंगे तो उन्हें अपनी पसन्द की इमारतों का चयन करने में सुविधा होगी। अनेक बार भारत आने वाले या किसी प्रदेश विशेष का भ्रमण करने वाले के पास सीमित समय होता है और इस सीमा के बावजूद वह अधिक से अधिक एतिहासिक भवनों को देखना चाहता है। ऐसी स्थिति में भी आप उसके लिए सहायक हो सकेंगे।

1971 में यूनेस्को की डा. एलमिन की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपनी सूची में भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं शीर्षस्थ 65 इमारतों का हवाला दिया है। उन्होंने प्राथमिकता के आधार पर इन इमारतों की सूची बनाने के तीन प्रमुख बिन्दु तय किये थे। पहला बिन्दु था कि इन इमारतों को शीर्षस्थ रखा जाये तो पुरातात्विक दृष्टि से सर्वाधिक पुरानी है और जहाँ इमारतों का समूह है। साथ ही जो शिल्प की दृष्टि से भी अद्‌वितीय है। दूसरा आधार यह था कि जो एतिहासिक इमारतें अपनी कला और सौन्दर्य के साथ ऐसे स्थान पर हो जहाँ पर्यटकों के पहुँचने के लिए समुचित साधन और सुलभ मार्ग हो और तीसरा बिन्दु था कि किसी स्थान का महत्त्व और महानता किस कारण से है तथा क्या कोई स्थान शोधार्थियों के लिए भी अधिक महत्त्व का है। इस प्रकार हर पर्यटक की व्यक्तिगत रूचि के अनुसार सीमित समय में अधिक से अधिक भारतीय ऐतिहासिक परिवेश से पर्यटकों का परिचय करने के लिए कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इमारतें भी सूचिबद्ध की गई थी।

7.2 ऐतिहासिक इमारतों का वर्गीकरण

भारत में इतनी प्रकार की ऐतिहासिक इमारतें हैं कि उन्हें अलग-अलग भागों में विभाजित करना एक कठिन कार्य है। फिर भी इस दिशा में कुछ बिन्दुओं को लेकर वर्गीकरण करने के प्रयास किये गये हैं। इस प्रसंग में एक तरीका तो विभिन्न क्षेत्रों की ऐतिहासिक धरोहर को लेकर अपनाया गया है। ये इमारतें प्रागैतिहासिक काल से लेकर 19वीं सदी तक की अवधि में विभिन्न कालों में निर्मित हुई थी। प्रथम श्रेणी में उन ऐतिहासिक भवनों या 'मोनूमेन्ट्स' को रखा गया है जहाँ भारी संख्या में दुनिया भर के पर्यटक भ्रमण करने और देखने आते हैं या जिनका भ्रमण करने के लिए सुविधाएं उपलब्ध होने पर काफी पर्यटकों के जाने की सम्भावनाएं हैं।

दूसरी श्रेणी की इमारतें वे मानी गई हैं जिनकी विशेषताएं प्रथम श्रेणी की इमारतें भी होती हैं या जिनकी अपेक्षाकृत महत्ता कुछ कम है। तीसरी श्रेणी उन ऐतिहासिक स्थलों की है जहाँ आकार में छोटी इमारतें हैं और जिनकी शिल्पगत विशेषताएं भी अधिक नहीं है। कई बार प्रमुख पर्यटक नगरों या स्थानों के आसपास कुछ कम महत्त्व की ऐतिहासिक इमारतें हो तो पर्यटक वहाँ जाना पसन्द करते हैं। कुछ इमारतें शोधकर्ताओं एवं बौद्धिक-जिज्ञासा रखने वाले पर्यटकों के लिए अधिक महत्त्व रखती है। बताया जाता है कि इस प्रकार किये गये तीन प्रकार के वर्गीकरण और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्‌वारा किये गये सर्वेक्षण के वर्गीकरण में संयोगवश समानता दिखाई देती है। सर्वेक्षण विभाग की ए, बी एवं सी श्रेणी की सूची में कम महत्त्व के स्थानों को अधिकांशतः शामिल नहीं किया गया है।

7.3 प्रमुख ऐतिहासिक इमारतें

भारत की सूचीबद्ध इमारतों पर ही दृष्टि डालें तो यह इतनी अधिक और समृद्ध एतिहासिक प्रसंगों को अपने हृदय में समेटे हुए हैं कि उनका विवरण सीमित सीमा में करना दुष्कर कार्य है। फिर भी, ऐसी कुछ इमारतों का उल्लेख करना उचित होगा जो कि हमारे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अपना प्रमुख स्थान रखती है।

7.3.1 उत्तरप्रदेश की ऐतिहासिक इमारतें

1. **सारनाथ -** वाराणसी से 15 कि.मी. दूर बौद्धों का पवित्र-स्थल है। यहाँ बुद्ध ने बौद्ध धर्म के उपदेश दिये थे। यहाँ 1928 में सम्पन्न खुदाई में चौथी से बारहवीं सदी के बीच बने अनेक मंदिर, स्तूप और बौद्ध विहार मिले हैं। यहाँ मौर्या, सुंग एवं गुप्त काल की अद्भुत स्थापत्य कला है। यह बौद्धों का पवित्र स्थल एवं महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल है।
2. **कुसीनगर -** यह देवरिया जिले में है। बुद्ध के परिनिर्वाण से सम्बन्धित है। हयूआंग त्वाग के अनुसार सम्राट अशोक ने यहाँ तीन स्तूप बनाये थे। बुद्ध ने इसे बौद्धों के चार पवित्र स्थानों में से एक बताया था।
3. **ताजमहल -** यदि आगरा से यात्रा शुरू करें तो ताजमहल और मुगलकालीन स्थापत्य कला से आपका परिचय होगा। शाहजहाँ ने अपनी बेगम अन्जुमन बानो की याद में इसे यमुना नदी के किनारे बनवाया और इसे मुमताज महल का नाम दिया गया था। 1630 में प्रारम्भ यह इमारत 1648 में तैयार हुई। इसका मॉडल तुर्की के इसा अफन्डी द्वारा बनाया हुआ है। सफेद संगमरमर से बनी इस इमारत पर अरबी में कुरान की आयतें लिखी गई हैं। संगमरमर पर बारीक कारीगरी का कमाल दिखाया गया है। लगता है इसमें शाहजहाँ और उसकी बेगम के प्रेम की कहानी का मर्म ढाला गया है। इसलिए चाँदनी रात में इसकी भव्य शोभा देखने और इसके स्थापत्य से रूबरू होने हजारों विदेशी-देशी पर्यटक ताजमहल के सौन्दर्य को देखने आते हैं।
4. **लालकिला -** दिल्ली से 150 कि.मी. दूर आगरा को अकबर ने अपनी राजधानी बनाया था। यमुदा के दाहिने तट पर 1574 में लालकिला बनकर तैयार हुआ।
5. **सिकंदरा -** आगरा के पास सिकंदरा मेन अकबर का मकबरा स्थित है। इसका इलाही दरवाजा प्रसिद्ध है।
6. **फतेहपुरसीकरी -** अकबर का काफी समय तक कोई लड़का नहीं हुआ। उसने शेख सलीम चिश्ती की आगरा से 30 कि.मी. दूर फतेहपुर सिकरी की दरगाह में माथा टेका। मुराद पूरी होने पर इस पवित्र स्थल पर उसने एक शहर बसाने के लिए 1974 में फतेहपुर सिकरी का निर्माण पूरा करवाया।
7. **लुम्बिनी -** यह कपिलवस्तु के पास एक गाँव है जहां गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। अशोक महान ने अपने शासन के 20वें वर्ष में यहाँ की यात्रा की। यह नोवगढ़ से गोरखपुर रेलवे लाइन पर स्थित है।

7.3.2 बिहार की ऐतिहासिक इमारतें

1. **बौद्धगया -** बिहार के गया जिले में बौद्धगया, दुनियाँ भर के बौद्ध कर्म अनुयाइयों के लिए पवित्र श्रद्धा स्थल है। यहीं लगभग 2500 साल पहले बुद्ध को बौधिवृक्ष के नीचे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हु आ था। यहाँ 170 फिट ऊंचा महाबौद्ध मंदिर है। इसके पास रतनागर है। यह आकर्षण का केंद्र है।
2. **राजगिर -** पटना जिले में राजगिर, बौद्धों का महतीर्थ है। यह प्राचीन मगध साम्राज्य की पहले राजधानी थी। स्वामी महावीर एवं भगवान बुद्ध के समय यह समृद्ध नगर था जहां उन्होने यात्रा की। सम्राट अजातशत्रु के काल में बुद्ध के निर्वाण के तुरंत बाद यहाँ पहला बुद्ध सम्मेलन हु आ।
3. **नालंदा -** राजगिर से 9 कि.मी. दूर नालंदा, शिक्षा नागरी थी जहां की बुद्ध और महावीर ने भी यात्रा की थी। कहते हैं कि यहाँ अशोक ने चेत्यों में अर्चना की। यह महायान का केंद्र भी रहा। चीनी यात्री हु वांग्तंग एवं इंसिंग ने यहाँ अध्ययन किया और वृतांत लिखा। शैक्षणिक रूप से यह सिरमौर था। यहाँ समृद्ध संग्रहालय है।
4. **सासाराम -** बिहार के शाहबाद जिले में सासाराम में शेरशाह का टोंम्ब है। स्थापत्य की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

7.3.3 मध्यप्रदेश के ऐतिहासिक स्थल

1. **खजुराहो -** 11वीं एवं 12वीं शताब्दी राजपूत वंश के चंदेला राजा मध्य भारत की महान शक्ति थे। वे महान निर्माता माने गए है। शथ्कथ के शीर्षस्त पर पहुँचने के बाद उन्होने अपनी राजधानी खजुराहों में अपने आराध्य देवों के दाई विशाल मंदिर बनवाए। यहाँ मंदिर के बाहर अप्सराओं, पशुओं, देवों और दैत्यों के विद्रोह आदिर की अनेक शिल्पगत मूर्तियाँ हैं। मनुष्य की भाय, संदेह, प्रेम, द्वेष आदि के भावों को अभिव्यादती दी गई है।

   यहाँ तीन प्रकार के मंदिर समूह है। केन्द्रीय मंदिर, चित्रगुप्त मंदिर एवं तीन जैन एवं तीन हिन्दू मंदिरों के समूह। हनुमान जी की विशाल प्रतिमा भी है। यहाँ हर मंदिर की अपने-अपने विशेषता है। यहाँ का मूर्तिशिल्प, अभिव्यक्ति की प्रदर्शिता एवं प्रतीकात्मक है। यहाँ के यौन क्रियाओं (आइरोटीक) संबंधी दृश्यों का गहरा प्रतिकात्मक एवं दार्शनिक अर्थ है और पत्थरों पर अंकित कला की बेजोड़ कृतियाँ हैं।
2. **साँची -** मौर्यकाल से मध्ययुग दे बीच बौद्धस्थल एवं प्रमुख मंदिरों, बौद्धविहारों, स्तूपों की कला की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल है। यहाँ ईसा से पूर्व पहली सदी के उत्तरार्ध का कलात्मक द्वार है। इन पर जातक कथाएँ, बुद्ध के जीवन दृश्यों और धर्मचन्द्र आदि खुदे हुए है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग का यहाँ संग्राहालय भी है। यद्यपि भोपाल होते हुए रेल से उदयगिरी गुफाऐं देखने विदिशा भी जाना सम्भव है। यहाँ पहली सदी ए. डी. का प्रारम्भिक विष्णु मंदिर भी आकर्षण का केन्द्र है। इस प्रकार साँची अत्यन्त प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का प्रमुख केन्द्र स्थल है। साँची के स्तूप जगत-प्रसिद्ध हैं।
3. **मांडु -** मध्ययुगीन भारत का माण्डु एक महत्त्वपूर्ण रूमानी स्थल है। धार के दक्षिण में 35 कि.मी. दूर यह पहाड़ी दुर्ग है। इसमें महल स्थित है। हुशांग शाह (1405-35) जो स्थानीय

शासक थे ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इस नेचुरल दुर्ग की सशक्त दीवारों के बीच कई महल, मकबरे, मरिजदें, टेंक आदि बने हुए हैं। दो मस्जिदें, मंदिरों के अवशेषों से बनी हुई है। यहाँ दिल्ली गेट और तारापुर गेट प्रसिद्ध है। यहाँ के महल और इमारतें, पर्यटको के आकर्षण के केन्द्र हैं।

7.3.4 राजस्थान की ऐतिहासिक इमारतें

1. **जयपुर और आमेर-** गुलाबी नगर अर्थात् पिंकसिटी के नाम से दुनियाँ भर में प्रसिद्ध जयपुर, राजस्थान की राजधानी है। नगरीय योजना एवं स्थापत्य की दृष्टि से इसका जवाब नहीं है। पूरा जयपुर नगर, पर्यटकों की रूचि का केन्द्र बना हुआ है जहाँ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल जैसे संग्रहालय, राजबाग पैलेस, जन्तर-मन्तर और हवामहल आदि है।

जयपुर से 12 कि.मी. दूर आमेर की वह पुरानी शानो शौकत नहीं रही लेकिन यह पुरानी जयपुर स्टेट की राजधानी रही है। आमेर के महलों में 17वीं सदी के राजस्थानी शासकों की महानता का परिचायक है। उस समय का शाही शान को देखने के लिए आज भी पर्यटकों का आगमन होता है। दुर्ग में खजाने की रक्षा होती थी।

2. **उदपुर -** उदयपुर भी पर्यटकों की रूचि का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। इसे सर्पो के शहर, पूर्व का वेनिस, झीलों की नगरी या सूर्योदय का शहर आदि की संज्ञाऐं दी जाती हैं। 14वीं सदी की कला की पारदर्शी झलक उदयपुर की झीलों में देखने को मिलता है। पिछोला झील के किनारे महाराज उदयसिंह ने इस शहर को बसाया था। उदयपुर के महल और झीलें प्रमुख आकर्षण हैं।
3. **चित्तौड़गढ़ -** चित्तौड़गढ़, राजस्थान के शौर्य और बलिदानों की कहानियों और राजपूत राजाओं की वीरता एवं वीरांगनाओं के जौहर एवं त्याग की उज्ज्वल कहानियों से परिपूर्ण एतिहासिक भाव हैं। चित्तौड़गढ़ दुर्ग 9वीं सदी का है जहाँ कालिकामाता का प्रसिद्ध मंदिर है। दुर्ग के द्वारों की सज्जा एवं डिजाईन सुन्दर है। यहाँ का विजय स्तम्भ और कीर्तिस्थल आज भी अजय शौर्य की गाथा सुनाते हैं पदमिनी के महलों में आज भी पदमिनी की कहानी शीशे में झलकती है।
4. **माउन्ट आबू -** मध्ययुग के अत्यन्त सेमांचक एवं कारीगरी से पूर्ण मंदिरों के लिए माऊन्ट आबू सिरमौर है। सफेद संगमरमर के देलवाड़ा जैन मंदिर अद्भुत हैं। यहाँ के मंदिर समूह में दो मंदिर 103 व से 1230 के बीच बने थे। यहाँ सभा मंडप एवं अन्य मंदिर परिसर भाग देखने योग्य है।
5. **रणकपुर -** पाली जिले में रणकपुर अपनी दुर्लभ स्थापत्य कला एवं सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। जैन चौमुख। मंदिर, जो कि मंदिर समूह में सर्वाधिक सुन्दर है, 1438 में बना। अपनी मुलायम कला, विशालता एवं भव्य-स्वरूप के कारण रणकपुर अद्वितीय है।
6. **ढ़ाई दिन का झौंपड़ा -** अजमेर मस्जिद जो कई हिन्दू मंदिरों के अवशेषों से बनी यह मस्जिद, ढ़ाई दिन का झौंपड़ा कहलाती है। इसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1200 एडी. में बनवाया था।

7.3.5 तमिलनाडु के ऐतिहासिक स्थल

1. **महाबलिपुरम् -** मद्रास से 50 कि.मी. दूर अधिकांश मंदिर चट्टानों को काटकर बनाये गये हैं। द्रविड़ शिल्प के प्रारम्भिक काल की इन पर छाप है। ये चार प्रकार के समूहों में बाँटे जा

सकते हैं जैसे गुफा मंदिर, तटीय मंदिर आदि। 450 ए.डी. की पल्लवी कला का भी इन पर प्रभाव है। गुफा मंदिर समूह, मूर्ति शिल्प के बेजोड़ खजाने हैं। इनमें महिशासुर मर्दनी दुर्गा, मण्डप और ऐसे रूपांकन हैं जो मनमोह लेते हैं। यहाँ छोटी चट्टानों से कटे रथ या तीर्थ पाँचों पाण्डवों युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रोपदी के नामों वाले रथ, द्रविड़कालीन शिल्प के बेहतरीन सबूत हैं।

2. **काँचीपुरम् -** मद्रास से दाहिनी दूर पल्लव नरेशों की प्राचीन राजधानी, कांचीपुरम् मंदिरों का नगर है। लगभग 1000 वर्ष पुराने ये मंदिर स्थापत्य के सौन्दर्य से अभिभूत करते हैं। कैलाशनाथ मंदिर, वैकुण्ठा पेरूमल मंदिर, लॉड वृद्धराज मंदिर, कामाख्क्षी मंदिर आदि मंदिर दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला की खूबियों का परिचय देते हैं।
3. **गंगाईकोंडा चोलापुरम् -** गंगाईकोंडाचोलापुरम् शहर जिला तंजाबुरम् में राजेन्द्र चोला-प्रथम (1012-44) ने बसाया था। यहाँ के मंदिरों की गोलाकार स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प प्रसिद्ध है।
4. **वृहदीश्वर मंदिर या राजरजिश्वर मंदिर -** वृहदीश्वर मंदिर या राजरजिश्वर मंदिर भी तन्जावुर में प्रसिद्ध है। इसे राजाराज-प्रथम ने बनवाया। यह बड़े पैमाने पर बना मंदिर कॉम्पलेक्स है। यह तमिल शिल्प का बेहतरीन नमूना है तथा स्थापत्य, मूर्तिशिल्प एवं चित्रांकन की सर्वश्रेष्ठ परम्परा का उदाहरण है।
5. **मदुरई -** यह तमिलनाडु में त्रिचापल्ली से 150 कि.मी. दूर है। 14वीं सदी में यह पाण्ड्या शासकों की राजधानी थी। फिर 16वीं सदी तक नायकों का शासन रहा। यहाँ के मीनाक्षी मंदिर की शोभा अद्वितीय है। यह वह बड़ा मंदिर है जिसका जीर्णोद्धार हुआ है।
6. **फोर्ट सेन्ट जॉर्ज -** अंग्रेजों के कलकत्ता में आने के 50 साल पहले चन्द्रागिरी के राज्य ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यापार के लिए लीज पर जमीन दी थी। फोर्ट सेन्ट जॉर्ज 1635 में तैयार हुआ।

7.3.6 कर्नाटक के ऐतिहासिक भवन

1. **हाम्पी -** बेलारी जिले में मध्यकाल का भव्य हिन्दू नगर था। यहाँ विजयनगर काल के अनेक मंदिर हैं। इन 16वीं सदी के अधिकांश मंदिरों में पम्पापति एवं वीरूपक्षा आदि अनेक मंदिर स्थापत्य के बेजोड़ उदाहरण हैं। हाजरा रामा मंदिर सबसे पहले कृष्णदेव राय के समय में बना। विट्ठल मंदिर का विशाल परिसर भी मंदिर स्थापत्य का समृद्ध खजाना है।
2. **अहोले -** बीजापुर जिले के दो गुफा-मंदिर अर्थात् रावलागुड़ी (नगर-700 ए.डी.) शिव मंदिर हैं। जैन गुफा-मंदिर इसके बाद चालुक्या वंश के समय के हैं। ये भी अति प्राचीन विशेषताओं से पूर्ण हैं।
3. **बादामी -** प्रारम्भिक चालुक्यों ने बादामी (बीजापुर जिले) की सेन्डस्टोन चट्टानों से गुफा-मंदिर बनाना ठीक समझा और उन पर कारीगरी के साथ शिल्प से पूर्ण मंदिर बनवाये। सर्वप्रथम गुफा विष्णु को समर्पित है। यह मंदिर श्रृंखला में सबसे लम्बी है। यह 578 ए.डी. में मंगलेश नामक शासक ने बनवाया। इसके बाद 2 छोटी गुफाऐं भी विष्णु को समर्पित है। पहाड़ी पर जैन गुफा-मंदिर एक सदी बाद बने।

4. **बैलूर -** यह मैसूर के हसन जिले में है। यहाँ होयमाला वंश के विष्णुवर्द्धन ने अपने ईष्टदेव विजय नारायण का 1117 ए.डी. में भव्य मंदिर बनवाया। पूरे मंदिरों के परिसर में यह प्रमुख मंदिर है।
5. **हेकबीद -** हसन जिले के हेलबीद में 1150 ए.डी. में बना होमसालेश्वर मंदिर एक स्थान पर बना दो मंदिरों को एक स्थल पर समूह है। यह होयसाला कला एवं शिल्प का नायाब नमूना है।
6. **सोमनाशपुर -** यहाँ का 1368 में बना होमसाला श्रृंखला के उत्तरार्द्ध के मंदिरों का यह शिल्प एवं कारीगरी का उत्कृष्ठतम उदाहरण है और इसके कारण सोमनाथपुर प्रसिद्ध है।
7. **श्रवण बेलगोला -** यह मैसूर से 103 कि.मी. दूर है। यह जैन सन्त गोमतेश्वर की विशाल प्रतिमा के कारण प्रसिद्ध है। यह 57 फीट ऊँची प्रतिमा एक हजार साल से तीर्थयात्रियों को आकर्षित कर रही है।

यह विशाल प्रतिमा इन्द्रगिरि की दो पहाड़ियों पर अवस्थित है जहाँ कई छोटी प्रतिमाऐं भी हैं। यहाँ कई भव्य मंदिर हैं। यहाँ लाखों जैन तीर्थयात्रियों का मेला लगता है।

8. **आलमपुर -** महबूब नगर जिले के आलमपुर में 8वीं सदी के नौ मंदिर हैं। यहाँ का स्थापत्य और मूर्तिशिल्प भी बेजोड़ है।

7.3.7 आन्ध्रप्रदेश की ऐतिहासिक धरोहर

1. **नागार्जुन कोंडा -** यह इकशावाकु राजाओं की पहली से तीसरी सदी तक राजधानी थी। यह स्तूपों के विशेष प्रकार के कारण प्रसिद्ध है। मूल स्तूप का इकशावाकु राजकुमारी चामती ने पुनरोद्धार तीसरी सदी में' करवाया था। यहाँ खुदाई में कई विहार और चैत्या सभागार मिले हैं। ये प्रागैतिहासिक काल का है। इसका मूल स्थल नागार्जुन बाँध के जलभराव में समा गया हे। लेकिन महत्त्वपूर्ण इमारतों या स्मारकों को उठाकर नागार्जुन पर्वत पर स्थानान्तरित कर दिया गया है। यहाँ विशेष रूप से तैयार संग्रहालय है। पर्यटक यहाँ मोटरबोट से पहुँचते हैं।
2. **हैदराबाद -** यह भारत का 5वाॅ बड़ा नगर है जो इस समय आन्ध्रप्रदेश की राजधानी है और किसी समय यहाँ निजाम शासन करते थे। 16वीं सदी के अन्त में मुस्लिम सुस्तानों ने इसे संस्कृति एवं शिक्षा का केन्द्र बनाया था। यहाँ की चारमीनार, निजाम के महल, मस्जिद और सालारजंग संग्रहालय प्रसिद्ध है।

7.3.8 महाराष्ट्र की ऐतिहासिक सम्पदा

1. **अजन्ता -** भारत की समस्त प्राचीन एवं एतिहासिक महत्त्व के स्थानों में अजन्ता गाँव के पास की चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाओं का भित्ति-चित्रण के लिए विशेष महत्त्व है। ये गुफाएं औरंगाबाद से 105 कि.मी. दूर है। यहाँ अधूरी गुफाओं सहित 30 गुफाऐं हैं जिनमें पाँच चैत्यागृह और शेष विहार हैं। ये दूसरी सदी बी.सी. से 7वीं सदी ए.डी. में बनी गुफाएं दो चरणों में बनाई गई और दोनों के बीच 4 सदी का अन्तर था। चट्टानों में बना मूर्तिशिल्प 5वीं और 6वीं सदी का है। यह स्थल चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाओं के विकास का अध्ययन करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 9वीं एवं 10वीं गुफा के चित्र पहली या दूसरी शताब्दि बी.सी. के बने हुए हैं। शेष 5वीं से 8वीं सदी के बीच बनाये गये थे।

गुफाओं की चित्राकृतियाँ धार्मिक स्वर लिए हुए हैं। ये बुद्ध के जीवन, पूर्व जन्मों अर्थात् जातक कथाओं, बोधिसत्व आदि से सम्बन्धित है। साथ ही तत्कालीन महलों, राजदरबारों, नगरों, ग्रामीण जीवन, वेशभूषा, आभूषणों, संगीत, वाद्यों, बर्तनों आदि का विविधतापूर्ण चित्र भी इनमें प्रस्तुत किया गया है। यक्ष, किन्नर, देवों के नृत्य, मंदिरों, महलों, बौद्ध विहारों आदि का अंकन है। ये गुफाएं स्थापत्य कला के विद्यार्थियों के लिए अनूठा स्थल है।

2. **एलोरा -** औरंगाबाद के समीप एलोरा में चट्टानें काटकर बनाये गये बौद्ध, जैन एवं हिन्दु मंदिर हैं। खुदाई में प्राप्त बौद्ध धर्म सम्बन्धी अवशेषों को तीन भागों में बाँट सकते हैं। गुफा संख्या 1, 2, 3 और 5 ए.डी. 400 के लगभग की है। गुफा 4, 6, 10 को छठी, सातवीं सदी का माना गया है। गुफा 11 एवं 12 को विशेष प्रकार का माना गया है। गुफा 4 दो मंजिली है। इस प्रकार कोई दो मंजिली कोई तीन मंजिली है। किसी में सभागार या चैत्य हैं तो कहीं सभागार आदि। मूर्तिशिल्प भी यहाँ कमाल का है।
3. **एलिफेन्टा -** यह बम्बई का एक छोटा टापू है। यहाँ भी गुफाएं विविध प्रकार की हैं और मूर्तिशिल्प भी भव्य हैं। मंडप, अर्द्धमंडप आदि कई विशेष प्रकार के मंदिर हैं जिनमें दुर्गा मंदिर भी सुन्दर है।
4. **कार्ले और भाजा -** पूना जिले में स्थित कार्ले और भाजा भी बौद्धकालीन गुफाओं की श्रेणी में अद्भुत हैं। 200 बी.सी से 200 ए.डी. के बीच तैयार किया गया आलीशान चैत्या हीनयान बौद्ध की चट्टानों को काटकर बनाई गई सबसे बड़ी गुफा है। यहाँ भी स्तूप आदि अति सुन्दर हैं।

7.3.9 उड़ीसा का एतिहासिक सौन्दर्य

1. **कोणार्क -** पूरी जिले में समुद्र तट पर खड़ा सूर्य मंदिर भी अत्यन्त भव्य है। यह मंदिर नरसिंह देवा प्रथम ने 13वीं सदी ए.डी. में बनवाया था। यह 12 जोड़ों वाले और सात घोड़ों द्वारा संचालित एक विशाल रथ पर अवस्थित अपनी तरह का एक अद्वितीय मंदिर है। जिस कारीगरी, अनुपात और कल्पना से यह मंदिर तैयार किया है, वह भारतीय प्राचीन संस्कृति एवं इतिहास की उत्कृष्टता प्रगट करता है।
2. **भुवनेश्वर -** उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर अपने मंदिरों के शिल्प और सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। इनमें परशुरामेश्वर, भुवनेश्वर, गौरी आदि मंदिर प्रारम्भिक समय के हैं तो राजधानी, लिंगेश्वर, अनन्त-वासुदेवन् आदि बाद के समय के हैं। लिंगराज मंदिर 11वीं सदी में उस समय का परिचय देता है जबकि भुवनेश्वर में मंदिर निर्माण स्थापत्य और कला अपनी पराकाष्ठा पर थी। इन मंदिरों के मोहक वातावरण के साथ वहाँ का संग्रहालय भी अति समृद्ध है।

भुवनेश्वर से पर्यटकों के लिए कोणार्क, पुरी, उदयगिरी, खानगिरी तथा 2 सदी बी.सी. की बौद्ध गुफाओं, हीरापुर के चौंसठ योगिनी मंदिर, शिशुपाल गढ के अवशेष आदि एतिहासिक स्थलों का भ्रमण करना भी सम्भव है।

3. **उदयगिरी एवं खानगिरी -** भुवनेश्वर से 10 कि.मी. दक्षिण में स्थित उदयगिरी एवं खानगिरी की पहाड़ियों पर उन गुफाओं को देखा जा सकता है जहाँ ईसा से पूर्व 2 सदी में बौद्धभिक्षुओं का डेरा था। स्वर्ग, हाथी, विजय, टाईगर, रानी आदि नामों की इन गुफाओं में तत्कालीन स्थापत्य एवं प्राचीन संस्कृति के प्रमाणों से साक्षात्कार किया जा सकता है। शिल्प की दृष्टि

से रानी गुफा एवं गणेश गुफा अत्यन्त रोचक हैं। समीप ही अनन्त गुफाएं भी खानगिरी की घनी पर्वत श्रृंखलाओं में अनेक विशेषताएं लिए हुए है।

7.3.10 गुजरात की ऐतिहासिक धरोहर

1. **मोथेरा -** यहाँ मेहसाना जिले में गुजरात का प्रसिद्ध सूर्य मंदिर है। यह 10वीं सदी का सोलंकी शासनकाल का भव्य एतिहासिक स्थल है। यद्यपि यह ध्वंस अवस्था में है लेकिन इसके अवशेष ही इसके शिल्प और सौन्दर्य की कहानी कहने में सक्षम हैं।

7.3.11 दिल्ली के ऐतिहासिक स्थल

1. **लालकिला -** दिल्ली रेलवे जंक्शन के पास स्थित लालकिला शाहजहाँ ने बनवाया था। 1647 में इसका निर्माण मुगलों ने अपनी शक्ति के प्रतीक किले का निर्माण लाल पत्थरों से करवाया था और पत्थरों के रंग पर ही इसका नामकरण किया गया। इसका लाहौर गेट अपने विशाल रूप में चाँदनी चौक की तरफ खुलता है। इसमें दीवाने खास, रंग महल, मोती महल आदि कई महल बने हैं। यह मुगल स्थापत्य का नमूना है।
2. **कुतुबमीनार -** यह दिल्ली के दक्षिण की ओर मेहरोली मार्ग पर है। यह कुतुबुद्दीन ऐबक ने 12 सदी में बनवाई। यह एक तरह का प्रार्थना या अजान के लिए बनाया गया टॉवर है। उसके बाद 13वीं से 15वीं सदी के बीच फिरोजशाह तुगलक एवं सिकन्दर लोदी ने इसकी मरम्मत करवाई। इसके पास ही हिन्दू व जैन मंदिरों के स्थान पर कुतुबुद्दीन ने मस्जिद बनवाई। इसका स्थापत्य तो हिन्दू शैली का है लेकिन इसका प्रारूप पर्सियन है।
3. **हुमायूँ का मकबरा -** यह मुगल स्थापत्य के इतिहास का एक उदाहरण है जो बगीचे के रूप में मकबरा बनाने के सिलसिले का प्रारम्भ है। इसे हुमायूँ की बेगम हाजी ने 1565 में बनवाया। यह पुराना किला दक्षिण में मथुरा रोड़ पर है।
4. **जामा मस्जिद -** यह दुनिया की सबसे बड़ी और पुरानी मस्जिद है। यहाँ आज भी नमाज अदा की जाती है। लालकिले के सामने बनी यह मस्जिद 1658 में निर्मित की गई थी।
5. **पुराना किला -** महाभारत में वर्णित इन्द्रप्रस्थ नगरी के टीले पर पुराना किला स्थित है। इसके निर्माण में शेरशाह सूरी एवं हुमायूँ दोनों का ही हाथ रहा है। हुमायूँ ने इसकी नींव रखी और शेरशाह सूरी ने उस पर किला बनवाया। हुमायूँ ने यहाँ एक पुस्तकालय बनवाया और उसी की सीढ़ियों पर फिसलने से उसकी मृत्यु हुई।
6. **जन्तर- मन्तर -** संसद के समीप बने जन्तर-मन्तर को जयपुर के शासक जयसिंह ने 16वीं सदी में बनवाया। वे गणितज्ञ, ज्योतिष के विद्वान् थे। यह जयपुर में बने जन्तर-मन्तर की तरह ही ज्योतिष विद्या के सन्दर्भ में एक अद्वितीय स्थान है।
7. **कोटला फिरोजशाह -** यह चारदीवारी वाली एक नगरी फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने बनवाई। इसकी कुछ इमारतों जैसे जामा-मस्जिद, स्वलव आदि के अवशेष बचे है।

7.3.12 अन्य ऐतिहासिक स्थान

1. **दार्जलिंग -** हिमालय के निचले भाग में यह पहाड़ी पर बसा नगर पश्चिमी बंगाल का पहाड़ी पर्यटन स्थल है जो कलकत्ता से 370 मील उत्तर में है। यह समुद्र तल से 7110 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ से हिमालय के सौन्दर्य के दर्शन किये जा सकते हैं। यहाँ बौद्ध

विहार आदि के अलावा लोकजीवन की झलक देखी जा सकती है। यहाँ के टाईगर हिल से सूर्योदय का नजारा सेमांचक होता है। यहाँ से कंचनजंगा का दृश्य देखा जा सकता है लेकिन हिमालय की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट की झलक तो किसी साफ मौसम वाले दिन ही देखना सम्भव है। यहाँ और भी कई महत्त्वपूर्ण स्थल हैं।

2. **पुरी -** भुवनेश्वर से 39 मील दूर पुरी को उड़ीसा के समुद्र तट पर स्थित एक भव्य एवं पावन नगरी माना जाता है। यह भारत के हिन्दुओं के चारधामों में से एक श्रद्धास्थल है। उत्तर में बद्रीकेदारनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पश्चिम में द्वारिका है तो पुरी चौथा धाम है। यहाँ भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा के समय जून में देशभर के श्रद्धालुओं का मेला लग जाता है।
3. **चिनुका झील -** यह भुवनेश्वर से 60 कि.मी. दूर है। यह महत्त्वपूर्ण पक्षी विहार है जो अपने सौन्दर्य से अभिभूत कर देती है।
4. **हैदराबाद-सिकन्दराबाद -** ये दोनों जुड़वाँ नगर हैं जिन्हें हुसैन सागर झील अलग करती है। आन्ध्रप्रदेश की यह राजधानी, मुस्लिम संस्कृति और शिक्षा का केन्द्र रही है और देश का पाँचवा सबसे बड़ा नगर है। मुसी नदी के किनारे बसा यह शहर दुनियाँ के सबसे बड़े धनी निजाम की भी राजधानी था। यहाँ चार मिनार, सालारजंग संग्रहालय, यहाँ के महल और प्राचीन कला के खजाने, देखने योग्य हैं। गोलकुण्डा दुर्ग भी नजदीक है।

7.3.13 क्षेत्रीय ऐतिहासिक परिवेश

(अ) उत्तरी क्षेत्र - उत्तरी क्षेत्र के प्रमुख स्थानों में प्रमुख पर्यटक स्थल हैं जो अपने इतिहास, सौन्दर्य एवं विशेषताओं के कारण पर्यटकों को आकर्षित करने की महत्त्वपूर्ण क्षमता रखते हैं। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं-

1. **दिल्ली -** यह भारत की राजधानी है। प्राचीनकाल में इस राजधानी ने लगभग सात स्थानों को बदला है। दिल्ली नगर को शाहजहाँ ने बनवाया। यह पुरानी दिल्ली है जबकि नई दिल्ली को 1931 में अंग्रेजों ने बसवाया। पुरानी दिल्ली में पुराना रंग-रूप माहौल मिलेगा तो नई दिल्ली में जन्तर-मन्तर, हुमायूँ मकबरा, राष्ट्रपति भवन, संसद आदि के साथ आधुनिकता की झलक मिलती है।
2. **चण्डीगढ़ -** यह केन्द्र शासित है तथा हरियाणा और पंजाब की राजधानी है। यह तो कार्बुजिपर एवं मेक्सवेल फ्राई द्वारा डिजाईन किया गया आधुनिक शिल्प वाला शहर है।
3. **अमृतसर -** पंजाब में यह सिक्खों की धार्मिक नगरी है। 1577 में इसका निर्माण पवित्र तालाब के चारों ओर किया गया। तालाब के बीच पवित्र स्वर्ण मंदिर स्थित है।
4. **अल्मोड़ा -** काठ गोदाम रेल्वे स्टेशन से 83 मील दूर यह कुमाऊँ पहाड़ियों का प्रमुख नगर है। 5600 फीट ऊँचाई पर स्थित यह नगर राजा कल्याण चन्द्र ने 400 साल पूर्व बसवाया था।
5. **पिंजारी ग्लेसियर -** ये अल्मोड़ा से 75 मील दूर है। मई-जून या सितम्बर-अक्टूबर में यहाँ का भ्रमण उपयुक्त होता है। कुमाऊँ पहाड़ियों के रानी खेत और नैनीताल अति सुन्दर स्थल हैं।
6. **नैनीताल -** यह पहाड़ी पर्यटन स्थल है। इसके चारों और सुन्दर पहाड़ी दृश्य हैं। यहाँ अनेक सुन्दर झीलें हैं जिनमें नैनी झील भी मोहक है।
7. **कश्मीर -** कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहा गया है क्योंकि प्रकृति ने इसकी वादियों को हरा-भरा बनाया है। पर्वतश्रेणियाँ, झरनों, पशु-पक्षियों आदि के साथ यह एक जीवन्त वातावरण की

रचना करता है। इस कारण पर्यटक यहाँ की प्रकृति, झीलों और वादियों में खो जाता है और दुनियाँ भर के पर्यटक कश्मीर आते हैं। डल झील में शिकारे पर भ्रमण का आनन्द ही कुछ ओर है। यहाँ की कलाकृतियों, शॉल, कसीदाकारी कई चीजें आकर्षक हैं।

8. **श्रीनगर -** यह भी झीलों, बाग-बगीचों, पहाड़ियों आदि के साथ झेलम के किनारे बनी एतिहासिक इमारतों का सुन्दर नगर है। यह प्राचीन नगर है जिसे सम्राट अशोक ने 3 सदी बी.सी. में बनाया। झेलम इसके बीच से गुजरती है।

9. **गुलमर्ग -** यह श्रीनगर से 29 मील दूर हैं जो गोल्फ कोर्ट के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ खच्चरों एवं जीप से जाना सम्मव है। यह सर्दियों का स्नो-स्पॉट अर्थात् बर्फ-स्थल या केन्द्र हैं। पिकनिक के लिए भी यहाँ का वातावरण सुहाना है।

10. **पहलगाँव -** यह श्रीनगर से 97 कि.मी. दूर है। यह अपने खूबसूरत झरनों, नालों और दृश्यों से मन मोह लेता है। यह अमरनाथ और शेषनाग की यात्रा का आधार पड़ाव है।

11. **इलाहाबाद -** जिसे प्रयाग भी कहते हैं। यह पावन नगरी गंगा-यमुना और अदृश्य सरस्वती नदी के संगम पर स्थित है। हिन्दुओं के लिए संगम में स्नान करना महापुण्य माना जाता है। यहाँ हर 12 साल में एक बार महाकुम्भ का मेला लगता है जिसमें देश के साधु-संत और श्रृद्धालु लाखों की संख्या में भाग लेते हैं और महाकुम्भ स्नान करते हैं। वहीं हर 6 साल बाद अर्द्धकुम्भ होता है। यहाँ से 65 कि.मी. दूर कोसाम्बी है जो प्राचीन राजधानी थी। यहाँ प्राचीन अवशेष, खुदाई में मिले हैं।

12. **बनारस -** जिसे वाराणसी कहा जाता है। यह भी हजार वर्ष से अधिक समय से भारतीयों के लिए, श्रद्धास्थल रहा है। यहाँ हजारों वर्षों से लोग आध्यात्म साधना के लिए गंगा किनारे आते रहे हैं। यह दुनियाँ का सबसे बड़ा जीवन्त (लिविंग) प्राचीन नगर है। यहाँ 1500 से भी अधिक मंदिर हैं। यह भी सैलानियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है।

कई अवशेषों के साथ बौद्धों की आस्था का केन्द्र, सारनाथ, यहाँ से लगभग 6 कि.मी. दूर है। यहाँ बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था।

13. **जयपुर -** यह नगर, राजस्थान की राजधानी है जिसकी नींव 18वीं सदी में ज्योतिष के विद्वान् एवं जयपुर के नरेश जयसिंह ने रखी थी। यह दुनियाँ का सबसे उत्तम सुनियोजित नगर है। इस गुलाबी नगर को देखकर प्रसिद्ध यात्री मेक्स लर्नर के उद्गार थे कि 'मैंने जयपुर को देखा तो लगा कि अब मर भी जाऊँ तो कोई बात नहीं।" अर्थात् यह नगर किसी को भी अपनी सुन्दरता से मोहित कर देता है। यह सपनों का शहर लगता है। यहाँ हवामहल, सिटी पैलेस, संग्रहालय आदि अनेक दर्शनीय स्थल हैं। यहाँ की दस्तकारी, हस्तशिल्प, हीरे-जवाहरात और आभूषण प्रसिद्ध हैं।

(ब) दक्षिणी क्षेत्र

1. **मद्रास -** यह भी प्राचीन सभ्यता वाला नगर है। यद्यपि यह अब आधुनिक रंग में रंग गया है लेकिन यह भारत के खूबसूरत महानगरों में से एक है। यहाँ बन्दरगाह भी हैं। अनेक विदेशी आक्रमणकारी मद्रास तक नहीं पहुँच पाये, इसलिए इसकी संस्कृति सुरक्षित है। यहाँ के मंदिर, संगीत, नृत्य आदि कलाओं का प्राचीन स्वरूप भी सुरक्षित है। स्थापत्य, शिल्प एवं कला की दृष्टि से यह अत्यन्त समृद्ध है।

2. **कन्याकुमारी -** कुमारी अर्थात् पार्वती के नाम से प्रसिद्ध कन्याकुमारी या केपकोमोरिन तमिलनाडु का ऐसा स्थल है जहाँ अरब सागर और बंगाल की खाड़ी हिन्द महासागर में मिलते हैं। किवदन्ती है कि कन्याकुमारी की चट्टान जहाँ खड़ी है, वहाँ हिमालय की पुत्री पार्वती का शिव से विवाह हुआ था। यहीं वो दो चट्टानें भी हैं जहाँ स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका जाने से पूर्व ध्यान किया था अर्थात् ध्यानमग्न हुए थे। उनका स्मारक भी आकर्षण का केन्द्र है।
3. **ऊटकंमड -** ऊटी या ऊटकंमड, तमिलनाडु की पहाड़ी पर्यटन-स्थल है। यह समुद्रतल से 7500 फीट की ऊँचाई पर है। इसके चारों ओर चार बड़े पर्वत हैं। यहाँ 1823 में बनाई गई सुन्दर झील हैं जहाँ पर्यटक भ्रमण करते हैं। यहाँ टेरेस बोटेनिकल गार्डन है। यह काफी प्लान्टेशन के लिए भी प्रसिद्ध है।
4. **कोडाल केनाल -** यह भी पालमी पहाड़ियों पर बसा पर्वतीय पर्यटक स्थल है। यह 7000 फीट की ऊँचाई पर है। यह विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधन हैं जैसे पहाड़ी पर चढ़ने, बोटिंग आदि। यहाँ हरियाली और झूलों की शोभा देखते ही बनती है। यहाँ भी सुन्दर झील बनाई हुई है।
5. **कोचिन -** पश्चिमी समुद्र तट पर यह बन्दरगाह है। यहाँ सुन्दर द्वीप, महल, चर्च आदि बने हैं। यहाँ से एलेबी एवं कुलोन जाना सम्भव है। यहाँ पुर्तगाली शैली के गिरिजाघर और हरियाली का मोहक नजारा देखा जा सकता है।
6. **त्रिवेन्द्रम् -** यह केरल की समुद्री किनारे की राजधानी है। इसका निर्माण पहाड़ी पर बने रोम जैसा है। यहाँ पदमनामा स्वामी नामक विष्णु मंदिर है।
7. **मैसूर -** यह पुराना नगर है जो अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ दरिया-दिल महल और वृन्दावन गार्डन देखने लायक है।
8. **श्रीरंगापट्टनम्** - यहाँ विष्णु या रंगनाथजी का विशाल मंदिर है। यह मैसूर से 10 मील दूर कावेरी नदी पर बसा एक द्वीप नगर है। यहाँ हिन्दू पवित्र नदी में स्नान करते है। यह टीपू सुल्तान की राजधानी रहा है। यहाँ टीपू का महल है।

(स) पश्चिमी क्षेत्र

1. **बम्बई -** यह भारत की आर्थिक राजधानी कहलाता है। यहाँ समुद्रतट पर मेरिन ड्राईव, गेटवे ऑफ इन्डिया, मालाबार हिल्स् आदि देखने योग्य है। यह फिल्म निर्माण का केन्द्र भी है।
2. **औरंगाबाद -** महाराष्ट्र के इस नगर में औरंगजेब ने अपनी बीबी ताज बीबी का मकबरा बनवाया। इसके करीब ही दौलताबाद है। यह 14वीं सदी में बना। इसके नजदीक ही बौद्ध गुफाएं भी हैं।
3. **गोवा -** गोवा अपने सौन्दर्य एवं प्राकृतिक परिवेश के कारण पर्यटकों को आकर्षित करता है। यहाँ के समुद्री बिच प्रसिद्ध हैं। यहाँ पुर्तगाली शासन रहा जिनकी संस्कृति की छाप वे छोड़ गये हैं। गोवा में गिरिजाघर भी देखने योग्य है। पुर्तगालियों द्वारा बनाया गया 18वीं सदी का सेन्ट जेवियर भी प्रसिद्ध है। सवा घन्टे में वायुयान से बम्बई से गोवा पहुँचना सम्भव है।

7.4 सुविधाएं, संग्रहालय एवं अन्य

देश के प्रमुख पर्यटन-स्थलों के महत्त्व को देखते हुए पर्यटकों के ठहरने के लिए पर्यटन-बंगलें, होटल्स् आदि सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर खोले गये हैं लेकिन अनेक ऐसे स्थल भी

हैं जहाँ पर्यटकों का आवागमन कम होता है, वहाँ इन सुविधाओं की कमी देखी जाती है। इन स्थानों तक पहुँचने के लिए अच्छी सड़कें, यातायात के साधनों आदि की आवश्यकता होती है। साथ ही जिन नगरों का पर्यटन की दृष्टि से महत्व है, उनकी सफाई एवं पर्यावरण पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इन बिन्दुओं पर काफी ध्यान दिया गया है। लेकिन अधिकांश मामलों में इनका प्रबंधन, सैलानियों की कठिनाईयों को समझने में पूरी तरह सफल नहीं है क्योंकि पर्यटन उद्योग के लोग सरकारी नियमों और कायदों की सीमा का ध्यान नहीं रखते हैं।

इस बात को समझना चाहिए कि दूर-दराज से सैलानी स्मारकों, महलों, संग्रहालयों आदि पर्यटन आकर्षण के केन्द्रों पर हजारों कि.मी. से चलकर आते हैं। उनकी सुविधाओं का ध्यान रखकर या उन्हें अधिकाधिक सुविधाएं देकर कई देशों ने अपने यहाँ पर्यटन-उद्योग का विकास किया है। इससे अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार भी बढ़ता है और टेक्सी चालकों, होटल मालिकों आदि कई लोगों का व्यवसाय भी बढ़ता है।

दिनों दिन यह भी अनुभव किया जाने लगा है कि पर्यटकों को बेहतर गाईड सेवाएं देने के लिए प्रशिक्षित गाईड होने चाहिए। साथ ही विदेशी पर्यटकों के साथ अनेक लोगों द्वारा की जाने वाली ठगी को रोकने के लिए पर्यटन पुलिस भी होना जरूरी है।

देश के प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों के बारे में संक्षिप्त रूप में फोल्डर्स एवं पर्यटन साहित्य के द्वारा जानकारी देने की व्यवस्था होनी चाहिए अन्यथा पर्यटकों की जिज्ञासा पूर्ण रूप से पूरी नहीं होगी। आज के युग में तो इलेक्ट्रोनिक एवं दृश्य-श्रव्य माध्यमों का भी इस दिशा में प्रबंध करना सम्भव है।

प्रमुख पर्यटन स्थलों के पास बुकस्टॉल हों जहाँ पर्यटन-स्थल के बारे में सम्पूर्ण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सन्दर्भों के साथ पर्यटन-स्थल विशेष का सम्पूर्ण विवरण उपलब्ध कराया जा सके। साथ ही इन स्थलों के ट्रांसप्रेरेन्सी आदि की व्यवस्था हो ताकि जो पर्यटक इनके बारे में अपने परिजनों या अपने देश में स्मृतियाँ ले जाना चाहें, उन्हें सुविधा हो। पर्यटन सम्बन्धी पिक्चर कार्ड एवं साहित्य के माध्यम से न केवल पर्यटकों की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है बल्कि इससे देश के पर्यटन के प्रचार-प्रसार में भी भारी मदद मिलती है। इस दिशा में निजी स्तर पर प्रोत्साहन देकर गुणवत्तापूर्ण पर्यटन-सामग्री तैयार करवाई जानी चाहिए। इस प्रकार का साहित्य प्रमुख क्षेत्रीय एवं विदेशी भाषाओं में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

संग्रहालय

भारत के अनेक पर्यटन एवं संस्कृति से सम्बन्धित स्थलों की अवस्था आक्रमणों, प्राकृतिक आघातों एवं सुरक्षा व्यवस्था में कमी के कारण जर्जर हो गई है। इनकी पुरासम्पदा भी सुरक्षित नहीं है। ऐसे में यह अनुभव किया गया है कि निर्जन वनों या असुरक्षित पड़ी सांस्कृतिक धरोहर के लिए तत्स्थलीय संग्रहालय बनाये जाये या ऐसी सामग्री को संग्रहालयों में स्थानान्तरित किया जाये।

इस दिशा में कुछ प्रयास किये गये हैं। तत्स्थलीय संग्रहालयों में न केवल एतिहासिक या सांस्कृतिक महत्त्व के स्थलों से सम्बन्धी सामग्री हो बल्कि चार्ट, फोटोज आदि सामग्री का प्रदर्शन होना चाहिए जो शैक्षणिक हो और ज्ञानवर्द्धक हो। संग्रहालय, वास्तव में संस्कृति एवं एतिहासिक धरोहर की झलक देने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल होते हैं। इसलिए इनका रंग-रूप एवं वातावरण रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक हो। आमतौर से संग्रहालयों के प्रति लोगों का रूझान अधिक नहीं

होने का कारण यह है कि इनमें पुरातात्विक महल की रोचक सामग्री तो संरक्षित रखी गयी है लेकिन इनके प्रदर्शन की तकनीकों और वातावरण को सरस बनाने, आकर्षक रूप देने पर कम ध्यान दिया गया है।

पर्यटन को एक उद्योग इसलिए भी माना गया है क्योंकि इससे कई उद्यम जुड़े हुए हैं। पर्यटकों के लिए न केवल दूर-दराज की यात्रा के बाद समुचित और आरामदायक ठहरने की व्यवस्था हो बल्कि उनके खाने-पीने के लिए भी अच्छे और गुणवत्तापूर्ण होटल, रेस्तराँ आदि जरूरी होते हैं। इस दिशा में सरकार ने भी कुछ प्रयोग और प्रयास किये हैं इन आवश्यकताओं ने निजी क्षेत्र को भी आकर्षित किया है। लेकिन आज भी इस दिशा में बहुत कुछ किये जाने की जरूरत है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि पर्यटक, एक अतिथि है। हर पर्यटक बहुत सम्पन्न नहीं होता। इसलिए विभिन्न श्रेणी के पर्यटकों के अनुकूल खाने-पीने या ठहरने की व्यवस्था आवश्यक होती है। कई बार यह भी देखा गया है कि भारत में जन-सुविधाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। खुले में मलमूत्र त्याग की प्रवृति है लेकिन पर्यटकों का अपना अलग परिवेश होता है। अतः इस प्रकार की व्यवस्थाओं का भी उचित स्थान पर प्रबंधन करने पर ध्यान देना आवश्यक है। धार्मिक-स्थलों पर इस प्रकार की व्यवस्थाओं का अधिक अभाव देखा गया है।

पर्यटन-स्थलों की शोभा को दर्शाने के लिए रात्रि में रोशनी या फ्लड लाईट्स आदि की व्यवस्था पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

हस्तशिल्प एवं उपहार

हर पर्यटक अपने साथ उन स्थलों की यादें संजोकर ले जाना चाहता है जहाँ उसने भ्रमण किया है। ऐसे में स्थान विशेष या प्रदेश विशेष के हस्तशिल्प एवं कला और पर्यटन स्थल की कला से सम्बन्धित हस्तशिल्प या उपहारों के विभिन्न प्रकार तैयार करने की दिशा में विशेष ध्यान देना जरूरी है। इससे लोगों को व्यवसाय मिलेगा और पर्यटकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना सम्भव होगा। यद्यपि इस दिशा में काफी कुछ प्रगति हुई है लेकिन अभी बहुत कुछ करने की सम्भावनाएं शेष हैं।

कई पर्यटन-स्थल नजदीक होते हैं या कम दूरी पर होते हैं। यदि समुचित यातायात के साधन हों तो कम समय में अधिक से अधिक स्थलों का भ्रमण पर्यटकों के लिए सुलभ होगा।

7.5 सारांश

भारत में एतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्पदा इतनी विविध एवं अधिक है कि आज के इस यातायात, संचार आदि अनेक सुविधाओं के युग में पर्यटन उद्योग के विकास एवं इसको गतिशील बनाने के अपार अवसर एवं सम्भावनाएं हैं। इनके प्रचार-प्रसार और व्यवस्थाओं, प्रबंधन एवं सुविधाओं को विकसित करने की भारी सम्भावनाएं भी हैं एवं आवश्यकता भी। इस ओर निरन्तर प्रयास और सुधार भी हुए हैं लेकिन वे पर्याप्त नहीं हैं। इस दिशा में भारतीय पर्यटन उद्योग को बहुत आगे जाना बाकी है और अपने विजन एवं दृष्टि, तौर-तरीकों एवं कार्य पद्धति में भारी सुधार करने की जरूरत है।

दरअसल, देखें तो पर्यटन प्रबंधन और सरकार के प्रयासों को नकारे बिना यह कहा जा सकता है कि भारत की विशाल पुरासम्पदा, उसकी अति प्राचीन संस्कृति, एतिहासिक धरोहर,

हस्तशिल्प, जनजीवन की परम्पराओं, त्यौहारों और उत्सवों आदि की परम्पराओं की समृद्धि की क्षमता के कारण अधिकांश पर्यटक भारत की ओर रूख करते हैं।

लेकिन जितना क्षमता, विविधता या सम्भावनाएं हैं, उसकी तुलना में भारतीय पर्यटन उद्योग बहुत पीछे हैं। इसके लिए एक सोच और सघन प्रयास करने होंगे। जो कुछ प्रयास किये गये हैं, वे इतने अपर्याप्त हैं कि उन पर सन्तोष करना ठीक नहीं होगा। भारत ने अपनी उदासीनता से बहुत कुछ सांस्कृतिक वैभव खो दिया है। लेकिन अभी भी बहुत शेष है। इसके संरक्षण एवं देखभाल पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि यह सम्पदा इतनी मूल्यवान है कि एक बार नष्ट होने पर पुन: नहीं बनाई जा सकती है।

वर्तमान में पुरासम्पदा, संस्कृति और एतिहासिक वैभव के प्रति जो रूख सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर होना चाहिए, उसमें बहुत कमियाँ हैं। लेकिन आने वाली पीढियाँ शायद इस ओर विशेष ध्यान देगी और अपनी शेष बची सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं संवर्द्धन के दायित्व को बेहतर ढंग से निभायेगी। ऐसा होने पर पर्यटन को स्वाभाविक रूप से गति मिलेगी और हमारा भविष्य भव्य बन सकेगा।

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Tourism Museums & Monuments in India 1947 Dr. S.P. Gupta & Krishna Lal.
2. Eco Tourism & Mass Tourism, 1999 P.C. Sinha, Anmol Publications, New Delhi.

7.7 अभ्यास प्रश्न

1. राजस्थान के ऐतिहासिक स्थलों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. महाबलीपुरम् और जयपुर क्यों प्रसिद्ध हैं?
3. बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए कौन-कौन से स्थल महत्त्वपूर्ण हैं?
4. कोणार्क कहाँ हैं और क्यों प्रसिद्ध है?
5. पर्यटकों के लिए क्या-क्या सुविधाओं की कमी आप महसूस करते हैं? वर्णन कीजिए।

इकाई - 8 : भारतीय संग्रहालय

रूपरेखा :

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 संग्रहालयों का अर्थ

8.3 संग्रहालयों के प्रकार

8.3.1 राष्ट्रीय संग्रहालय

8.3.2 राज्यस्तरीय संग्रहालय

8.3.3 तटस्थलीय संग्रहालय

8.3.4 प्रदर्शित सामग्री के आधार पर वर्गीकरण

8.4 संग्रहालयों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

8.5 संग्रहालयों का विकास

8.6 संग्रहालयों के प्रति बढ़ता रूझान

8.7 संग्रहालयों का महत्त्व

8.8 संग्रहालयों की दशा और दिशा

8.9 सारांश

8.10 उपयोगी साहित्य

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

जैसा कि आप जानते हैं कि पर्यटन का क्षेत्र, एक विस्तृत क्षेत्र है। इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, प्राचीन अवशेष और जीवन के विविध पक्ष, पर्यटन से संलग्न हैं। संस्कृति, सभ्यता और पर्यटन को समझने के लिए हमें संग्राहलयों के बारे में जानकाशे होना आवश्यक है। इसलिए इस इकाई का उद्देश्य आपको विभिन्न संग्रहालयों की सैर कराना है। इस इकाई के माध्यमों से आप जान सकेंगे कि संग्रहालयों का कितना अधिक महत्त्व है और वे केवल हमारे गौरवमय इतिहास, सांस्कृतिक वैभव और विगत की जीवनशैली के जीवन्त गवाह ही नहीं बल्कि सदियों की परम्पराओं और संस्कृति को संजोकर रखने एवं संरक्षित करने वाले स्थल है।

भारत की संस्कृति, दुनिया में सबसे प्राचीन मानी जाती है। वैदिक आर्य संस्कृति से लेकर सिन्धुघाटी सभ्यता और उसके बाद के सम्पूर्ण परिवेश को समेटकर हमारे समक्ष प्रस्तुत करने वाले संग्रहालयों का अत्यधिक महत्त्व है। यही कारण है कि हर देशी-विदेशी पर्यटक जो हमारे देश की संस्कृति से रूबरू होना चाहता है, वह विभिन्न संग्रहालयों में जाना अवश्य पसन्द करेगा। भारतीय संस्कृति ने हमेशा मनुष्य के क्रमिक विकास के साथ उससे श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनाने के प्रयास किये हैं जिनके प्रमाण आपको संग्रहालय दे सकते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस दिशा में अपनी संस्कृति को समझने और समझाने के पूर्णत: योग्य हो सकेंगे। भारत की समृद्ध एवं वैभवपूर्ण गाथा के सूत्रों को समेटने के पुरातात्विक सबूतों और समय-समय पर किये गये बदलावों का एहसास कराने में संग्रहालय एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस इकाई के

द्वारा आप इस भूमिका से भी परिचित हो सकेंगे और अपने कार्यक्षेत्र में अपने कर्त्तव्य का बखूबी निर्वहन कर सकेंगे। इसी अपेक्षा और लक्ष्य की पूर्ति का इकाई में एक संक्षिप्त प्रयास किया गया है।

8.1 प्रस्तावना

संग्रहालयों के बारे में यों तो हर व्यक्ति को जानकारी होती है और वे अपनी सभ्यता, इतिहास, जीवन की परम्पराओं, उत्सवों, संस्कृति आदि से परिचित होते हैं लेकिन पर्यटन जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र से सम्बन्ध रखना है तो स्पष्ट एवं सम्पूर्ण जानकारी आवश्यक है। हर गंभीर पर्यटक, जो संस्कृति और सभ्यता की तह में जाना चाहता है, उसे साधारण ज्ञान तो होता है। ऐसे में विशेष एवं सम्पूर्ण जानकारी रखना जरूरी है। संग्रहालयों के बारे में इसके विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने में सक्षम होने के लिए सिलसिलेवार कुछ ज्ञान आवश्यक है।

संग्रहालय का अर्थ, महत्त्व, वर्गीकरण आदि के साथ इनकी विशेषताओं से आपका साक्षात्कार कराने के लिए आवश्यक बिन्दुओं पर चर्चा करने का प्रयास इस इकाई में किया गया है। आमतौर से लोग हर संग्रहालय के बारे में यही अनुमान लगाते हैं कि वहाँ विगत की जीवनशैली, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति आदि का पुरातात्विक संग्रह होगा। यही अनुमान काफी सीमा तक ठीक भी है क्योंकि सभी संग्रहालयों में पुरातन वैभव को संरक्षित रखने का एक स्थान पर प्रयास किया जाता है लेकिन कुछ प्रदेशों या क्षेत्रों की अपनी विशेषताएं होती हैं। इसलिए कुछ राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय संग्रहालयों की विशेष पहचान बन जाती है। उनमें अपने परिवेश के सम्बन्ध में विशेष सामग्री का संग्रह करने का प्रयत्न किया जाता है। बहुउद्देशीय संग्रहालयों के साथ-साथ भारत में कला, लोककला, विज्ञान आदि विषयों से सम्बन्धित विशेष प्रकार के संग्रहालय भी हैं।

कई बार ऐसा होता है कि देशी या विदेशी पर्यटकों की रूचि किसी विशेष विषय में अधिक होती है और वे विशेष प्रकार की सामग्री के संग्रह में अधिक रूचि रखते हैं।

ऐसे में, आप ऐसे पर्यटकों की रूचि के अनुरूप भी उन्हें सम्पूर्ण जानकारी दे सकेंगे क्योंकि इस इकाई में संग्रहालयों के विविध पक्षों पर चर्चा करने का हम प्रयास कर रहे हैं।

8.2 संग्रहालय का अर्थ

संग्रहालय का यों तो सीधा और सरल अर्थ है, वह स्थल जहाँ पुरातात्विक सामग्री का संग्रह और प्रदर्शन किया जाता है। इधर-उधर बिखरी पड़ी या फैली हुई सांस्कृतिक सम्पदा को एकत्रित करके एक स्थान पर सुरक्षित किये जाने तथा प्रदर्शित करने के लिए संग्रहालयों की स्थापना की जाती है।

अंग्रेजी में 'म्यूजियम' शब्द इसके लिए प्रयुक्त होता है जो ग्रीक भाषा के 'म्यूज' शब्द से बना है। ग्रीक की मान्यताओं में भी हर कला की अधिष्ठाता कोई देवी या देव होता है। इसलिए इन देवों को प्रसन्न करने वाली कलात्मक, सुन्दर और सांस्कृतिक सन्दर्भों वाली सामग्री जहाँ होगी, वह इनके लिए पवित्र एवं प्रिय स्थल होगा। यही सोचकर जहाँ संस्कृति को संजोकर रखा गया उसे उन्होंने म्यूजियम का नाम दिया।

लेकिन आज के युग में संग्रह की और भी वस्तुएं हो गई हैं। विज्ञान और टेक्नोलॉजी, ने भी अपनी शुरूआत से अब तक परिवर्तनों से पूर्ण एक लम्बी यात्रा की है।

इसके विभिन्न पड़ावों एवं विकास के क्रम को दर्शाने के लिए विभिन्न वैज्ञानिक एवं टेक्नोंलॉजी की सामग्री का संग्रह होता है। इसलिए अब विज्ञान, टेक्नोंलॉजी आदि के संग्रहालय भी बन गये हैं और संग्रहालयों का क्षेत्र कला और संस्कृति के साथ-साथ अन्य पक्षों से जुड़कर पहले से अधिक व्यापक हो गया है।

8.3 संग्रहालयों के प्रकार

एक लम्बे समय तक संग्रहालयों का स्वरूप लगभग एक ही था और इन्हें प्राचीन या पुरातात्विक महत्त्व की वस्तुओं का संग्रह स्थल माना जाता है। लेकिन 19वीं सदी के आते-आते कई बदलावों की प्रक्रिया शुरू हो गई। प्राचीन वस्तुओं के अलावा यह आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी कि ज्ञान, विज्ञान और महत्त्व के और भी क्षेत्र हैं जिनके कृत्रिम विकास को विशेष प्रकार के संग्रहालयों में संरक्षित करके दर्शाया जाना चाहिए। इसलिए ऐसा किया गया और विभिन्न प्रकार के संग्रहालयों का उदय हुआ।

8.3.1 राष्ट्रीय सग्रंहालय

राष्ट्रीय संग्रहालयों के पीछे यह विचार था कि पूरे देशभर की विविधतापूर्ण संस्कृति की झलक प्रस्तुत करने के लिए देश के भिन्न प्रदेशों की महत्त्वपूर्ण चुनी हुई कलाकृतियाँ, वेशभूषा, साहित्य आदि का संग्रह एक स्थान पर किया जाये। इस दृष्टि से भारत में तीन संग्राहलय प्रमुख हैं -

1. सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद
2. भारत संग्रहालय, कलकत्ता क्षेत्र
3. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

इसके साथ ही विभिन्न प्रदेशों या प्रमुख स्थानों पर भी राज्यस्तरीय संग्रहालय स्थापित किये गये।

8.3.2 राज्यस्तरीय संग्राहलय

विभिन्न राज्यों की अपनी विशेषताएं और पुरातत्व महत्त्व की वस्तुऐं हैं। इसलिए क्षेत्र-विशेष की विशेषताओं को प्रदेशों या प्रमुख स्थानों पर संग्रहालय स्थापित करके सुरक्षित रखने का सिलसिला चला और कुछ विशेष प्रकार के संग्रहालय उन्नत हुए। इनमें कुछ प्रमुख संग्रहालयों में निम्नांकित संग्रहालय हैं -

1. भारत कला भवन बनारस।
2. आनन्द भवन संग्रहालय, इलाहाबाद।
3. पुरातात्विक संग्रहालय, मथुरा।
4. स्टेट संग्रहालय, मद्रास और
5. प्रिन्स वेल्स म्यूजियम, मुम्बई।

इन प्रमुख राज्य स्तर के संग्रहालयों के अलावा हर राज्य का अपना संग्रहालय है। इस श्रेणी में जयपुर, नागपुर, भुवनेश्वर, पटना, भोपाल, त्रिवेन्द्रम, गुवाहाटी आदि के संग्रहालय भी प्रसिद्ध हैं।

8.3.3 तटस्थलीय संग्रहालय

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में देखें तो विभिन्न समय में खुदाई में कई स्थल मिले जहाँ भारत की प्राचीन संस्कृति से सम्बन्धित अनेक वस्तुएं मिली हैं या जहाँ का पूरा स्थल ही सांस्कृतिक वैभव का गवाह रहा है। ऐसे स्थलों पर ही संग्रहालय स्थापित किये गये। इन स्थापित संग्रहालयों में ये संग्रहालय शामिल हैं जैसे -

1. पुरातात्विक संग्रहालय, सारनाथ
2. पुरातात्विक संग्रहालय, नालन्दा
3. पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो
4. पुरातात्विक संग्रहालय, बोधगया
5. पुरातात्विक संग्रहालय, हेलविद
6. पुरातात्विक संग्रहालय, हाम्पी
7. पुरातात्विक संग्रहालय, नालन्दा
8. पुरातात्विक संग्रहालय, नागार्जुन कुण्ड
9. एस.एम.एस.-2 म्यूजियम, सिटी पैलेस, जयपुर
10. टीपू सुल्तान म्यूजियम, बैंगलोर
11. श्रीरंगापट्टनम् संग्रहालय, चैन्नई
12. रेडफोर्ट म्यूजियम, नई दिल्ली

इसके अलावा यूनेस्को म्यूजियम कमेटी ने भी गुजरात के लोथल एवं राजस्थान के कालीबंगा में संग्रहालय स्थापित करने की सिफारिश की थी क्योंकि ये स्थल भी पुरातात्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और भारतीय सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

8.3.4 प्रदर्शित सामग्री के आधार पर वर्गीकरण

संग्रहालयों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य प्रारम्भ में तो केवल पुरातात्विक एवं प्राचीन सांस्कृतिक महत्व की वस्तुओं को संग्रहालयों में सुरक्षित रखने और प्रदर्शन करने का था। लेकिन समय के साथ धारणा बदली। संग्रहालयों की स्थापना का नया विचार शुरू हुआ। ऐसे संग्रहालयों की आवश्यकता प्रतिपादित की गई की संग्रहलय मात्र प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के दर्शन कराने वाले स्थान ही न रहे बल्कि ऐसे संग्रहालय भी बनाये जायें जो आम लोगों का मनोरंजन करें और ज्ञान का दायरा विस्तृत करे। इस सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के संग्रहालय स्थापित होने का चलन बढ़ा। इस सन्दर्भ में यहाँ कुछ संग्रहालयों की चर्चा की गई है जैसे -

बहुउद्देशीय या मल्टीपर्पज संग्रहलय - इन्डियन म्यूजियम एवं पुरातात्विक संग्रहालय, कलकत्ता, लोककला संग्रहालय, कलकत्ता के पास ब्रताचरीगॉव क्राफ्ट्स म्यूजियम, नई दिल्ली, नेचुरल हिस्ट्री के लिए तारापोरवाला एक्यूरियम, मुम्बई, नेशनल गैलेरी ऑफ मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली, तटस्थलीय संग्रहालय, नालन्दा, महाराजा सवाई मानसिंह संग्रहालय, जयपुर मोतीलाल बाल संग्रहालय, लखनऊ, साइन्स म्यूजियम, नई दिल्ली, वार मेमोरियल म्यूजियम, नई दिल्ली, आदि।

इसके अलावा भी संग्रहालयों की सूची लम्बी है जो अलग विषयों पर रोचक जानकारी देते हैं जैसे आर्म्ड फोर्सेज मेडिकल कॉलेज, पूणे का संग्रहलय, रविन्द्र सदन विश्व भारती शान्ति निकेतन, बिड़ला इन्डस्ट्रीयल एण्ड टेक्नोलॉजीकल म्यूजियम, कलकत्ता, एयरफोर्स म्यूजियम,

स्वामी देवस्थान म्यूजियम श्रीरंगम, केलिको म्यूजियम, अहमदाबाद, टिम्बर म्यूजियम, जूट म्यूजियम आदि।

ये सब संग्रहालय जीवन से जुड़े विविध पक्षों का ज्ञान कराते हैं। इन संग्रहालयों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इन्डियन म्यूजियम, कलकत्ता माना जाता है। सालारजंग संग्रहालय हैदराबाद एवं नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली की गिनती राष्ट्रीय महत्व के बड़े संग्रहालयों में है जबकि सबसे बड़ा संग्रहालय कलकत्ता का इन्डियन म्यूजियम है। इसके अलावा राज्यस्तरीय संग्रहालयों में सिटी पैलेस म्यूजियम, जयपुर का नाम भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। राज्यस्तरीय म्यूजियम की श्रेणी में इलाहाबाद म्यूजियम, आनन्द भवन संग्रहालय, इलाहाबाद, भारत कला भवन वाराणसी, प्रिन्स और वेल्स म्यूजियम, मुम्बई, स्टेट म्यूजियम, मद्रास, लार्ड कर्जन म्यूजियम, चैन्नई, पुरातात्विक संग्रहालय, ग्वालियर भी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

खजुराहो, सिटी पैलेस जयपुर, सारनाथ, रेडफोर्ट आदि के संग्रहालय भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

8.4 संग्रहालयों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में महलों, दुर्गों और मंदिरों की इमारतें इतनी मनमोहक तथा विविधापूर्ण है और संख्या में भी विस्तार से फैली हुई है। इनके शिल्प और सौन्दर्य के अलावा भारतीय संस्कृति और इतिहास की एक लम्बी पृष्ठभूमि की भी ये इमारतें गवाह रही हैं। इनकी शिल्पगत विशेषताओं के साथ भित्तिचित्रों और शिल्प के चमत्कार के रूप में अनेक पुरानी हवेलियाँ भी पर्यटकों का मन मोह लेती हैं। इसलिए अधिकांश पर्यटकों की रूचि इस प्रकार के शिल्प और स्थापत्य की ओर अधिक आकर्षित होता है।

संग्रहालय, विगत में झांकने और अध्ययन करने के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं यद्यपि विविध विशेषताओं वाले पुरातात्विक, तटस्थलीय या कला के खजानों को संजोये रखने वाले संग्रहालय भी कम आकर्षक नहीं होते। इस प्रकार सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व के भवनों एवं स्थानों की तुलना में संग्रहालयों को पर्यटन की दृष्टि से दूसरा स्थान देते हैं।

जैसा कि आप जानते ही हैं कि हर पर्यटक या व्यक्ति की रूचि भिन्न-भिन्न होती है। ऐसे में ऐसे भी अनेक पर्यटक होते हैं जो सभ्यता, संस्कृति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से साक्षात्कार का सेमांच अनुभव करने के लिए संग्रहालयों में अधिक रूचि रखते हैं। लेकिन यह भी सच है कि कला और संस्कृति केवल इमारतों या मोनुमेन्ट्स की दीवारों पर पूरी तरह नहीं पढ़े जा सकते। इसके लिए संग्रहालयों का सग्रह अधिक कारगर होता है।

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् यद्यपि विस्तार से फैली सांस्कृतिक महत्त्व की पुरा सम्पदा, शिल्प, स्थापत्य, कला आदि के सर्वेक्षण एवं संवर्द्धन के पर्याप्त प्रयासों का अभाव रहा लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कला में रूचि बढ़ी। दुनियाँ के अनेक संग्रहालयों ने भारतीय प्राचीन कला एवं वस्तुओं में रूचि दिखाना शुरू किया और अपने संग्रहालयों में भारतीय वस्तुओं का संग्रह करने लगे।

दुनियाँ के विभिन्न देशों के लोगों ने जब अपने संग्रहालयों में भारतीय कला और संस्कृति की झलक देखी तो भारत आने वालों की रूचि भारतीय कला के संग्रह अर्थात् संग्रहालयों में बढ़ी। भारत में भी इस और जागृति आई।

यह तो सर्वविदित है कि आज भी दुनियाँ में अपनी विविधतापूर्ण संस्कृति और जीवन के लिए भारत एक अग्रणी देश है। सदियों के आक्रमणों एवं उदासीनता के बावजूद अपार पुरा-सम्पदा एवं सांस्कृति धरोहर में इतना शिल्प, स्थापत्य, चित्रकला और सौन्दर्य शेष हैं कि भारत आने वाले हर रूचि के व्यक्ति और पर्यटक की पसन्द सन्तोष के साथ सम्पन्न होती है। किसी को निराश नहीं होना पड़ता। व्यापक रूप से विविधता के यहाँ दर्शन करना सम्मव होता है।

संग्रहालय केवल मनोरंजन के माध्यम नहीं है जहाँ विभिन्न वस्तुओं को देखकर मनोरंजन प्राप्त किया जा सके। ये ऐसे स्थल है जहाँ देश की युवा पीढ़ी पुस्तकों से अधिक इन संग्रहालयों में अपनी समृद्ध संस्कृति, परम्पराओं, धर्म, जीवन आदि विविध पक्षों को समझ सकते है। शैक्षणिक दृष्टि से भी संग्राहलयों का अत्यन्त महत्व है।

जब से दुनियाँ अपने अलग-अलग हिस्सों में बँटी हुई थी और संचार, यातायात आदि के साधन कम थे इतिहास ने कई करवटें ली हैं। दुनियाँ में जागृति आई। लोग एक दूसरे देश के समाज, परम्पराओं, संस्कृति आदि विभिन्न पहलुओं को जानने एवं समझने में रूचि दिखाने लगे।

यातायात, संचार साधनों एवं वैज्ञानिक प्रगति ने न केवल लोगों की सोच को बदला बल्कि विभिन्न देशों की संस्कृति के करीब आने की इच्छा को बलवती किया। इन सब कारणों से भी अपनी सांस्कृतिक समृद्ध विरासत का धनी भारत, दुनियाँ की नजरों में चढ़ा। उनका आकर्षण इस ओर बढ़ा तथा यहाँ के संग्राहलय भी रूचि के अंग बने।

8.5 संग्राहलयों का विकास

संग्राहलयों के विकास की कहानी का आरम्भ मनुष्य की यह प्रवृति है कि पुरानी वस्तुओं, साहित्य अपने परिवार की परम्परा आदि का संचय करके अपने पुरातन के वैभव पर गर्व का अनुभव करता रहे। इसलिए संग्राहलयों का प्रारम्भ व्यक्ति की इसी प्रवृति और इच्छा पर आधारित है। मंदिरों, गिरजाघरों आदि में धार्मिक महत्त्व के संगीत वाद्यों, पूजा अर्चना से सम्बन्धित सामान आदि को संजोकर रखा जाता था।

स्थानीय निकाय भी अपने नगरों से सम्बन्धित वस्तुओं का संकलन करती थी। सम्पन्न लोगों को भी पुराने चित्रों, बर्तनों, सामान वगैरह का संग्रह करने की रूचि रही है। लोग अपने पुरखों के गौरव को एकत्रित करके दिखाने में अपनी शान समझते थे। आज भी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों, आभूषणों, चित्रों, मूर्तियों, सिक्कों आदि अनेक वस्तुओं के संग्रह व्यक्तिगत संग्रहों या निजी छोटे संग्रहालयों में आकर्षण के केन्द्र हैं। साथ ही पुरानी सामग्री या (एन्टीक्स) की अब तो विश्वस्तर पर मांग है। अनेक लोग इस व्यवसाय में लगे हुए हैं और वे ऐसी दुर्लभ वस्तुएं एकत्रित करके भारी लाभ कमा रहे हैं। देश-विदेश के संग्राहलय एवं निजी संग्रहकर्ता ऐसी वस्तुओं की भारी खरीद करते हैं।

18वीं एवं 19वीं सदी में एक नई प्रवृति शुरू हुई। व्यक्तिगत स्तर पर सांस्कृतिक धरोहर का संग्रह करने के शोकिन लोगों के मन में भी सामाजिक हित का भाव जागा और उनके मन में विचार आया कि प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर में आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देने के लिए इनका सार्वजनिक प्रदर्शन हो तो बेहतर काम होगा।

कुछ लोगों ने अपनी संग्रहित वस्तुएं कॉलेजों, विश्वविद्यालयों आदि को प्रदर्शन के लिए देने या दान करने का सिलसिला भी शुरू किया। इस प्रकार निजी तौर पर संग्रह की प्रवृति में

सार्वजनिक हित की ओर झुकाव से एक परिवर्तन आया। यही आगे चलकर संग्रहालयों के रूप में विकसित हुआ। हमारी प्राचीन सांस्कृतिक सम्पदा, राष्ट्र की सम्पदा है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी देश के लोगों को अपनी प्राचीन संस्कृति से परिचित कराने के लिए कोई पुख्ता व्यवस्था होनी चाहिए। यहीं से सार्वजनिक या सरकार के अधीन संग्राहलयों की विकास यात्रा आरम्भ हुई।

यह बात जोर पकड़ने लगी कि ज्ञान का भंडार, किसी भी व्यक्ति, समाज या देश की सम्पत्ति नहीं बल्कि यह समस्त मानवता के लिए होनी चाहिए। संग्राहलय दरअसल महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसीलिए विद्यालयों या महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को संग्रहालयों का भ्रमण करवाना, एक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक गतिविधि माना जाता है।

8.6 संग्रहालयों के प्रति बढ़ता रूझान

सैलानियों या पर्यटकों की अनेक श्रेणियाँ होती है। कोई मौज-मस्ती के लिए अलग-अलग देशों की यात्रा करता है तो कोई देश-विदेश के स्मारकों, महलों, हवेलियों, दुर्गों, इमारतों आदि की कारीगरी, शिल्प, चित्रांकन आदि को देखकर सेमांच एवं ज्ञान प्राप्त करने के लिए भ्रमण करता है। लेकिन अनेक लोग ऐसे भी होते हैं जो किसी भी देश की सांस्कृतिक विरासत की तह में जाकर उसकी गहराईयों को छूना चाहते हैं। अनेक स्थलों, वस्तुओं आदि के साथ संग्राहलय ऐसे पर्यटकों के लिए महत्त्वपूर्ण स्थल होते हैं।

एक बार एक नगर में कुछ विदेशी पर्यटकों ने वहाँ के विभिन्न स्थलों के सौन्दर्य और इतिहास की झलक लेने के बाद वहाँ के संग्राहलय का भ्रमण किया। इस समय उनके उद्गार थे कि आधुनिक भवनों, शिल्प और सौन्दर्य, बाग-बगीचों आदि का परिवेश भी उन्हें काफी उन्नत अवस्था में यूरोपीय देशों में भी देखने को मिल जाता है। लेकिन दुनियाँ की प्राचीनतम संस्कृति, जो संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, वह उनके आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है।

पश्चिमी देशों में वहाँ के संग्रहालयों में लोग अपने बच्चों के साथ समय बीताने को भी जाते हैं। इससे बच्चों का मनोरंजन भी होता है और यह शिक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी रहता है। भारत में कुछ प्रदेशों के लोगों में अपने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण करने के साथ प्रादेशिक-संस्कृतियों से साक्षात्कार की प्रवृति भी है। लेकिन संग्राहलयों में विद्यार्थियों को विशेषकर ले जाना चाहिए। यह शैक्षणिक भ्रमण का सार्थक तरीका हो सकता है। शोध के लिए संग्रहालयों में जाने वालों की संख्या बहुत कम होती है।

इस प्रकार संग्रहालयों की ओर रूझान के कारण उनकी व्यवस्था, जानकार लोगों द्वारा भ्रमणकर्ताओं को जानकारी देने आदि पक्षों में भी सुधार आया है। विगत वर्षों में संग्रहालयों में आकर्षण तो हर देश में बढ़ा है क्योंकि संग्रहालय सीधे तौर पर शिक्षित करने और संस्कृति का ज्ञान प्रदान करने के साधन या माध्यम हैं। लेकिन इस दिशा में राज्यस्तर एवं जनता के स्तर पर आज भी उत्साहजनक स्थिति नहीं है। पुरासम्पदा या संस्कृति से सम्बन्धित संग्रहालयों के रख-रखाव या संचालन की स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं है और लगता है कि कहीं इस ओर एक उपेक्षित भाव है। इसे प्राथमिकता के तौर पर नहीं देखा जाता है। यदि सांस्कृतिक धरोहर पर विशेष ध्यान दिया जाये तो पर्यटन विकास को आश्चर्यजनक रूप से गति मिल सकती है। साथ ही रोजगार में भारी इजाफा हो सकता है।

कई देशों के रोजगार और आर्थिक आधार एवं आय का सबसे बड़ा जरिया पर्यटन है। कई देशों ने पर्यटन का एक उद्योग के रूप में विकास किया है। लेकिन भारत में इस प्रकार के विचार को क्रियान्वित करने की बात अभी मिलों दूर हैं। वैचारिक स्तर पर तो यह माना जाता है लेकिन क्रियान्वयन कमजोर है।

8.7 संग्रहालयों का महत्त्व

आमतौर से वर्तमान के व्यस्त जीवन में भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए व्यक्ति सदैव तत्पर रहता है और संस्कृति को विशेष महत्व नहीं देता है। बातचीत में तो इसके महत्त्व से कोई इन्कार नहीं करता लेकिन व्यावहारिक स्तर पर एक उदासीनता दिखाई देती है।

विकास और प्रगति के अर्थ वर्तमान की आर्थिक एवं भौतिक प्रगति तक सीमित है। अनेक सिंचाई, उद्योगों, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित योजनाएं स्वतन्त्रता के बाद बनी है। उनके लागू किये जाने से योजनाबद्ध विकास को गति भी मिली है। हर क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

आम आदमी के जीवन स्तर पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है। लेकिन सांस्कृतिक समृद्धि और प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को आधुनिक दृष्टि में अत्यधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। लेकिन विकास यात्रा में जो विकृतियाँ पैदा हुई है वे इस उदासीनता के कारण भी है। संस्कृति से कटकर कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता है।

यह बात आधुनिक अर्थशास्त्रियों, योजनाकारों, राजनेताओं आदि की समझ में नहीं आई है। वे इसमें वार्तालाप तक ही सहमत नजर आते हैं। इसका कारण यह भी है कि आज के सम्पूर्ण भौतिक विकास का सोच और शैली उस पश्चिमी समाज और सभ्यता से सम्बन्धित है जो भौतिक उन्नति को ही जीवनस्तर का मापदंड मानती है। लेकिन संस्कृति से कटने पर हर प्रकार की उन्नति अधूरी है। इस तथ्य को समझने के लिए संस्कृति के मौलिक तत्वों पर दृष्टि डालनी होगी।

संग्राहलयों की यदि दुर्दशा है या उनके प्रति उदासीनता का सरकारी या सार्वजनिक स्तर पर कोई भाव या विचार हैं तो इसे सांस्कृतिक उदासीनता कह सकते हैं। अपने प्राचीन वैभव एवं गौरव का एहसास हमें सही दिशा में चलने की ओर संकेत करता है और यही कारण है कि दुनिया में पूर्ण शिक्षित और समझदार लोग अपने-अपने संग्राहलयों को सर्वोच्च महत्त्व देते हैं।

दुनियाँ के वे लोग जिनकी विश्वयुद्धों में प्राचीन सांस्कृतिक सम्पदा लूट ली गई या जिनकी अति प्राचीन संस्कृति नहीं है, वे लोग सांस्कृतिक धरोहर के महत्त्व का अधिक अनुभव करते हैं।

ऐसे भी उदाहरण हैं कि संग्रहालय से एक अनमोल प्राचीन चित्राकृति जैसे मोनालिसा का चित्र चोरी होने पर किस प्रकार खोजबीन की गई और कितना शोर मचा। बहरहाल, भारत के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह एक अति प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति वाला समृद्ध देश रहा है। स्वाभाविक है कि इसकी अपार सांस्कृतिक सम्पदा भी उन वनों या अरण्यों में भी बिखरी पड़ी हैं जहाँ भारतीय संस्कृति ने करवट ली।

सुरक्षा के पक्ष पर विशेष ध्यान नहीं दिये जाने के कारण अपार सम्पदा या तो लूट ली गई या स्मगलरों द्वारा भारी मात्रा में बेच दी गई। यह सिलसिला आजादी के बाद तेजी से चला है और जारी है। सरकार का भी इस ओर दोयम दर्जे का व्यवहार रहा है।

इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी भारत में सांस्कृतिक विरासत इतनी समृद्ध है कि यदि इसे वर्तमान पर्यटन या अन्य उपयोगी पक्षों से जोड़कर इसकी देखभाल और सुरक्षा की जाये तो यह भौतिक और आर्थिक दृष्टि से भी बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार सांस्कृतिक विरासत का महत्त्व अनेक दृष्टिकोणों एवं सन्दर्भों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। कहते हैं कि रात गई, बात गई। अभी भी समय है। जब जागे तब सवेरा। भारत में संस्कृति और पर्यटन को एक साथ एक रूप में देखते हुए देखभाल, संरक्षण एवं सक्रिय योजनाबद्ध ढंग से कार्य किया जाये तो यह देश के लिए अत्यन्त लाभदायक कार्य हो सकता है।

8.8 संग्रहालयों की दशा और दिशा

जैसा कि कुछ सीमा तक इस इकाई में आप जान ही चुके होंगे कि भारत में संग्रहालयों की दशा और दिशा के बेहतर होने के कोई संकेत नहीं हैं लेकिन इस स्थिति के कारणों की खोज करेंगे तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि इसका प्रमुख कारण भारत की हजारों वर्षों की गुलामी है। गुलामी ने भारतीय मानस को कुण्ठित कर दिया। उसमें अपनी संस्कृति और स्वाभिमान की दृष्टि से कमजोरी आई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय लोगों को अपनी संस्कृति और विरासत का ज्ञान नहीं है। लेकिन इसके पुनरोत्थान के लिए जो लगन, निष्ठा और जज्बा होना चाहिए था, उसका अभाव है।

आजादी के बाद देश में जो राजनैतिक वातावरण बना, वह भी सांस्कृतिक विकास में योग देने के लिए अनुकूल नहीं रहा। प्रयास तो हुए हैं लेकिन जिस सांस्कृतिक सोच और प्रयास की स्वतन्त्रता के साथ आवश्यकता थी, वह नहीं हुआ।

कहते हैं कि जब हाथी मर जाता है तो भी उसके शरीर के अवशेष कीमती होते हैं। भारतीय संस्कृति ने अनेक आघात सहे परन्तु वह अपनी विशेषताओं, अपने पर्वों, त्यौहारों, रीति-रिवाजों, खण्डहरों, स्मारकों, पुरा सम्पदा आदि की विरासत में आज भी कुछ हद तक समृद्ध हैं। लेकिन देश में सांस्कृतिक चेतना अपेक्षित स्तर पर नहीं है।

यदि संस्कृति के महत्त्व को पूर्णरूपेण नहीं समझा जाये और उसे वर्तमान जीवनशैली से सम्बद्ध नहीं किया जाये तो उसकी उपयोगिता को नहीं समझा जा सकता है। इसलिए प्रथम आवश्यकता सांस्कृतिक वैभव के बारे में यह समझना होगा कि यह वैभव अमूल्य है। यह नष्ट हो जाये तो इसका कोई और विकल्प नहीं है।

वर्तमान का झुकाव धरातलीय है। भौतिक विकास और जाति को ही देश की उन्नति का आधार माना जाता है। इसलिए ही संग्रहालयों की वर्तमान दशा बहुत संतोषप्रद नहीं मानी जा सकती है। कई बार लोग समझते हैं कि यह हमारा मृत-भूतकाल है। यह सोच चिन्तनीय है। गहनता से सोचें तो संग्राहलय हमारे विगत के सांस्कृतिक विकास और गौरवमयी परम्परा के जीवन्त गवाह हैं। वे अमूल्य हैं और देश और समाज के एहसास को जागृत करने देश के भावी विकास में प्रेरक का कार्य करते हैं।

इस तथ्य के विस्तार में न जाकर कि संग्रहालयों की दशा और दिशा क्या है, यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि न वर्तमान परिदृश्य सन्तोषजनक है और न भविष्य उजला दिखाई देता है। लेकिन भविष्य की चिन्ता करते हुए वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों पर भरोसा किया जा सकता है और निराशा के संकेतों के बीच भी हमें यह विश्वास और आशा करनी चाहिए और इसके लिए प्रयास करने चाहिए कि ये पीढ़ियाँ देश के सांस्कृतिक परिवेश को नई दिशा और दशा देने के लिए सक्षम हैं और वे अपने दायित्व को पूरा करेंगे।

8.9 सारांश

अपने वर्तमान और भविष्य को संजोने की यात्रा में केवल अध्ययन एवं मनन के मार्ग को अपनाने के बजाय एक सरस और मनोरंजक ढ़ंग से सहज रूप में आगे बढना ही श्रेष्ठ है। इस दृष्टि से संग्रहालयों का परिवेश और वातावरण को रचनात्मक स्वरूप देना आवश्यक है। संग्रहालयों के शैक्षणिक, मनोरंजक एवं सांस्कृतिक विरासत को संजोये रखने के महत्त्व को समझने के साथ इनकी विविधता पर एक नजर डालना भी आवश्यक है क्योंकि संग्राहलय अब केवल पुरासम्पदा या प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं रहे हैं।

सभ्यता के प्राचीन सूत्रों को समेटने के साथ-साथ बदलती जीवनशैलियों से जुड़े विभिन्न विशेष पक्षों को लेकर भी राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर संग्रहालय स्थपित किये गये हैं। इस प्रकार संग्रहालयों के विकास ने नई दिशायें तय की हैं। इस विभिन्नता की एक व्यापक झलक पाने के लिए कुछ प्रमुख संग्रहालयों की विशेषताओं की जानकारी करना भी उपयुक्त रहेगा।

संग्रहालयों की यात्रा यदि कलकत्ता के सबसे पुराने संग्रहालय इन्डिन म्यूजियम से आरम्भ करें तो वहाँ 500 बी.सी. से 1000 ए.डी. तक की अधिकांश सांस्कृतिक धरोहर जैसे मूर्तिशिल्प, चित्रकला, सिक्कों, टेक्सटाईल आदि के अलावा मध्ययुग (1000 ए.डी. से 1700 ए.डी.) तक की सांस्कृतिक धरोहर से साक्षात्कार होगा। यह संग्रहलय दुनियाँ के प्रमुख 15 संग्रहालयों में से एक माना जाता है। भारतीय संस्कृति के क्रमबद्ध विकास को भी वहाँ समझने में सहायता मिलती है। दुर्लभ सांस्कृतिक संग्रह के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के उज्जवल वैभव का एहसास करना सम्मव है।

देश के प्रमुख संग्रहलयों में हैदराबाद के सालारजंग संग्रहालय भी अत्यन्त रोचक हैं। वहाँ भारतीय प्राचीन शस्त्रों, चित्रों आदि के संग्रह के अलावा यूरोपीय या ब्रिटिश शासन काल की भी अनेक वस्तुऐं संग्रहित हैं जो भारतीय पर्यटकों के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकती है। भारतीय हस्तकला की विविधता तथा 19वीं एवं 20वीं सदी के सम्पन्न वर्ग या शासकों की पसन्द एवं जीवनशैली का भी वहाँ परिचय प्राप्त हो सकता है।

संग्रहालयों में नई दिल्ली के जन्मपथ पर स्थापित राष्ट्रीय संग्रहालय की गिनती भी देश के महत्त्वपूर्ण संग्रहालयों में की जाती है। 1949 में लन्दन में हुई एक प्रदर्शनी में देशभर से सांस्कृतिक महत्त्व की सामग्री एकत्रित करके वहाँ प्रदर्शित की गई थी। वहाँ से वापिस आने पर उसे 10 साल तक राष्ट्रपति भवन में संग्रहित रखा गया।

1960 में इसके लिए वर्तमान नया भवन तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की पहल पर बनाया गया। तब से विभिन्न विद्‌वानों की देखरेख में इसका निरन्तर विकास किया गया। इस समय यह पत्थरों, ताम्बे आदि से निर्मित वस्तुओं, मूर्तिशिल्प, प्रागैतिहासकालीन सामग्री, कलाओं

के साथ दुनियाँ के अन्य देशों की पुरासम्पदा से सम्पन्न ऐसा संग्रहालय बन गया है जो भारतीय संस्कृति के स्पन्दन से परिपूर्ण है।

जैसा कि आप जानते हैं कि भारतीय संस्कृति अनेक क्षेत्रीय संस्कृतियां एवं प्रादेशिक विशेषताओं का संगम है। इसलिए राष्ट्रीय संग्रहालयों के अलावा प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय स्तरों पर भी कई ऐसे संग्रहालय हैं जो देश-विदेश के पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। इस सन्दर्भ में यह सर्वविदित है कि भारत के तीर्थस्थल एवं धार्मिक केन्द्र भी पर्यटकों को बहुत आकर्षित करते हैं। इसलिए ऐसे स्थानों पर भी विशिष्ट संग्रहालय विकसित किये गये हैं जैसे मथुरा, बनारस, इलाहाबाद आदि के संग्रहालय।

संग्रहालयों में भारत की अर्वाचीन एवं प्राचीन संस्कृति से परिचय कराने वाला दिल्ली स्थित आनन्द भवन संग्रहालय एवं बनारस का भारत कला भवन संग्रहालय भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुम्बई, भारत की व्यावसायिक राजधानी या केन्द्र मानी जाती है और अनेक देशी-विदेशी लोगों का वहाँ आना जाना लगा रहता है।

वहाँ का प्रिन्स वेल्स संग्रहालय और अजन्ता-एलोरा की बौद्ध गुफाएं भी पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण लिए हुए है। भारत के हर प्रदेश की अपनी विभिन्नता एवं सांस्कृतिक पहचान है। चैन्नई या मद्रास संग्रहालय भी तमिलनाडु में दक्षिण भारत के शिल्प, कला एवं सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रादेशिक स्तर के संग्रहालयों के साथ स्थानीय स्तर पर टीपू सुल्तान संग्रहालय, बैंगलोर, सिटी पैलेस म्यूजियम, जयपुर, नालन्दा, खजुराहो, हाम्पी, बोधगया, दिल्ली का रेडफोर्ट संग्रहालय, साँची, सारनाथ आदि संग्रहालयों की एक लम्बी सूची है जो यह दर्शाती है कि अनेक विपरीत स्थितियों के बावजूद भी भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को न तो कोई नष्ट कर सका है और न इसके प्रमाणों को पूरी तरह समाप्त करने में सफल हुआ है। 1934 में दिल्ली में नेशनल गैलेरी ऑफ मॉडर्न आर्ट शुरू हुई जो समसामयिक भारतीय कला के परिदृश्य को उजागर करती है।

1861 में भारत में स्थापित अर्किलॉजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया ने भी भारतीय पुरासम्पदा की खोज करने तथा उसे प्रकाश में लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संस्कृति की अवधारणा कोई अमूर्त कल्पना नहीं है बल्कि यह किसी भी देश और जाति की सदियों तक संचित विरासत होती है जिसकी अभिव्यक्ति उसकी लम्बी प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों, आस्थाओं, मंदिरों, देवालयों, स्मारकों, उत्सवों, त्यौहारों, कलाओं आदि विविध रूपों में प्रगट होती है। दरअसल, इन सभी में व्याप्त एक निरन्तर प्रवाहमय संवेदना या एहसास ही संस्कृति है। इसलिए किसी भी संस्कृति की जड़ों, उसके तने, शाखाओं और सम्पूर्ण संस्कृति का अवलोकन करने के लिए संयुक्त रूपों और विविधताओं को समझना होगा।

कई देश प्रगति और विकास का अर्थ केवल भौतिक विकास को ही मानते हैं। लेकिन कोई भी देश केवल भौतिक विकास के आधार पर सम्पन्न, सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता। उसे अपने देश की सांस्कृतिक चेतना को भी बनाये रखना चाहिए। यह उसका नैतिक एवं मानसिक बल होता है और इसलिए अपने विगत के इतिहास और संस्कृति से कटकर कोई भी देश आगे नहीं बढ़ सकता।

कई लोग अपने विगत को भूलकर वर्तमान में जीते हैं। विगत का बोध लेकर आगे बढ़ना उचित नहीं है लेकिन विगत से प्रेरित होकर आगे बढ़ना प्रगति में योग देता है। इन सब कारणों

से यह स्पष्ट है कि किसी भी देश के संग्रहालय, भूतकाल की वस्तुओं का संग्रह मात्र नहीं है बल्कि एक जीवन्त एहसास की निरन्तरता के प्रतीक हैं।

वर्तमान की विकास यात्रा के सन्दर्भों को देखें तो व्यक्ति का सोच भौतिक विकास तक सीमित नजर आती है। इसी सोच का परिणाम है कि भारत में संग्रहालयों के प्रति उत्साहजनक एवं गंभीर सोच का अभाव है। यदि कहीं निर्जन में कोई अत्यन्त सांस्कृतिक या पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मूर्ति खो जाये, और उसकी तलाश में सम्बन्धित क्षेत्रीय संग्रहालय के अधिकारी जाना चाहें तो उनके पास साधनों की कमी होती है। इस कारण वे अपने कर्त्तव्य का ठीक से पालन नहीं कर पाते। यही नहीं भारत की स्वतन्त्रता के बाद भौतिक एवं आर्थिक विकास की दौड़ में संग्रहालय पीछे छूट गये।

इस उदासीनता की प्रवृति का एक कारण कुछ लोग यह भी मानते हैं कि जिन देशों के पास अति प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर बहुत कम है, वे इसका मूल्य जानते हैं। दुनियाँ के कई देशों में एक कलाकृति के खो जाने के बाद तूफान खड़ा हो जाता है। लेकिन भारत में सांस्कृतिक विरासत में अपार विविधता से भरपूर समृद्ध खजाना है जो काफी है और जिसके पास बहुत कुछ होता है, वह उसका पूरा मूल्य नहीं समझ पाता है। शायद इसी कारण या अंग्रेजों एवं अन्यों की वर्षों की गुलामी के कारण हम अपने इतिहास और संस्कृति की उज्ज्वल परिपाटी से रोमांचित और गौरवान्वित होना भूल गये हैं।

बहरहाल, देश के संग्रहालय सांस्कृतिक विरासत एवं पर्यटन विकास आदि अनेक दृष्टिकोणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसलिए इनके लिए सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों स्तरों पर विशेष चेतना जागृत करने की आवश्यकता है।

यद्‌यपि संग्रहालयों की साज-सम्भाल एवं सुरक्षा की दृष्टि से परिदृश्य बहुत निराशाजनक नहीं है लेकिन इस दिशा में सुधार की भारी गुंजाइश है। यदि सरकार सांस्कृतिक पर्यटन के विकास को नई गति देना चाहती है तो उसे संग्रहालयों के प्रति अपने दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाना जरूरी होगा।

देश के विभिन्न भागों में आज भी बिखरी पड़ी अपार पुरातात्विक महत्त्व की सामग्री को समेटकर स्थान-स्थान पर लघु संग्रहालय भी स्थापित किये जा सकते हैं और बड़े संग्रहालयों को और अधिक समृद्ध बनाया जा सकता है। साथ ही तत्स्थलीय संग्रहालयों अर्थात् विभिन्न स्थानों की खुदाई से मिले प्राचीन अवशेषों के प्रदर्शन से भी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानों पर संग्रहालयों की स्थापना को गति दी जा सकती है।

वस्तुतः देश की अपार पुरा सम्पदा एवं विशेषता को संजोने का कार्य बहुत कठिन है। यह अत्यन्त विशाल है और इसके लिए भारी साधनों की जरूरत है। लेकिन इस दिशा में किये गये प्रयत्नों से लगता है कि एक दृढ़ संकल्प के साथ बड़े पैमाने पर इसे आगे ले जाने का संकेत नहीं मिलता।

भारत के लिए संग्रहालयों का विकास करना इसलिए भी लाभदायक एवं उपयोगी हो सकता है क्योंकि यहाँ की संस्कृति एक ही टाईम या प्रकार की नहीं है। हर क्षेत्र एवं प्रदेश की संस्कृति, इतिहास और विशेषताऐं भिन्न-भिन्न हैं। इस कारण देश के प्रादेशिक स्तर के संग्रहालयों की भी विविध विशेषताएं होगी एवं वे पर्यटकों के आकर्षण के भी केन्द्र होंगे।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारत में विभिन्न साधनों या प्राचीन खुदाई स्थलों के आसपास संग्रहालयों के विकास की भारी संभावनाएं हैं जिसका संकेत यूनेस्को की एक समिति की सिफारिशों में भी दिया गया है। इस समिति ने गुजरात के लोथल संस्थान के कालीबंगन में संग्रहालयों की स्थापना पर जोर दिया है।

समिति का कहना है कि ये दोनों स्थल ही भारत की प्राचीन संस्कृति के वैभव से परिचय कराने वाले महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। साथ ही यह भी कहा है कि जब मिस्र और मेसोपोटामिया की ईसा से 3 सदी पूर्व के स्थल, दुनियाँ के अनेकों पर्यटकों के आकर्षण स्थल बन गये हैं तो कोई कारण नहीं कि भारत की अति प्राचीन हड़प्पा संस्कृति के अवशेष दुनियाँ की नजरों में न चढ़े।

उक्त समिति ने एक सुझाव यह भी दिया था कि भारत में इन्डो इस्लामिक काल एवं ब्रिटिश राज की उपलब्धियों को दर्शाने के लिए अपना अलग संग्रहालय स्थापित होना चाहिए। लेकिन अनेक विद्वानों ने इस सुझाव को यह कहते हुए नकार दिया है कि भारतीय संस्कृति, एक निरन्तर प्रवाहमयी धारा है जिसे इस प्रकार से अलग-अलग रूप में बाँटना, एक अतार्किक सुझाव है। इस प्रकार के सुझाव का भारत की सांस्कृतिक एकता की परम्परा के अनुकूल नहीं है।

इस प्रकार संग्रहालयों की स्थापना के लिए अभी बहुत सम्भावनाएं और विचार हैं। दरअसल, देश के सम्पूर्ण और सन्तुलित विकास को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करने के लिए देश की सांस्कृतिक विरासत के प्रति वर्तमान के दृष्टिकोण को बदलना जरूरी है।

8.10 कुछ उपयोगी साहित्य

1. Ram Acharya, Tourism & Cultural Heritage of India, RBS a Publications, Jaipur.
2. D.P. Singhal, India & Survey of Indian its any, Bombay, Asia Publishing House, 1957.
3. K.M. Panikar, Survey of Indian its any, Bombay, Asia Publishing House, 1957.
4. Art & Architecture of India : Penguin Books, 1967.
5. H.D. Sankalia Indian Archaelogy Today, Asia Publishing House, Bombay, 1963.
6. S.P. Gupta & Krishna Lal, Tourism Museums and Monuments in India, Oriental Publishers, Delhi, 1947.

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. संग्रहालयों का अर्थ एवं प्रकार बताईये।
2. संग्रहालयों के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालिये।
3. संग्रहालयों का महत्त्व प्रतिपादित कीजिये।
4. भारतीय परिप्रेक्ष्य में संग्रहालयों की दशा का वर्णन कीजिए।
5. संग्रहालयों की वर्तमान दशा एवं दिशा पर अपने अनुभव प्रगट कीजिए।
6. किसी एक संग्रहालय के बारे में विस्तार से लिखिये।

इकाई - 9 : भारत का वन्यजीवन एवं अभयारण्य

रूपरेखा :

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 वन्य जीवन का अर्थ एवं महत्त्व
9.3 वनों एवं वन्य-जीवन संवर्द्धन की आवश्यकता
9.4 वनों एवं वन्य-जीवन की उपयोगिता
9.5 वनों एवं वन्य-जीवन का ह्रास
9.6 वन्य-जीवन संरक्षण प्रबंधन
9.7 वन्य-जीवन में कमी के कारण
9.8 राष्ट्रीय वन्य-जीवन कार्य योजना
9.9 नियन्त्रण के उपाय
9.10 वन्य-जीवन आवास (हेबीटेटस)
9.11 वन्य-जीवन एवं पर्यटन
9.12 अभयारण्यों एवं उद्योगों के प्रबंध सिद्धान्त
9.13 सारांश
9.14 उपयोगी साहित्य
9.15 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

भारत में प्राकृतिक सौन्दर्य विस्तार से फैला हुआ है। यहाँ की संस्कृति के उद्गम स्थल भी विशाल घने वन थे और भारत वनों एवं वन्य-जीवन से भरपूर देश रहा है। आजादी से पूर्व भी वनों का काफी क्षेत्रफल था लेकिन आजादी के बाद कृषि एवं अन्य कार्यों के लिए वनों की कटाई से वन-सम्पदा को भारी हानि पहुँची। वनों का हरा-भरा शान्त वातावरण एवं वहाँ आजादी के साथ विचरण करता वन्य-जीवन, दुनियाँ के उन विकसित देशों के लिए अत्यन्त आकर्षण का केन्द्र है जो अपने यहाँ के पर्यावरण को विकास के नाम पर खो चुके हैं। नष्ट प्राय: होते वन्य-जीवन, अनेक वन्य-जीवों की नस्लों के नष्ट प्राय: होने के खतरों और कम होते वनों के खतरों को भांपकर देश में बचे-खुचे वनों एवं वन्य-जीवन की रक्षा के लिए कुछ क्षेत्रों को अभयारण्य के रूप में घोषित किया। इन अभयारण्यों की सुरक्षा, संरक्षण एवं संवर्द्धन के अनेक कानून और नियम बने।

इस इकाई का लक्ष्य वर्तमान में भारत के वन्य-जीवन एवं अभयारण्यों से आपको परिचित करवाना है ताकि आप इनके महत्त्व एवं विशेषताएं बताने में सक्षम हो सकें। इनमें कुछ विशाल स्तर के हैं तो कुछ अपेक्षाकृत छोटे। कुछ अभयारण्यों की परियोजनाओं को टाईगर या बाघ या अन्य नष्ट होने के कगार पर खड़े वन्य-जीवों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के उद्देश्य से शुरू किया गया तो कुछ अभयारण्यों की अपनी विशिष्ट पहचान के कारण उनकी विशेष देखभाल पर ध्यान दिया गया है।

राजस्थान के अनेक अभयारण्यों पर दृष्टि डालें तो हर अभयारण्य की अपनी विशेषता है और रणथम्भौर जैसी टाईगर परियोजना या अभयारण्य का उदाहरण लें तो ज्ञात होगा कि अनेक विदेशी सैलानियों की सैरगाह के रूप में यह प्रसिद्ध है जहाँ पर्यटक नष्ट होते वनराज की एक झलक देखने के लिए आते हैं।

आजादी से पूर्व राजा-महाराजा या रईस लोग शिकार का शौक रखते थे और वे ही आमतौर से वन्य-जीवों पर गोली चलाते थे लेकिन वनों एवं वन्य-जीवन को बचाने के सख्त नियम थे। आम आदमी वन्य-जीवों का शिकार करते डरता था लेकिन भारत में आजादी के बाद वनों एवं वन्य जीवन के संरक्षण के प्रति सरकारी नीति में ढील के कारण विनाश का ऐसा चक्र चला कि आज देश में पर्यावरणीय संकट पैदा हो गया है और पारिस्थितिकीय सन्तुलन बिगड़ गया है।

ऐसे में वर्तमान पीढ़ी का यह दायित्व है कि वह भावी-पीढ़ियों को समृद्ध वनों से युक्त ऐसा वातावरण सौंपे जहाँ वन्य जीवन आबाद हों क्योंकि सम्पूर्ण पर्यावरणीय सन्तुलन में वनों एवं वन्य जीवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप भली प्रकार यह समझा सकेंगे कि वनों एवं वन्य-जीवन से युक्त अभयारण्यों का हमारे जीवन से क्या रिश्ता है और समृद्ध एवं सुखी भविष्य निर्माण के लिए इनका संरक्षण एवं संवर्द्धन कितना जरूरी है। विषय के विविध पक्षों पर भी आप भली प्रकार से प्रकाश डालने में समर्थ हो सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भारत के पक्षी-विहार एवं अभयारण्य विश्वभर में लोकप्रिय हैं। भारतीय संस्कृति में पशु, पक्षी एवं जीवों की रक्षा करना, धर्म का अभिन्न अंग रहा है महावीर एवं बुद्ध ने उन युगों में जब पशु-वध जैसी विकृत-प्रवृतियॉ पनपने लगी तो अहिंसा का संदेश देकर जीवों की रक्षा का अभियान चलाया। अशोक महान् ने भी विशेष पशुओं और पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध लगाये और वनों एवं वन्य-जीवन के संरक्षण के उपाय किये। भारत में जीवों की रक्षा, पशुओं की पूजा, पक्षियों को चुगा या दाना डालने और वृक्षों की पूजा जैसे कई ऐसे विधि-विधान आज भी जारी हैं जो यह दर्शाते हैं कि भारत में वनों एवं वन्य-जीवन की महत्ता को किस प्रकार प्राचीन काल से जीवन का एक अभिन्न अंग बनाया गया था। राजा-महाराजाओं ने वनों एवं वन्य-जीवन का सन्तुलन बनाये रखने के प्रयत्न किये यद्यपि वे भी कभी कभार शिकार के लिए वन्य जीवों को मारते थे। वनों को काटने और अवैध शिकारर करने पर पाबन्दी थी और ऐसा करने वालों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था थी। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वनों की कटाई और वन्य-जीवों के शिकार के अन्धाधुन्ध सिलसिले के कारण खतरे में पड़े वनों एवं वन्य-जीवों के संरक्षण के लिए अभयारण्यों की स्थापना की गई। राजस्थान में ग्रेट इन्डियन बस्टार्ड या सारस, असम में गेंडों, गुजरात में शेरों, राजस्थान में टाईगर आदि के संरक्षण के लिए अभयारण्य घोषित किये गये। दुनियाँ भर के लोगों के लिए ये अभयारण्य एवं वन्य-जीवन से आबाद वन आज आकर्षण के बहुत बड़े केन्द्र हैं और पर्यटन विकास के महत्त्वपूर्ण स्थल भी।

राजस्थान में तो वन्य-जीवन एवं वनों की रक्षा के लिए प्राणों तक का त्याग करने की परम्पराएं रही हैं। राजस्थान के जोधपुर सम्भाग में खेजड़ी के विश्नोई जाति के लोगों ने अब से 270-75 साल पूर्व वृक्षों के काटने के तत्कालीन रियासत के आदेशों के खिलाफ 363 स्त्री-पुरूषों ने

वृक्षों से लिपट कर और अपने प्राणों की आहुति दे दी लेकिन जीवित रहते वृक्षों की कटाई सहन नहीं की। विश्नोई जाति के लोग इतना ही अटूट प्रेम वन्यजीवों से भी करते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण है जबकि विश्नोई, जीवों की रक्षा करते हुए शिकारियों की गोली के शिकार हुए वृक्षों, वनों और वन्यजीवन के संरक्षण की ऐसी गौरवमयी मिसाल दुनियाँ में मिलना दुर्लभ है।

ऐसी समृद्ध परम्परा को ध्यान में रखते हुए राजस्थान में कई अभयारण्यों एवं शिकार निषिद्ध क्षेत्रों की स्थापना की गई है। राजस्थान में अभयारण्यों की एक लम्बी सूची है। देर आये, दुरूस्त आये, यदि भारत में बाघों की घटती संख्या और विनाश को रोकने के लिए देश की बाघ परियोजनाओं को ही लें तो राजस्थान में रणथम्भौर, सरिस्का, उत्तरप्रदेश में कोरबेट राष्ट्रीय उद्यान, मध्यप्रदेश में कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, उड़ीसा में सिमलीपाल राष्ट्रीय उद्यान, बिहार में पालमाऊ, तमिलनाडु में कालाकट मुन्दथराई, असम में मानास पश्चिम बंगाल में बक्सा, सुन्दरवन, केरल में पेरियार, महाराष्ट्र में मेघघाट, उत्तरप्रदेश में इन्द्रावती, आन्ध्र में नागरापन एवं अरूणांचल में नामदाफा परियोजनाओं के नाम प्रमुख हैं। राजस्थान में मनोहारी पखेरूओं एवं पक्षियों का विहार, भरतपुर का घना पक्षी विहार भी विश्व-प्रसिद्ध है।

जब बच्चे या बड़े चिड़ियाघरों में रंग-बिरंगे पक्षियों को फूदकते वन्य-जीवन को निहारते हैं तो एक आनन्द की अनुभूति होती है लेकिन अपने प्राकृतिक आवास अर्थात् घने वनों में पशु-पक्षियों की चहचहाट और हलचल तो आदमी को मंत्रमुग्ध करने वाली होती है। ज्यों-ज्यों मनुष्य ने कृषि कार्यों के साथ विकास किया, वह प्रकृति के मोहक वातावरण से दूर होता गया। आज भी आम जीवन की चकाचौंध से जब व्यक्ति ऊब जाता है तो उसकी इच्छा उन्हीं वनों एवं वन्य-जीवन की सुखद खामोशी में खो जाने की करती है। लेकिन इस रिश्ते को भूल जाने के कारण ही वन्य-जीवन असुरक्षित हुआ और उसका भारी नुकसान हुआ। वर्तमान जीवनशैली की त्रासदी के कारण अब फिर से व्यक्ति वनों एवं वन्य-जीवन के बीच पुराने रिश्ते तलाशने लगा है और इससे पक्षी विहार या अभयारण्यों की लोकप्रियता बढ़ने लगी है। इन पक्षियों और पशुओं के बीच जाकर जो सेमांचक आनन्दानुभूति होती है, उसको अभिव्यक्त कर पाना कठिन है।

इन्हीं सब कारणों से इस समय राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य एवं पक्षी-विहारों के प्रति पर्यटकों का आकर्षण बढ़ रहा है और इससे पर्यटन विकास में भारी योगदान मिल रहा है। इसलिए कहा जाता है कि वन्यजीवन और अभयारण्यों से सम्बन्धित पर्यटन उद्योग, एक बिना धुएं वाला, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं विशुद्ध पर्यटन है।

9.2 वन्य-जीवन का अर्थ एवं महत्त्व

वन्य-जीवन का अर्थ है - देश का सम्पूर्ण वह अकृषिकृत क्षेत्र जहाँ प्राकृतिक वनस्पतियाँ एवं वन्य-जीवन आबाद होता है। वन्य-जीवन अधिनियम 1972 के अनुसार "वन्यजीवन में पशु, मधुमक्खियाँ, तितलियाँ, मछलियाँ, पक्षी, कीड़े अर्थात् भूमि, जल आदि में अपना आवास रखते हैं, शामिल हैं।“

मनुष्य की जरूरतों और लालसा की पूर्ति के लिए अथवा अज्ञानतावश उदासीनता आदि कारणों से हमारे वनों एवं वन्य जीवन को भारी क्षति पहुँची है और वनों के क्षेत्र एवं वन्य पशु-पक्षियों की संख्या में भारी गिरावट आई है। अनेक वनस्पतियों एवं जीवों की नस्लें तो विनाश के कगार पर पहुँच गई है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि अनेक घने जंगल, अब विरान है। हरे-

भरे वन एवं वन्य-जीवन जो आम थे, अब दुर्लभ हो गये है। अब चीता, काले हिरण आदि के झुंडों को देखने के लिए लोग तरसने लगे हैं।

इन्हीं कारणों से अब इस दिशा में चिन्तन ने जोर पकड़ा है और अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय उद्यानों में वन्यजीवन की रक्षा एवं वनों के संरक्षण के प्रयास किये जा रहे हैं। दुनिया भर में आज पर्यावरण सन्तुलन, वनों एवं वन्य जीवन की रक्षा एवं संवर्द्धन के प्रति विभिन्न उपाय तेज हुए है। विश्व स्तर पर वनों एवं वन्य जीवन के संवर्द्धन के लिए व्यूह रचना तैयार की जा रही है। इस व्यूह-रचना का अर्थ है "मनुष्य द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के उपयोग का इस प्रकार प्रबंधन किया जाये ताकि इसकी क्षमता स्थायी रूप से बनी रह सके और यह वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों को स्थायी लाभ देता रहे तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहे। पौधे, पशु, पक्षी एवं नन्हे-नन्हे समस्त थलचर, जलचर और नभचर आदि जीवन्त-स्रोत एवं जिन तत्वों पर ये निर्भर है, आदि का संरक्षण एवं संवर्द्धन करके जीवन को सन्तुलित करना एवं पर्यावरण को जीवन योग्य बनाये रखना सम्भव है।

9.3 वनों एवं वन्य-जीवन संवर्द्धन की आवश्यकता

प्रकृति का अपना विविध रंगों वाला स्वचालित एक तरीका और तन्त्र है। इसका अपना एक सौन्दर्य और सन्तुलन होता है। एक-दूसरे पर अन्तर्निभर व्यवस्था के विभिन्न घटकों में मनुष्य भी एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इस धरती की सम्पूर्ण व्यवस्था एवं पर्यावरणीय तन्त्र का यदि एक भी घटक नष्ट हो जाये तो समूची व्यवस्था गड़बड़ा जाती है और इसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव मनुष्य पर भी पड़ता है। यही कारण है कि 1980 में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री ने भारत में 'विश्व संवर्द्धन व्यूह-रचना' की भारत में शुरूआत करने हुए कहा था कि "प्रकृति-संरक्षण में दिलचस्पी कोई भावात्मक मुद्दा नहीं है बल्कि उस सच्चाई को पुन: खोजना और स्थापित करना है जिसे भारत के ऋषि-मुनियों ने पहचाना और स्थापित किया था।" दरअसल भारतीय परम्परा से यह सीख मिलती है कि पृथ्वी पर समस्त जीवन, चाहे वह मनुष्यों का हो, पशुओं और पौधों का हो, आपस में इस प्रकार सम्बन्धित है कि किसी भी एक का असन्तुलन, दूसरे को प्रभावित करता है। प्रकृति इतनी सुन्दरता से सन्तुलित है कि इसमें हर छोटी से छोटी वस्तु या जीव का अपना विशेष स्थान है। हर वनस्पति और जीव का विशेष उपयोग और विशेष काम है।

इस स्वनिर्मित व्यवस्था में परिवर्तन का प्रभाव एक श्रृंखलाबद्ध प्रभाव होता है जो भले ही कुछ समय नजर न आये। लेकिन मनुष्य की त्रासदी यह है कि वह प्रकृति के इस रूप और स्वभाव को संयुक्त रूप से समझे बिना प्रकृति के घटकों को अलग-अलग रूप में देखता है। इसका खतरनाक परिणाम राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पड़ा है और विश्व-स्तर पर पर्यावरण असन्तुलन एवं प्रदूषण के खतरों ने विश्व-स्तर पर सम्मेलन करने तथा इस विकट स्थिति से उबरने के उपाय सोचने पर विवश कर दिया है।

इसलिए प्रकृति का संरक्षण, उसका संवर्द्धन, वनों एवं वन्य जीवन को बचाने का प्रश्न आम आदमी के लिए अपने अस्तित्व को बचाने से जुड़ गया है।

9.3.1 वन्य-जीवन की विविधता

वन्य-जीवन भारत में समृद्ध प्रकृति का एक सुन्दर वरदान है। यह संख्या, रंगों एवं विविधता में भी अत्यधिक समृद्ध है। यह रोमांचक जीवन, धारीदार जंगल के राजा शेर, बाघ, चीता, हाथी, गेंडा, काले हिरण, चितकबरे घब्बों वाले मासूम हिरणों, लोमड़ी, मोर, तितलियाँ आदि विभिन्न जीवों से बना हैं। यद्यपि पशु-पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर है लेकिन आज भी भारत में वन और वन्य-जीवन काफी बचा हुआ है।

9.3.2 पशु-पक्षी एतिहासिक सन्दर्भों में

भारत में पशु-पक्षियों एवं वनों के संरक्षण और संवर्द्धन की एक उज्ज्वल प्राचीन परम्परा रही है। 'अहिंसा परमो धर्म' भारतीय धर्म का मर्म रहा है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अभयारण्य का प्रसंग है। पशु और पक्षी जैसे हाथी, घोड़ा, मोर, तीतर, हंस, कोयल, मछली आदि संरक्षित प्राणी थे। रामायण में हनुमानजी का स्वरूप बन्दर का है। इसी तरह जटायु, मीन, कच्छुए, नरसिंह आदि मानव पशु संयुक्त रूप और देवों के देव गणेश, हाथी की सूँड वाले आदि के सन्दर्भों को टटोले तो लगेगा कि भारतीय संस्कृति में पशु और पक्षी कितने पूजनीय माने गये हैं। यही नहीं विष्णु की सवारी गरूड़, गणेशजी की मूसा या चूहा, शिव की नन्दी आदि के साथ मयूर, भैंसें, श्वान, मृग, उल्वर, हंस, सिंह, शेर, गर्दम आदि अनेक पशु-पक्षियों को देवी-देवताओं से जोड़ा गया है ताकि उनके प्रति मनुष्य का व्यवहार अच्छा रहे। भारत में विभिन्न राशियाँ इन्हीं जीवों के प्रतीक लिए हुए है। पंचतत्र की पशु-पक्षियों की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। गोवर्द्धन पूजा पर गायों, बैलों की पूजा और यहाँ तक की नागपंचमी को नाग की पूजा की जाती है। इन सब प्राचीन सन्दर्भों से स्पष्ट है कि किस प्रकार पशु-पक्षी भारतीय सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहे है और पशु-पक्षियों, वन्य-जीवन के प्रति भारत की परम्परा कितनी प्राचीन और समृद्ध रही है।

ऐतिहासिक परिदृश्य में देखें तो मुगलकाल (1526-1707) में बाबर ने सिन्ध में गेंडा और हाथी खोजे। इसी प्रकार कई वन्य-जीवों के पालन के प्रसंग मिलते हैं। अंग्रेजों के शासन में वन्य-जीवन में कमी आई। एक अंग्रेज सेनाधिकारी द्वारा 10 दिन में 80 शेरों का शिकार किया गया। एक दिन में 14 शेर मारे जाने के उदाहरण भी हैं। गिर के जंगलों में 21 वर्षों में 500-600 टाईगर मारे गये थे।

राजा महाराजाओं को भी शिकार का शोक था। परन्तु इन सबके बावजूद वन्य-जीवन काफी शेष रहा क्योंकि अवैध शिकार पर सख्ती से रोक थी। स्वतन्त्रता के बाद तो वनों एवं वन्य-जीवन की शामत आ गई। वन-व्यवस्था और कानून इतने ढीले पड़ गये कि हर किसी नकिसो मूक और निरीह प्राणियों पर बंदूकें तान ली। इस प्रकार आदमी ने स्वयं के ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारी जिसका परिणाम आज वर्षा में कमी, गर्मी का बढ़ना और स्वास्थ्य के लिए खतरे की घन्टी बने प्रदूषण की समस्या हमारे सामने खड़ी हैं।

9.4 वनों एवं वन्य-जीवन की उपयोगिता

इस प्रकार वनों एवं वन्य जीवन के महत्त्व को समझकर हमारे पूर्वजों ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से पशु-पक्षियों को जोड़ा। इनके अतिरिक्त भी ऐसे महत्त्वपूर्ण कारण हैं जो वनों एवं वन्य जीवन के संवर्द्धन के मूल्यवान कार्य के लिए प्रेरित करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वनों के वासियों इन विभिन्न पशु-पक्षियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि एक भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसकी अपनी विशेष आवश्यकता न हो। हर प्राणी वनों, वन्य-जीवन एवं सम्पूर्ण पर्यावरण के सन्तुलन को कायम रखने में कोई न कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। टाईगर को पारिस्थितिकीय सन्तुलन को बनाये रखने में अहम् माना गया है। कई जल-पक्षी, पानी को प्रदूषित होने से रोकते हैं। इगल, फाल्कोन, झील या काईट भी वातावरण को दूषित होने से बचाते हैं और मरे हुए पशु आदि का माँस खा जाते हैं।

प्रकृति में विभिन्न जीव, नियन्त्रण प्रणाली को संचालित रखते हैं। बायोलॉजिक कन्ट्रोल, पेड़-पौधों से धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए पत्ते, खाद का काम करते हैं। इन सारे तथ्यों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि प्रकृति में हर जीव और वनस्पति की अपनी अहम् भूमिका है जो समस्त पर्यावरणीय संतुलन को निरन्तर कायम रखती है। पक्षियों के पंख, पशुओं के अवशेष भी व्यर्थ नहीं होते। इन्हीं सब वैज्ञानिक तथ्यों का सम्पूर्ण अध्ययन करके भारतीय मनीषियो ने अरण्यों, अभयारण्यों, वनों और वन्य-जीवन की पावन आवश्यकता प्रतिपादित की थी।

9.5 वनों एवं वन्य-जीवन का ह्रास

16वीं सदी के बाद वनों एवं वन्य-जीवन में गिरावट का सिलसिला चला जिसके परिणामस्वरूप दुनियाँ में वन्य पशुओं की 120 प्रजातियाँ और पक्षियों की 225 प्रजातियाँ पूर्णत: समाप्त और लगभग 650 पशु-पक्षियों की नस्लें समाप्त हाने के किनारे पहुँच गई। भारत में भी तेज रफ्तार का धनी चीता, जंगली, बिल्ली, गुलाबी गर्दन की बतख, गेंडा आदि कई नस्लें समाप्त प्राय: हो गई हैं। वन्य-जीव संरक्षण के तहत 66 वन्यजीव नस्लो, 38 पक्षियों एवं 18 रेंगने वाले जीवों की प्रजातियों को समाप्त होने की स्थिति के कारण संरक्षित घोषित किया गया है।

9.6 वन्य-जीवन संरक्षण प्रबंधन

जैसा कि बताया जा चुका है कि वैदिक काल से प्रकृति भारतीय जीवन में ईश्वर तुल्य मानी गई है। उसके बाद भी वनस्पतियों एवं जीवों के अस्तित्व को उनका विशेष अधिकार माना गया है। इस दिशा में वन्य-जीवन के संरक्षण की पहली घोषणा अशोक महान् ने ईसा से 300 साल पूर्व 3 सदी में की थी। उन्होंने चट्टानों आदि पर पशु, पक्षियों की रक्षा के संदेश खुदवाये।

मुगलों ने अपने मनोरंजन के लिए शिकारगाह बनवाये और अंग्रेजी शासन के समय भी वन्यजीवन सुरक्षित था। राजा महाराजाओं ने भी वन्य जीवन के शिकार के लिए शिकारगाहें बनवाई। अवैध शिकार पर रोक लगाई और इसके लिए दण्ड व्यवस्था कायम की। पशु-पक्षियों को आहार देकर मनोरंजन भी किया जाता था लेकिन आजादी के बाद लोगों ने पशु-पक्षियों की आजादी पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिये। वनों एवं वन्य जीवन के नियम तो मौजूद थे परन्तु प्रबंधन इतना ढीला पड़ गया कि सदियों से शिकार पर लगी पाबंदियों से बन्द पड़ी बन्दूकों को हर किसी ने जंगलों की ओर तान दिया और अन्धाधुन्ध कुल्हाड़ियाँ वनों पर कहर बरपाने लगी। वनों एवं वन्य-जीवन के प्रति भारतीय चिन्तन बुरी तरह गड़बड़ा गया और अनेक लोग इस प्रकार प्राकृतिक सन्तुलन को समाप्त करके अपने ही विनाश को आमंत्रित करने लगे।

9.7 वन्य-जीवन में कमी के कारण

वनों एवं वन्य जीवन के विनाश ने अब पर्यावरणविदों को चौंका दिया है और भारत में ही नहीं बल्कि दुनियाँ भर में वनों, वन्य-जीवन आदि के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए आवाजें उठने लगी हैं। अत: अब इन कारणों का भी पता लगाया गया है जो वनों एवं वन्य जीवन के विनाश के लिए जिम्मेदार हैं ताकि संवर्द्धन का मार्ग प्रशस्त करने में सहायता मिले।

9.7.1 वन्य जीवों के आवास में परिवर्तन

वन्य-जीवन एवं वनों का अस्तित्व एक दूसरे से करीब से जुड़ा है। इन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। वन्य-जीवों से वनों की समृद्धि है तो वनों के बिना वन्य जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए वन्य जीवन में आई कमी के लिए सबसे बड़ा कारण विशेषज्ञों के अनुसार इनके आवास या हेबिटेट अर्थात् जहां उनका मूल आसरा है, उसका नष्ट होना है।

खेती के लिए जंगलों को काटते रहने का सिलसिला और लकड़ी या अन्य उपयोग के लिए वन्य-सम्पदा का दोहन करने की प्रवृति इतनी बढ़ी कि लोग संरक्षित वन्य-जीव उद्यानों एवं अभयारण्यों तक में अतिक्रमण करने लगे। बड़े-बड़े बाँधों और परियोजनाओं से भी धरती का रूप बिगड़ा है। उद्योगों के विकास ने भी वनों को भारी नुकसान पहुँचाया है। इस प्रकार व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों से धरती का नक्शा ही बिगाड़ दिया है। इससे वन्य-जीवन में मनुष्य की दखल बढ़ी है और सम्पूर्ण प्राकृतिक पर्यावरण गड़बड़ा गया है। इसके साथ ही नई तकनोलॉजी और औद्योगिक विकास के कारण वायु, भूमि, जल आदि पर्यावरणीय तत्त्व प्रदूषित हुए हैं। इस प्रकार कम होते प्राकृतिक वातावरण एवं प्रकृति के कारण वन्य जीवों का जीवन दुष्कर हुआ है और उनकी वृद्धि रूकी है।

9.7.2 कीटनाशकों का छिड़काव

बड़े पैमाने पर पक्षियों एवं जीवों के विनाश का कारण कृषि कार्यों में उपयोगी रसायनिक जहरीली दवाओं का छिड़काव है जो धीरे-धीरे वन्य-जीवन में भारी कमी लाया है। डी.डी.टी. इन जीवों के शरीर में पहुँचकर इनकी मृत्यु का कारण बनता है। इस कारण कुछ देशों में ऐसी दवाओं के छिड़काव के बजाय अन्य उपाय अपनाये गये हैं।

9.7.3 लाभ के लिए शोषण

टाईगर एवं अन्य जीवों की खाल एवं अगों को बेचकर लाभ कमाने के लिए अवैध शिकार के बेरोकटोक सिलसिले ने भी वन्यजीवन का विनाश किया है।

9.7.4 प्राकृतिक सन्तुलन में बाधा

प्रकृति के सन्तुलन में बाधाओं के कारण भी वन्यजीवन का हास हुआ है। यही कारण है कि विशेष प्रयासों अर्थात् अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय उद्यानों के निर्माण से सन्तुलित वातावरण उपलब्ध कराने की प्रक्रिया ने जोर पकड़ा है।

9.7.5 अवैध शिकार

वनों एवं वन्य-जीवन की सुरक्षा के अपर्याप्त साधनों एवं प्रयत्नों के अभाव के कारण आधुनिक हथियारों और साधनों से युक्त शिकारी, वन्य जीवन के लिए सबसे बड़ा खतरा साबित हुए हैं। जंगल में शिकारी विभिन्न तरीकों से जाल बिछाकर वन्य पशुओं की मौत के उपाय करते हैं। ऐसे मामले सामने आये हैं जबकि वन्य पशुओं जैसे शेर की खाल आदि की तस्करी करने वाले तस्करों ने कई वन्यजीवों को मौत के घाट उतार दिया है। शिकारी कुत्तों, तेज रोशनी वाली जीपों आदि विभिन्न तरीकों से अवैध शिकार की प्रवृति भी बहुत बड़ा कारण रही है।

9.7.6 पालतू पशुओं की चराई

रणथम्भौर जैसे कई वन्य जीव अभयारण्यों में पालतू पशुओं की चराई की समस्या के कारण वन्यजीवों को पर्याप्त भोजन नहीं प्राप्त होता और साथ ही कई प्रकार की बीमारियों से भी वे ग्रस्त हो जाते हैं।

9.7.7 फसल की रक्षा

अनेक किसान अपनी फसल के लिए वन्य-जीवों को खतरा मानते हैं और वे इन पर बन्दूकें तान लेते हैं। इस प्रकार वन्यजीवन एवं वनों को नष्ट करने वाले इन कारणों की तह में जाकर, इनका निदान कारगर ढंग से करने से ही इस वन-सम्पदा का संरक्षण एवं संवर्द्धन सम्भव हो सकता है।

9.8 राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्ययोजना

यह देखा गया है कि सांस्कृतिक विरासत हो या प्राकृतिक एवं वन्य जीवन धरोहर, सरकार या लोगों में चेतना तब पैदा होती है जब बहुत कुछ नष्ट हो जाता है और खतरे की घन्टी बजने लगती है। इस सन्दर्भ में 1980 में भारत के प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में वन्यजीवन परामर्श संगठन बना।

इन्डियन बोर्ड ऑफ वाईल्ड लाईफ ने 1983 में इस दिशा में कार्य योजना बनाई। इसमें वन्य जीव क्षेत्रों के संरक्षण के लिए नेटवर्क तैयार करना, वन्यजीवों के प्राकृतिक आवासों की सार-सम्भाल एवं संरक्षित क्षेत्रों का प्रबंधन करना, खतरे में आई प्रजातियों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था करना, केपटिव ब्रीडिंग कार्यक्रम, वन्यजीवन सम्बन्धी शैक्षणिक प्रसार, शोध एवं नियन्त्रण, राष्ट्रीय स्तर पर कानून बनाना, राष्ट्रीय संवर्द्धन व्यूह रचना तैयार करना एवं स्वयंसेवी संगठनों का सहयोग लेना आदि शामिल किये गये।

9.9 नियन्त्रण के उपाय

वन्यजीवन संरक्षण एवं नियन्त्रण के लिए कई उपाय किये गये। इनमें निम्नलिखित बिन्दु शामिल किये गये-

1. राष्ट्रीय स्तर एक प्रकार का कानून अर्थात् वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 लागू किया गया।

2. कोर्बेट राष्ट्रीय उद्यान में 1973 में "प्रोजेक्ट टाईगर' लागू की गई। उसके बाद 16 वाद्य परियोजनाएं (टाईगर प्रोजेक्ट्स) लागू की गई जिसका परिणाम यह हुआ है कि नष्ट हो रहे बाघों की संख्या बढ़कर 3000 हो गई है।
3. वन ही वन्य-जीवन का प्राकृतिक आवास है। इसलिए वन (संवर्द्धन) अधिनियम 1980 पारित किया गया। इसमें वनभूमि को अन्य कामों के लिए काम में लिए जाने पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये।
4. पर्वतीय पारिस्थितिकी रक्षा के लिए 1983 में पर्वतों पर एक हजार मी. की ऊँचाई तक वृक्ष काटने पर पाबन्दी लगाई गई।
5. भारत में उपलब्ध मगरमच्छों की तीन नस्लों के संरक्षण के लिए मगरमच्छ संरक्षण परियोजनाएं बनाई गई।
6. भारत ने पाँच अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में विभिन्न प्रस्तावों पर हस्ताक्षर किये।
7. देहरादून में 1962 में राष्ट्रीय वन्य जीव संस्थान की स्थापना की गई ताकि वन्यजीवन प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जा सके।
8. राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की स्थापना की गई एवं 12 बायोस्फेयर रिजर्व बनाये गये।
9. बाघ (टाईगर) को राष्ट्रीय पशु एवं मोर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया गया। राजस्थान में चिंकारा - राज्य पशु, ग्रेट इन्डियन बस्टार्ड (सारस) - राज्य पक्षी, खेजड़ी और सेहिड़ा को राज्य वृक्ष घोषित किया गया।

वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 को वन्यजीवन संरक्षण का छाता (अम्ब्रोला) बनाया गया जिसमें इस अधिनियम की व्याख्या के साथ पशु-पक्षियों के शिकार पर पाबन्दी, दण्ड व्यवस्था, अपराधों की रोकथाम, आदि कई प्रावधान किये गये।

9.10 वन्यजीवन आवास (हेबिटेट्स)

वन्य जीवन का अस्तित्व एवं विकास, केवल उनके प्राकृतिक आवास में ही सम्भव है। इसी धारणा को लेकर देश में तय नियमों के तहत राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल पार्कस्) बनाने का काम शुरू किया गया ताकि हर स्थान की परिस्थितियों के अनुरूप विशेष वन्यजीवों का संरक्षण किया जा सके।

अभयारण्यों की संरचना का अर्थ यह है कि अभयारण्य, वे क्षेत्र हैं जहाँ वन्य-जीवों की शिकार, मारने या उन्हें कैद करने आदि का पूर्ण प्रतिबन्ध होता है। इनकी सुरक्षा के लिए वाइल्ड-लाईफ वार्डन जिम्मेदार बनाये गये। इनमें चराई, भ्रमण आदि का नियमन किया गया।

देश में 368 अभयारण्य हैं और बेहतर प्रबंधन वाले अभयारण्यों को राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल पार्क) घोषित करने के नियम भी बनाये गये। 1988 तक राजस्थान में 22 वन्यजीव अभयारण्य घोषित किये गये जिनका क्षेत्रफल 8678-77 वर्गमील था। गेम रिजर्व भी 1972 के अधिनियम में घोषित किये जाने का प्रावधान है जहाँ लाइसेंस लेकर ही शिकार की इजाजत हो सकती है। किसी भी स्थान की वनस्पतियों एवं वन्यजीवन की विविधता बनाये रखने के लिए यूनेस्को ने बायोस्फेयर कार्यक्रम भी बनाया है। बाघों के संरक्षण के लिए विश्व वन्यजीव फन्ड (डब्ल्यू. डब्ल्यू. एफ.) धन भी मुहैया कराता है। देश के विभिन्न प्रदेशों में विविधतापूर्ण अनेक

राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल पार्कस्) एवं अभयारण्य है। यह विरासत भी पर्यटन विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

9.11 वन्य-जीवन एवं पर्यटन

वन्य-जीवन का यों तो हमारे जीवन एवं अस्तित्व से प्राचीन काल से निकट का सम्बन्ध रहा है और इसका संरक्षण मानव अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। लेकिन वर्तमान युग में आदमी उन मुद्दों पर अधिक ध्यान देता है जो भौतिक दृष्टि से उसके लिए लाभदायक एवं उपयोगी हों। अत: नष्ट प्राय: होते वनों एवं वन्यजीवन के संरक्षण एवं संवर्द्धन की ओर विशेष ध्यान दिये जाने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि लम्बे समय से भारत की प्राचीन संस्कृति एवं समृद्ध परम्परागत जीवनशैली की विविधता से साक्षात्कार करने आने वाले अधिकांश देशी-विदेशी पर्यटकों के रूझान में भी कुछ फर्क आया है।

दुनिया में भौतिक एवं वैज्ञानिक चकाचौंध के एकरस वातावरण से ऊब कर वह कुछ समय उन्मुक्त पक्षियों की चहचहाट, उड़ान और वन्यजीवन की सरसता तथा खामोश हरे-भरे वातावरण में रोमांच अनुभव करना चाहता है। यही कारण है कि वनों एवं वन्यजीवन से आबाद राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की ओर दुनियाभर के पर्यटकों की भारी संख्या में रूचि बढ़ रही है और इस कारण भारतीय राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की पर्यटकों के आगमन से रौनक बढ़ने लगी है।

अब देश की प्रगति में वनों एवं वन्यजीवन पर्यटन को महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। लम्बे समय से चिड़ियाधर (ज़ू) बच्चों एवं बड़ों के लिए वन्यजीवों के निरीक्षण एवं अध्ययन के लिए आकर्षण का केन्द्र रहे हैं लेकिन पशु-पक्षियों को इस प्रकार मनुष्य के मनोरंजन के लिए पिंजरों में बन्दी रखने के खिलाफ प्रवेन्सन ऑफ क्रूअल्टी अगेस्ट एनिमल्स सोसायटी जैसे कई संगठन अब आवाज उठा रहे हैं। साथ ही सुन्दर वन्य वातावरण में विचरण करते वन्य पशुओं एवं उड़ान भरते पक्षियों का रोमांच ही कुछ अलग होता है। इस बजट से भी अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय उद्यानों की कायापलट होने लगी है। साथ ही अभयारण्य एवं उद्यान, आर्थिक लाभ के भी स्रोत हैं। इससे देश की प्रगति में भी योग मिलता है।

9.11.1 आर्थिक लाभ

वन्य-जीवन पर्यटन, एक ऐसा स्रोत है जिस पर कम से कम खर्च करके अधिक से अधिक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। केन्या (अफ्रीका) को वन्यजीवन पर्यटन से सालाना आय 50 मिलियन डालर होती है। यह राष्ट्रीय आय वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। अमेरिका के राष्ट्रीय उद्यानों का भ्रमण करने वाले 50 मिलियन पर्यटक वहाँ की ग्रोस नेशनल आय में 16 प्रतिशत का योग देते हैं। भारत में दयिगम (जम्मू एवं कश्मीर), कोर्बेट पार्क (यू.पी.), हरियाणा का सुल्तानपुर, जल्दापाड़ा, पं. बंगाल, काचीरंगा मानस, असम, नन्दकानन, चितका, उड़ीसा, गिर, गुजरात, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, राजस्थान के केवलादेव, रणथम्मौर एवं सरिस्का आदि राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्यों की हजारों पर्यटक यात्रा करने लगे हैं। इस प्रकार इनमें आकर्षण बढ़ा है लेकिन अभी भी इनके माध्यम से पर्यटन में वृद्धि की भारी गुंजायश मौजूद है।

9.11.2 शैक्षणिक महत्व

राष्ट्रीय पार्कों एवं अभयारण्यों का शैक्षणिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। किस प्रकार पेन्थर, वृक्ष पर चढ़ता है और किस प्रकार पशु-पक्षियों की दिनचर्या, प्रजनन आदि चलते हैं। इन वन्य जीवों का व्यवहार कैसा होता है। इनके आपसी रिश्ते कैसे चलते हैं आदि वन्यजीवन के सेमांचक जीवन का अध्ययन करना भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जो वन्यजीवों से आबाद उद्यानों एवं अभयारण्यों में ही सम्पन्न होना सम्भव है।

9.11.3 जनजागृति एवं प्रचार-प्रसार

भारत में अति प्राचीनकाल से वनों एवं वन्यजीवन के महत्त्व की परम्परा रही है लेकिन आम आदमी इसकी उपयोगिता के प्रति सजग नहीं है। उसमें एक प्रकार का अज्ञान है। वन्य जीवन की उपयोगिता से तो वे बहुत अधिक अनभिज्ञ है। किसान केवल यह सोचता है कि हिरणों के झुण्ड उसकी फसल चौपट करते हैं। बाघ उसके पालतू पशुओं को मार देता है। इसके अलावा अभयारण्यों एवं उद्यानों में उसके पशुओं की चराई पर रोक है। ऐसे में वह सोचता है कि उसके लिए अपनी खेती और पालतू पशु महत्त्वपूर्ण हैं, न कि अभयारण्यों उद्यानों के जीव। इस प्रकार की धारणा के कारण वनों एवं वन्य प्राणियों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में रूकावट आती है।

यही कारण है कि इस दिशा में जनजागृति एवं प्रचार-प्रसार के लिए पोस्टर्स, बेनर्स लगाये जाते हैं और वन्यजीवन सप्ताह का 1 अक्टूबर से हर साल आयोजन किया जाता है। बहुत कुछ इस दिशा में जा रहा है। लेकिन अभी भी समाचार-पत्रों, रेड़ियो, टी.वी. आदि विभिन्न माध्यमों से इस सन्दर्भ में सघन प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। अमेरिका, पश्चिम जर्मनी आदि देशों में हर सप्ताह वार्ताओं के प्रसारण की व्यवस्था है। हमें भी और अधिक वन्यजीवों एवं वनों के मोहक दृश्यों से युक्त रंगीन पोस्टर, चित्र छपवाकर, विभिन्न प्रकार की प्रतिस्पर्द्धाएं आयोजित करके समय-समय पर जनजागृति अभियानों में तेजी लानी चाहिए। विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण एवं वन संरक्षण पर बल दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार आने वाली पीढ़ियों में वनों एवं वन्यजीवन के प्रति लगाव एवं दायित्व पैदा करना चाहिए। यद्यपि इस दिशा में बहुत कुछ किया जा रहा है परन्तु अभी भी नकारात्मक सोच को समाप्त करने एवं एक अनुकूल प्रकृति संवर्द्धन का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर पूर्ण करना बाकी है। विशेषज्ञों का मानना है कि जो कुछ प्रयास वनों एवं वन्य जीवन संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए किये जा रहे हैं, वे सन्तोषजनक नहीं हैं और आज की परिस्थितियो को मध्यनजर रखते हुए यदि आने वाले पाँच सालों में कारगर उपाय नहीं किये गये तो स्थिति इतनी विकट हो जायेगी कि पछताने के अलावा कुछ शेष नहीं रहेगा।

राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों की संख्या और संरचना की और अधिक सुदृढ़ बनाने की कार्य-योजना बनानी चाहिए। स्थिति की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए। इस समय देशभर में 66 राष्ट्रीय उद्यान हैं। पहला राष्ट्रीय पार्क 1935 में हेली नेशनल पार्क, उत्तरप्रदेश में बना जिम कोर्बेट राष्ट्रीय उद्यान कहा जाता है। देश के अन्य प्रान्तों में भी कई राष्ट्रीय उद्यान हैं। राजस्थान में रणथम्भौर एवं केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, ये दो उद्यान हैं। इनमें विविध प्रकार के वन्यजीव पाये जाते हैं। इसे 1980 में तथा केवलदेव को 1973 में राष्ट्रीय पार्क घोषित किया गया। जयपुर का नाहरगढ़ पार्क, डेजर्ट पार्क, जैसलमेर आदि अभी अभयारण्य ही हैं।

9.12 अभयारण्यों एवं उद्यानों के प्रबंधन सिद्धान्त

अभयारण्यों एवं उद्यानों का प्रबंधन भी एक महत्त्वपूर्ण विषय है और इस दिशा में देहरादून में मानव संसाधन बेहतर उपलब्ध कराने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी है।

प्रबंधन के अन्तर्गत उद्यानों के पौधों, वनस्पतियों एवं वन्य-जीवों पर ध्यान रखा जाता है ताकि स्वचालित गतिविधियां एवं जटिल पारिस्थितिकीय व्यवस्था सुचारू रूप से जारी रहे। राष्ट्रीय उद्यानों का तात्पर्य है कि एक ऐसा पर्यावरण जिसका संरक्षण मनुष्य द्वारा किया जाता है और इस कारण उनमें प्रबंधकीय क्षमता आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। प्रबंधन के अन्तर्गत कई बातें आती हैं।

9.12.1 क्षेत्रों (जॉन्स) में बाँटना

उद्यानों को क्षेत्रों में बाँटने की मुख्यतया दो धारणाएं हैं। इनमें एक तो सघन वन क्षेत्र होता है जिसे 'वाइल्डरनेस' क्षेत्र कहते हैं और दूसरा परिवर्तन क्षेत्र या ट्रांजिशन क्षेत्र। सघन वन क्षेत्र में कोई विकास कार्य नहीं किया जाता। यह ऐसा क्षेत्र होता है जिसमें जहाँ-तहाॅ पगडंडियाँ या अस्थायी आश्रय स्थल होते हैं। इनमें पहाड़ियाँ, वुडलेन्ड्स, जंगली भूमि आदि होते हैं जहाँ जल एकत्रित होने वाले गड्ढों पर वन्य जीव एकत्रित होते हैं। इस क्षेत्र के बाहर के भाग में पर्यटकों के लिए आवास सुविधाओं, संचार आदि की व्यवस्था होती है जिसे ट्रांजिशन क्षेत्र कहते हैं। इसे बफर-जॉन भी कहते हैं जहाँ पर्यटकों के लिए सुविधाएं भी रहे और यह उस सघन वन्य-क्षेत्र की बाड़ या रक्षा-कवच का काम भी करे।

9.12.2 योजना

उद्यानों की योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता उसकी प्राकृतिक विशेषताओं के संरक्षण को दी जाती है। यह वन्यजीवन, आम लोगों के शिक्षण, मनोरंजन आदि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है। सम्पूर्ण प्राकृतिक परिदृश्य को प्रकृति ने जिस रूप में ढाला है, इससे कोई छेड़छाड़ नहीं की जाती। उसे और अधिक आकर्षक बनाने जैसा कोई उपाय नहीं किया जाता। उधार का बाहरी हिस्सा जनता की सुविधाओं के लिए सुरक्षित रखा जाता है। मुख्य वन क्षेत्र के पास आगन्तुकों के वाहन खड़े करने, विश्राम स्थल, पिकनिक स्थल, शिविर स्थल के लिए स्थान निश्चित किये जाते हैं लेकिन ये वन्य क्षेत्र के बिल्कुल नजदीक नहीं रखे जाते। जहाँ समुद्री तट हैं या उनके पीछे सागर तट है, वे दिन में ही उपयोग किये जा सकते हैं।

उद्यानों में विजिटर्स सर्विस सेन्टर्स जहाँ ठहरने, होटलस् शिविर, रेस्तरां आदि की व्यवस्था होती है, उनके लिए मोहक वातावरण में व्यवस्था की जाती है लेकिन यह सब प्राकृतिक विशेषताओं का अतिक्रमण न करे, इसका ध्यान रखा जाता है। उद्यान के स्टाफ के लिए भी समुचित प्रबंध किया जाता है लेकिन वे प्राकृतिक विशेषताओं एवं आकर्षण के प्रमुख स्थलों से अलग रखे जाते हैं। उद्यानों के पास प्राकृतिक विशेषताओं को छूये बिना वातावरण में घुलमिल जाने वाले रंगों एवं भौगोलिक स्थिति के रूप में समा जाने वाली मकान या इमारत की डिजायन रखी जाती है।

इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि उद्यानों के आसपास ऐसी कोई औद्योगिक या अन्य गतिविधि न हो जो उद्यान के जल, मिट्टी या वायु को प्रदूषित करे। खदानों या वाणिज्य

गतिविधियाँ भी निषिद्ध होती है। आवास, बनावटी मनोरंजन के साधनों का विकास, सड़कों का निर्माण आदि को भी उद्यान के वातावरण के लिए निषिद्ध रखा जाता है।

9.12.3 वन संचालन

कोई भी एक वन नीति राष्ट्रीय उद्यानों के वनो पर लागू नहीं होती। वायल्डरनेस जंगल, पूर्णतया प्राकृतिक जंगल होते हैं। उद्यान क्षेत्र में जो पौधे नहीं पाये जाते, उन्हें लगाने की वहाँ सख्त मनाई होती है। वन संचालन के अन्तर्गत जंगली लकड़ी या उत्पादों को वाणिज्य प्रयोग के लिए ले जाने की सख्त मनाई होती है। लेकिन अनुमति वाले वन संचालन में सूखे या किसी रोग से ग्रस्त लकड़ी आदि को हटाया जा सकता है जो जंगल में रोग फैला सकते हैं।

9.12.4 वन्य जीवन प्रबंधन

उद्यानों में वन्य जीव और पक्षी तो सबसे बड़े आकर्षण के केन्द्र होते हैं। इसलिए वन्य जीवों के संरक्षण के उपाय किये जाते हैं तथा राष्ट्रीय उद्यान में अवैध शिकार करना गैर जमानती अपराध माना जाता है। उद्यान क्षेत्र में पगडंडियाँ, स्थान-स्थान पर ताल-तलैयों में टैंकर्स आदि से जल की व्यवस्था भी की जाती है। यदि वर्षा ऋतु में पर्याप्त जल संग्रहण न हो।

9.12.5 उद्यान में जाने के मार्ग

उद्यान तक जाने के लिए रेल लाईन को ठीक नहीं माना जाता है। सड़क या कच्चे मार्गों की व्यवस्था की जाती है। सड़कों की चौड़ाई एवं उनकी स्थिति मध्यम रखी जाती है जहाँ वाहनों की गति नियन्त्रित रखना आवश्यक है। उद्यानों को उनके नजदीक के नगरों से बसों से जोड़ा जाता है। खुली जीपें, घोड़े, हाथी का भी उपयोग किया जाता है। यह सब भौगोलिक स्थितियों के अनुसार होता है। उद्यान में आमतौर से खुली जीप या ट्रक काम में लिए जाते हैं।

9.12.6 मनोरंजन

उद्यानों में नगरीय मनोरंजन के विभिन्न प्रकारों के विकास की इजाजत नहीं होती। तैराकी, हाईडिंग राईडिंग, बोरिंग, स्काईग आदि की इजाजत दी जा सकती है। मनोरंजन पार्क्रों जैसे ध्वनि प्रदूषण युक्त वातावरण को रोकने के सभी उपाय किये जाते हैं।

9.12.7 उद्यानों का संरक्षण

राष्ट्रीय उद्यानों पर सदैव खतरा मंडराता रहता हे। इसलिए संरक्षण एवं सुरक्षा के कड़े कानून लागू किये जाते हैं। उद्यान में कार्यरत कर्मचारियों को अपने अधिकार क्रियान्वित करने की इजाजत होती है। उनके पास हथियार एवं संचार साधन भी होते हैं जो वे उद्यान में शिकार करने वाले समाजकंटकों से निपटने के लिए रखते हैं। पर्यटकों की सुरक्षा का भी वे ध्यान रखते हैं। हिंसक वन्यजीवों के खतरों से पर्यटकों को बचाने के लिए भी वे गश्त करते हैं।

9.12.8 शिक्षा एवं शोध

लोगों के लिए शोध एवं शिक्षा की दृष्टि से तो कई सुविधाऐं हैं। इसलिए विशेषकर राष्ट्रीय उद्यानों के सघन वन क्षेत्र में वन्य जीवन पर कोई प्रभाव न पड़े, इस दृष्टिकोण से किसी शोध परियोजना की इजाजत नहीं दी जाती है यदि अत्यन्त जरूरी न हो।

इस प्रकार विशेष प्रबंधन के साथ संरक्षित उद्यानों एवं अभयारण्यों का प्रबंधन किया जाता है और इनकी प्राकृतिक अवस्था एवं पर्यावरण को बनाये रखते हुए पर्यटन के विकास में योग देने के प्रयास किये जाते हैं।

9.13 सारांश

साधारणतया, वन्य जीवन से तात्पर्य वनों एवं घने जंगलों में पाये जाने वाले वन्य-पशुओं से है। लेकिन वन्य-जीवन की संरचना, वन्य-पशुओं एवं पौधों से मिलकर होती है। इसलिए इस सम्पूर्ण संरचना का संवर्द्धन वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के भविष्य से जुड़ा हुआ है। यह वनों एवं वन्य-जीवन की सम्पदा प्राचीनकाल से बनी हुई है और आज भी बहुलता एवं विविधता के साथ शेष है। वेदों से पूर्व भी और वैदिककाल से सदैव इस प्राकृतिक धरोहर के संरक्षण एवं संवर्द्धन की परम्परा जारी है।

लेकिन भारत में मुगलों एवं अंग्रेजों के आने के बाद इस पर खतरे मंडराने लगे। ये नस्लें हिंसा और शिकार को अपना शौक और मनोरंजन का साधन मानती थी। लेकिन दुख की बात यह रही कि भारत की स्वतन्त्रता के बाद तो वनों एवं वन्य-जीवन के प्रति उदासीनता का रवैया अपनाया गया। यही कारण है कि धरती पर मनुष्य के अस्तित्व को बचाने तथा बची हुई वनों एवं वन्यजीवन सम्पदा के संरक्षण एवं संवर्द्धन की आवश्यकता पैदा हुई। पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी की सुरक्षा का अर्थ है कि मानव जीवन की बीमा और नियोजन की भूमिका निभाना।

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय सन्तुलन के महत्त्व को रेखांकित करते हुए सजग लोगों ने हाल ही के दशकों में खतरे के मुंहाने खड़े वनों एवं खतरों की चपेट में आकर नष्ट प्राय: होते वन्य-जीवों को बचाने की मुहिम छेड़ी और इस दिशा में एक चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया है। वनों एवं वन्य जीवन के नाश के लिए मानवीय गतिविधियाँ जिम्मेदार है। गरीबों की जरूरतों एवं सम्पन्न लोगों के लालच और इन दोनों वर्गों की अज्ञानता के परिणामस्वरूप वन एवं वन्य-जीवन उजड़ा है। प्रकृति चक्र इन कारणों से गड़बड़ा गया है।

यही कारण है कि सरकार को राष्ट्रीय वन्य-जीवन कार्य-योजना बनानी पड़ी। वन्य-जीवन को बचाने के लिए कई नियन्त्रण कदम उठाये गये हैं। वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972 का आधार वन्य-जीवों के आवास अर्थात् प्राकृतिक वनों की रक्षा पर टिका है। इसी सन्दर्भ में बायोस्फेयर रिजर्व, प्रोजेक्ट टाईगर रिजर्व क्रोकोडायल प्रोजेक्ट आदि परियोजनाएं लागू की गई ताकि वन्य-जीवन को पुनः आबाद किया जा सके।

इसी प्रसंग में राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों का प्रबंध किया गया। राष्ट्रीय उद्यान का यह अर्थ नहा है कि वहाँ बहुलता से वन्य-जीव हों बल्कि वन्य-जीवन के संरक्षण एवं संवर्द्धन की सम्भावनाओं को देखते हुए इस दिशा में कदम उठाये जाते हैं। जैसा कि बताया गया है कि देश में 66 राष्ट्रीय उद्यान हैं और राजस्थान में दो - रणथम्भौर (सवाईमाधोपुर) और केवलादेव (भरतपुर)।

वन्य-जीवन से सम्बन्धित पर्यटन उद्योग, एक ऐसा उद्यम है जहाँ कोई धूल और धुँआ नहीं होता और न अधिक पूँजी नियोजन करना पड़ता, वर्तमान में इस दिशा में पर्यटकों का आकर्षण बढ़ रहा है। यह सब होने के बावजूद देश में वन्य-जीवन की महत्ता के प्रति चेतना का अभाव है। इसलिए विभिन्न सूचना माध्यमों के उपयोग से प्रचार-प्रसार की जरूरत है और लोगों

को इस ओर शिक्षित करना आवश्यक हो गया है। ऐसा प्रभावपूर्ण ढंग से हम कर सकें तो आने वाली पीढ़ी को एक हरा-भरा भविष्य सौंपने में सफल हो सकेंगे।

9.14 उपयोगी साहित्य

1. आर. बेदी पर आर. बेदी, इन्डियन वाईल्ड लाईफ, बृजवासी प्रिन्टर्स, नई दिल्ली, 1984
2. जनरल ई.पी., दी वाइल्ड लाईफ ऑफ इन्डिया, कोलिन्स फोन्टाना बुक्स, लन्दन, 1969
3. कैलाश सांखला, 'टाईगर', कोलिन्स, लन्दन, 1978
4. एच.एम. पटेल, ए. पोलिशी फॉर नेशनल कन्जर्वेशन, एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1980
5. एस.एच. प्रास्तर, दी बुक ऑफ इन्डियन एनिमल्स, बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, बम्बई, 1971

9.15 अभ्यास प्रश्न

1. वन्य जीवन से आप क्या समझते हैं? क्या इसमें वन, पेड़-पौधे आदि भी शामिल हैं?'
2. वन्य-जीवन एवं वनों के संरक्षण एवं संवर्द्धन की आवश्यकता क्यों पड़ी?
3. वन्य-जीवन को बचाने के लिए तैयार की गई राष्ट्रीय कार्य-योजना के लक्ष्यों पर प्रकाश डालिए?
4. राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्यों में क्या अन्तर है?
5. यदि आपको किसी राष्ट्रीय उद्यान का निदेशक बना दिया जाये तो आप उसका प्रबंधन किस प्रकार करेंगे?

इकाई-10 : भारत की हस्तकलाएं

रूपरेखा :

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 एतिहासिक पृष्ठभूमि
10.3 भारतीय हस्तशिल्प की विशेषताएं
 10.3.1 लोककला या लोक चित्रांकन
 10.3.2 कलात्मक आभूषण
 10.3.3 दरियाँ और नमदे
 10.3.4 लकड़ी का हस्तशिल्प
 10.3.5 धातु हस्तशिल्प
 10.3.6 खिलौनों और गुड़ियों का हस्तशिल्प संसार
 10.3.7 टेक्सटाईल्स
 10.3.8 कशीदाकारी एवं शालों का शिल्प
 10.3.9 सोने-चाँदी का जरी हस्तशिल्प
 10.3.10 हाथीदाँत हरतशिल्प
 10.3.11 लोकचित्रण
 10.3.12 मॉटी के बर्तन (पौट्री)
 10.3.13 प्रस्तर या पत्थर हस्तशिल्प
10.4 हस्तशिल्प : जीवन्त संस्कृति का प्रतीक
10.5 सारांश
10.6 कुछ उपयोगी साहित्य
10.7 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत की विविध हस्तकलाओं के सृजन और विविध कलात्मक एवं रंग-बिरंगे संसार से परिचय कराना है। जैसा कि आप जानते हैं कि देशी-विदेशी पर्यटक जिस स्थान का भ्रमण करते हैं, वहाँ से कुछ विशिष्ट प्रकार की ऐसी कलात्मक वस्तुएं अपने साथ ले जाना चाहते हैं जो अद्भुत हो और जिनमें स्थान विशेष की कला की खुशबू बसी हो। इस प्रवृति को पर्यटन के सन्दर्भ में 'कल्चर शॉपिग' अर्थात् सांस्कृतिक खरीददारी की संज्ञा दी गई है क्योंकि किसी भी समाज के भीतर छिपे रंग, रचनात्मकता और उसके भाव उसके हस्तशिल्प में बसे होते हैं। उसकी पसन्द, संस्कृति और सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानान्तरित होती कला का स्वाभाविक प्रस्फुटन हाथों के स्पर्श के साथ हस्तकलाओं में व्यक्त होता है।

हस्तशिल्प की समृद्ध परम्परा भारतीय सांस्कृतिक जीवन का सदियों से अंग रहा है और कला, संस्कृति और पर्यटन के सन्दर्भों से जुड़े लोगों को यह ज्ञान जरूर होना चाहिए कि हस्तशिल्प की भारत में क्या विशेषताएं हैं। भारत हस्तशिल्प की दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न है।

भारतीय जीवन में हस्तशिल्प की रचनात्मक संवेदनाएं लम्बे समय से निरन्तर चलते रहने के कारण अत्यन्त उन्नत दशा में है। यह हस्तशिल्प की विविधता और कुशलता देश की बहुत बड़ी थाती है। मिट्टी, पत्थरों, चमड़े, लकड़ी, काँच, पीतल, ताम्बा, सोना, चाँदी, टेक्सटाईल आदि को भारतीय कलाकारों ने अनेक शिल्प से पूर्ण कलाकृतियों का रूप दिया है जो मनमोहक हैं।

इस पक्ष को भी हम पर्यटन और संस्कृति से अलग नहीं कर सकते। इसलिए इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भारतीय हस्तशिल्प की परम्परा से अवगत कराने में सक्षम हो सकें, इसी लक्ष्य के साथ इकाई में हस्तशिल्प के विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास किया गया है।

10.1 प्रस्तावना

भारत में हस्तशिल्प कारीगरी या कुशलता की परम्परा ही नहीं है बल्कि सदियों से संवेदनाओं, भावनाओं और जीवन में सौन्दर्य बोध की रचना का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ने वाली प्रक्रिया है। उन विविध हस्तशिल्प कलाओं की सामग्री का एक कारण यह भी है कि भारत में कला केवल सजाने के लिए नहीं होती। इसे जीवन की उपयोगिता से जोड़ा गया है और यह माना गया है कि मनुष्य जीवन की सार्थकता 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' में है। इस प्रकार ये हस्तशिल्प कलाएं हमारी श्रेष्ठतम और सुन्दरता की भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं।

यदि कला को जीवन से अलग कर दिया जाये तो वह जीवन्त कला नहीं रह जाएगी। कला में जनजीवन और लोकजीवन की घड़कने बसी हैं। ये उनकी जीवन्त अभिव्यक्ति है और हमारी परम्पराओं, मान्यताओं, भीतर के रंग-रूपों, प्रतिकों आदि की पत्थरों, धातु, वस्त्रों, कागज आदि पर अंकित सरस अभिव्यक्ति है।

भारत में जिस प्रकार विविध क्षेत्रों, प्रदेशों में विभिन्न भाषाएं, रीति-रिवाज, त्यौहार, उत्सव आदि हैं, उसी प्रकार हस्तशिल्प की हर स्थान की अपनी विशेषताएं, अपने रंग-रूप और मोहक परिवेश हैं। यही कारण है कि चाहे वस्त्र हों - रंग-बिरंगी वेशभूषा हो, पत्थर, धातु, सोने-चाँदी, मिट्टी आदि की कलाकृतियाँ और हस्तशिल्प का सामान हो, देशी-विदेशी पर्यटकों का मन मोह लेते हैं और वे संस्कृति की समृद्धि से भरपूर परम्परा की पहचान कराने वाले हस्तशिल्प की वस्तुएं अपने साथ ले जाने की इच्छा को रोक नहीं पाते हैं।

इस सन्दर्भ में पर्यटकों को देश के शिल्प, स्मारकों, भवनों, संग्रहालयों, हवेलियों और महलों आदि के सांस्कृतिक वैभव से परिचित कराने के साथ-साथ उन्हें देश के हस्तशिल्प की विशेषताओं के बारे में जानकारी देने की आवश्यकता होती है। इसी परिप्रेक्ष में हस्तशिल्प के सेमांचक एवं सौन्दर्य से भरपूर संसार में इस इकाई में सैर करने का प्रयास किया गया है।

10.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भले ही हस्तकलाओं के केन्द्र इस समय पर्यटन स्थल के रूप में नहीं पहचाने जाते हैं लेकिन वे पर्यटन-स्थलों पर पहुँच जाते हैं या हस्तशिल्प और पर्यटन के स्थल कहीं-कहीं एक स्थान पर ही केन्द्रित हैं। बरहाल, हस्तशिल्प हमारे सांस्कृतिक पर्यटन के आकर्षक अंग हैं। पर्यटक, अपने या अपने परिजनों और मित्रों के लिए इन्हें उपहार के तौर पर या संजोकर रखने के लिए भारी मात्रा में खरीदते हैं। साथ ही कुछ पर्यटक हस्तशिल्प निर्माण की प्रक्रिया देखने में भी रूचि रखते हैं और वे हस्तशिल्प केन्द्रों पर भ्रमण के लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए जयपुर के पास सांगानेर में कपड़ों की छपाई की समृद्ध परम्परा या बनारस और कांचीपुरम् जैसे जुलाहों या

'वीवर्स' के हृदयस्थलों पर अनेक पर्यटकों का जमघट लगता है। महाबलीपुरम् या सवाई मलाई की ब्रोंज की कारीगरी, मैसूर, दिल्ली, आगरा या राजस्थान की हाथीदाँत की बारीक और मोहक कारीगरी भी पर्यटकों को लुभाती हैं। बैंगलोर और मैसूर की चन्दन की कलाकृतियाँ भी उन्हें खींचकर ले जाती हैं। एल्विन ने इसे 'सांस्कृतिक खरीद' कहा है।

भारत के इतिहास से ज्ञात होता है कि पुराने समय में विभिन्न रियासतों या राज्यों के राजा या नरेश, जब भारत भ्रमण या तीर्थाटन के लिए जाते थे तो आते समय विभिन्न स्थानों के कारीगरों को अपने राज्य में आने के लिए आमंत्रित करते थे। उन्हें अपने यहाँ जमीन या रोजगार देते। उनका संरक्षण करते और प्रोत्साहन देते थे। साथ ही अनेक प्रकार की कशीदाकारी, रंगाई, ज्वैलरी की कारीगरी आदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी महिलाओं द्वारा पोषित एवं संरक्षित किये जाने की परम्परा रही है।

इससे भी हस्तशिल्प की उन्नति में गहन योग मिला है। दुनियाँ में जयपुर नगर, भारत का पेरिस माना जाता है जिसकी बसावट, शिल्प और सौन्दर्य, दुनिया के लाखों पर्यटकों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। जयपुर के पूर्व नरेशों ने अनेक स्थानों से विभिन्न हू नर के कारीगरों को प्रोत्साहित करके जयपुर को हस्तशिल्प का एक रोमांचक नगर बनाया। ग्रामीण क्षेत्रों में भी हस्तशिल्प की परम्परा का विकास हु आ। गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि सभी प्रदेशों की अपनी-अपनी विशेष हस्तकला परम्पराएं हैं और भारत में आकर कोई भी व्यक्ति इन हस्तकलाओं के सेमांच से अभिभूत होता है।

भारत में हस्तकलाओं का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितनी यहाँ की मानव सभ्यता। विस्तृत और समृद्ध भारतीय हस्तशिल्प, जनजीवन की संवेदनाओं की स्वतः प्रस्फुटित रचनात्मक अभिव्यक्ति है। हस्तशिल्प को हम भारतीय संस्कृति के भौतिक-स्वरूप की संज्ञा दे सकते हैं। सदियों से भारतीय संस्कृति के जीवन्त बने रहने का कारण भी यही है कि यह जन-जन की श्वांस में बसी हैं और उनकी हर कुशलता और कार्य में वह प्रगट होती है।

दरअसल, हस्तशिल्प में समाई भारतीय मानस की कल्पना और कुशलता ने सदियों से लोककलाओं और हस्तशिल्प परम्परा को निरन्तर सींचा है। कलाएं सौन्दर्य बोध का प्रतीक होने के साथ-साथ जीवनचर्या का साधन भी रही। इसलिए हस्तशिल्प परम्पराओं ने घरेलु उद्योग या कोटेज इन्डस्ट्री का रूप धारण किया। इन हस्तशिल्प कलाओं में रोमांचक कारीगरी, डिजायन्स या रूपांकन, सरलता, रंगों का चमत्कार और एक प्रकार का 'क्लासिक' या शास्त्रीय स्पर्श है जो हर किसी के मन और हृदय को छूने की क्षमता रखता है।

मशीनीकरण के बढ़ते प्रभाव और अंग्रेजी शासन में मशीनों के सस्ते माल ने भारतीय बाजार पर हमला किया और भारतीय कुटीर उद्योग को भारी धक्का लगा। ग्रामीण कारीगर बेरोजगार होने लगे और उन्होंने रोजी-रोटी के लिए अन्य कार्य या मजदूरी करना शुरू कर दिया। लेकिन अनेक ऐसे आघातों के बावजूद आज भी भारतीय जीवन की उपयोगिता और आवश्यकताओं से संलग्न ये हस्तकलाएं मन मोहित कर देती है।

भारतीय हस्तशिल्प का वर्णन शब्दों में कर पाना कठिन है। इसके रोमांच, सौन्दर्य और कारीगरी के चमत्कारों को देखना और अनुभव करना है तो बनारस की साड़ियों की भव्यता और कुशलता, सूरत, अहमदाबाद, बनारस के रेशम के वस्त्रों की चमक, बंगाल की मलमल, मिर्जापुर की दरिया या 'कार्पेट' आदि के साथ भारत में जयपुर या अन्य स्थानों पर हाथीदाँत, चाँदी, सोने

के आभूषणों, हीरे-जवाहरात के काम, ताम्बे, पीतल, चन्दन की लकड़ी आदि की कला को देखिये और आपको दाँतों तले अंगुली दबानी होगी कि आखिर यह रोमांच से पूर्ण कारीगरी इन हस्तशिल्पकर्मियों ने कहाँ से सीखी। यह किसी स्कूल या विद्यालय में नहीं पढ़ी गई बल्कि भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुरूप पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानान्तरित हुई है और लगता है कारीगरों के खून में बसी है। यह हस्तशिल्प उनके हृदय की धड़कन हैं और एहसास का इजहार है। यह जीवन्त स्पर्श ही तो है जो सरलता में ही सौन्दर्य का अद्भुत खजाना भर देता है।

भारत में हस्तशिल्प के निरन्तर विकास के कई कारण हैं। एक तो यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिवारों या समुदायों द्वारा पोषित परम्परा रही है। दूसरा, हस्तशिल्प का सम्बन्ध जीवन की उपयोगिता और आवश्यकता से जुड़ा रहा है। हस्तशिल्प आम आदमी की रोजी-रोटी का जरिया भी रहा है और लोगों की आवश्यकता एवं मांग भी। यह घरेलू उद्योग के रूप में भी पनपा है और लम्बे समय तक तत्कालिन नरेशों का भी हस्तशिल्प उद्यम को संरक्षण और प्रोत्साहन मिला है। यह बात अलग है कि स्वतन्त्रता के बाद भारत में इस परम्परा के संरक्षण और प्रोत्साहन को अपेक्षित गति नहीं मिल सकी है। हस्तशिल्प आज भी जीवित है क्योंकि यह एक परम्परा है और हमारे जीवन में परम्पराओं की पकड़ गहरी है। वे कुछ कमजोर भले ही हो जायें परन्तु टूटती नहीं है। परम्पराएं गतिमान हैं। इसलिए हस्तशिल्प की परम्पराएं भी निरन्तर चली आ रही हैं। कलाओं के निर्माण के लिए समस्त उपकरण और साधन तैयार करने की कुशलता भी साथ ही साथ तैयार हुई है। इस प्रकार अपने आप में भारतीय हस्तशिल्प आत्मनिर्भर है। यह लाखों लोगों की जीवनचर्या का माध्यम भी है। इस उद्यम में रोजगार की अपार सम्भावनाएं और निर्यात के अनेक अवसर मौजूद हैं जो देश की विदेशी मुद्रा अर्जित करने का बड़ा साधन हो सकता है। यद्यपि भारतीय हस्तशिल्प की दुनियाँ के कई देशों में मांग भी है और निर्माण भी होता है, लेकिन इस क्षेत्र में विकास की भारी गुंजाइश आज भी बनी हुई है।

भारतीय हस्तशिल्प की विभिन्नता और उसकी समृद्धि की एक झलक हमें भारत के अलग-अलग क्षेत्रों की हस्तशिल्प कृतियों एवं विशेषताओ में मिलती हैं।

10.3 भारतीय हस्तशिल्प की विशेषताएं

भारतीय हस्तशिल्प का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह उतना ही विविध और विस्तृत है जितना भारतीय लोकजीवन। इसलिए संक्षेप में भारतीय हस्तशिल्प को समेटना सरल नहीं है लेकिन कुछ हस्तशिल्प कलाओं की चर्चा करके इसकी भव्य परम्परा का हम अनुमान लगा सकते हैं।

भारत में फैले हस्तशिल्प में कागज, लकड़ी, धातुओं, कपड़ों या वस्त्रों आदि से बनी कृतियाँ और वस्तुएं होती हैं जिनका जीवन के अनेक कार्यों में उपयोगिता भी है और वे अपनी उपस्थिति और सजावट से घर-संसार को सुन्दरता भी प्रदान करते हैं। इन हस्तशिल्प परम्पराओं की चर्चा ही इनकी विशेषताओं और महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम है।

10.3.1 लोककला या लोक चित्रांकन

चित्रकला या चित्रांकन की शिक्षा वैसे तो विद्यार्थियों को विद्यालयों और महाविद्यालयों में दी जाती है लेकिन भारत में यदि भीत्ति-चित्रण, त्यौहारों एवं उत्सवों पर घर के आंगन-दीवारों आदि पर चित्रांकन देखें तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि कितनी कल्पना, कुशलता और

सौन्दर्य की रचना घर में बालिकाएं और महिलाएं करने में पारंगत हैं जो उन्होंने किसी विद्यालय में नहीं सीखी बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे अपनी माँ से सीखती आई हैं और यह भी सैद्धान्तिक रूप से नहीं बल्कि व्यावहारिक स्तर पर मध्यप्रदेश, राजस्थान, केरल या कोई अन्य प्रदेश हो, ऐसी परम्पराएं भिन्न-भिन्न रूपों में सर्वत्र व्याप्त है। जब यही कुशलता कपड़े या कागज पर चित्रित होती हैं तो हस्तशिल्प की नायाब कृति बन जाती है।

रंग-बिरंगी डिजायनों और रूपों को लोकजीवन में परम्परागत सौन्दर्यबोध और रहस्यों से पूर्ण विश्वासों को अभिव्यक्ति दिये जाने की भारत में लम्बी परम्परा है। बिहार की मधुबनी लोक कला, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के पट्टचित्रण की परम्परा, राजस्थान में नाथद्वारा की पिछवई चित्रशैली, पड़ या फड़चित्रण आन्ध्रप्रदेश का निर्मल-चित्रण आदि का भारतीय लोकचित्रण परम्परा की विशाल-कलादीर्घा की, चर्चा करना ही पर्याप्त होगा जो अपने विषयों और आत्मा की दृष्टि से विविध होते हुए भी एक हैं लेकिन इनकी चित्रण शैलियाँ, रंगरूप और चित्रफलक अपनी-अपनी विशेषताएं और सन्दर्भ लिए हुए है। इन चित्रों की जड़ें या प्रेरणा स्रोत भारतीय धर्मग्रन्थों, पुराण-कथाओं, कृष्ण लीलाओं इत्यादि में है। देवी-देवताओं का चित्रण विभिन्न रूपों में किया गया है। ऐसी शैली की अपनी तकनीक, अपना परिवेश है और यही विविधता हर किसी को आकर्षित और रोमांचित करती है। कागज, कपड़े, लकड़ी, धातु, पत्थरों आदि पर भी वे शैलियाँ अंकित की जाने लगी है और इनका मोहक रूप परम्परागत रूप से कागज, कपड़ों आदि के साथ-साथ अन्य प्रकार के फलक या वस्तुओं पर भी अपना सौन्दर्य बिखरने लगा है।

10.3.2 कलात्मक आभूषण

मोहक सरलता, उत्कृष्ट कारीगरी और अनमोल कुशलता से भरपूर भारतीय आभूषणों की विविधता और सौन्दर्य दर्शकों को अपनी ओर अनायास ही खींचने की क्षमता रखते हैं। चाहे कश्मीर की अंगूठी, चूड़ियाँ या ब्रासलेट हो, कानों के झूमके हों या पीतल पर पॉलिश की गई वस्तुएं, सब कुछ सुन्दर और विशेष होता है और कला का कमाल भी। हर प्रकार के आभूषणों पर कश्मीर की वादियों के फूलों और प्रकृति के रंगों की चमक दिखाई देती है। हाथीदाँत पर लघुचित्रण या मिनियचर पेन्टिंगस् का भी जवाब नहीं। कानों के झूमके, गले के हार और चूड़ियाँ, विविध रूप और रंगों, डिजायनों और कारीगरी, के नमूने होते हैं। हाथीदाँत की वस्तुओं पर दुर्लभ लघुचित्रण मुगलकाल में आई पर्सियन कला परम्परा के प्रभाव से अछूती नहीं है।

आभूषणों के निर्माण करने और लाख या अन्य प्रकार की चूड़ियाँ आदि के निर्माण में राजस्थान में जयपुर, जोधपुर की अपनी अलग पहचान है। इन्द्रधनुषी रंग इन कृतियों पर साकार हो जाते हैं। काँच के टुकड़ों, मोती-मणियों की चमक लाख की चूड़ियों पर अपनी चमक से चमत्कृत कर देते हैं। महाराष्ट्र के चाँदी से बने बारीक या 'इन्ट्रीकेट' कौशल के आभूषण, उड़ीसा के फूलों-पत्तियों, सितारों के आभूषण, दिल्ली की भारी चाँदी की चूड़ियाँ, हार, अंगूठियाँ, लॉकेट, परम्परागत कमल के रूपाकार, बादाम या आम के रूपों में आभूषण, हैदराबाद के बटन, कफलिंकस और झूमके जो चाँदी या काले ओक्साईड धातु से बने होते हैं, अपनी विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों के आभूषणों की कारीगरी, रूप-रंग आदि अपनी अलग-अलग पहचान के साथ भारतीय आभूषण परम्परा की समृद्धि के परिचायक है।

10.3.3 दरिय्याँ और नमदे

भारत में विभिन्न रंगों, डिजायनों और कारीगरों से पूर्ण दरिय्यों और नमदों की लम्बी परम्परा है और देश में ही नहीं विदेशों में भी इनकी भारी मांग है। समय के साथ अपनी परम्पराओं को बनाये रखते हुए इस कला में परिवर्तन हुए हैं और इसमें आधुनिक रंग-रूप भी परम्परा के साथ निश्चित हैं। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी पिता से पुत्र तक परिवारों में चली आ रही कला है। यह हस्तशिल्प भारत के सात राज्यों में 20 प्रमुख केन्द्रों पर बड़े पैमाने पर जारी है और इसके विभिन्न रूप ग्रामीण जीवन में भी व्याप्त है।

भारत में दरियों और नमदा निर्माण का हस्तशिल्प यहाँ के कारीगरों के इस साधारण दर्शन पर आधारित है कि प्रकृति के बदलते रूप को हस्तशिल्प या क्राफ्ट में ढाला जाये। इससे विभिन्न रूप, डिजायनें और रंगों की सृष्टि करना आसानी से सम्भव हो सकता है।

भारतीय हस्तशिल्प की यह विशेषता भी है कि पौराणिक कथानकों, रूमानी लोककथाओं, आसपास की वनस्पतियों, और आकारों के शिल्पियों के मानस पर पड़े प्रभावों को वे अपने कौशल के द्वारा अपनी कला में ढाल दें। अभिव्यक्ति का यह व्यावहारिक पक्ष है। चाहे बंगाल की चित्रशैली हो या बिहार की मधुबनी चित्रशैली या दरिय्याँ और नमदा निर्माण सर्वत्र यह प्रवृति दिखाई देती है।

इस पृष्ठभूमि में देखें तो दरियाँ और नमदे भले ही फर्श की शोभा है लेकिन उन पर रंग-संयोजन और सृजनात्मक अभिव्यक्ति की परम्परागत छाप के साथ कारीगरों की कुशलता दृष्टिगोचर होती है। अलग-अलग तरीकों से बनी दरिय्याँ और नमदे लम्बाई और चौड़ाई में छोटी साईज में भी मिलते हैं और बहुत बड़े आकार में भी।

भारत में अलग-अलग प्रमुख केन्द्रों की दरियाँ और नमदे प्रसिद्ध हैं जैसे मिर्जापुर, मछोही, आगरा, गोपीगंज, जयपुर, बीकानेर, पानीपत, जम्मू और कश्मीर, अमृतसर, ग्वालियर, वारांगल ओबरा (बिहार), मद्रास आदि। इस प्रकार विभिन्न स्थानों और प्रान्तों की अपनी विभिन्न हस्तशिल्प परम्परा और विशेषता है। आगरा, अमृतसर और जयपुर में उच्चकोटि के नमदों और दरिय्यों का निर्माण होता है। इन स्थानों के परम्परागत अनुभव और कारीगरी का जवाब नहीं। कश्मीर घाटी भी ऐसे बेहतरीन उत्पादों के लिए प्रसिद्ध है। नमदों पर की जाने वाली कारीगरी या डिजायनें मन मोह लेती हैं।

10.3.4 लकड़ी का हस्तशिल्प

भारतीय जीवन में मनुष्य की जरूरतों की पूर्ति और उपयोगिता की दृष्टि से धातु या लकड़ी का सामान तैयार करने वाले शिल्पियों ने लकड़ी पर अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को खोदना या अंकित करना शुरू किया और इस प्रवृति के परिणामस्वरूप अनेक काष्ठ-कलाओं का प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे काष्ठ-कलाओं के चमत्कारों ने इसे एक उद्यम का रूप दे दिया। लकड़ी या काष्ठ के हस्तशिल्प के लिए इसकी कुछ किस्में ही उपयुक्त मानी जाती है।

ऐसी काष्ठ-सामग्री जो हस्तशिल्प का रूप देने के लिए उपयुक्त भी हो और चलाऊ भी हो। विभिन्न प्रकार के काष्ठ पर नाजुक कलात्मक कारीगरी और विभिन्न रूपांकन और 'कार्निंग' आदि की विशेषताओं के साथ शिल्पगत या आर्किटेक्चरल स्पर्श देकर काष्ठ-कृतियों की रोमांचक रचना परम्परा, भारतीय शिल्प का एक रोचक अध्याय है। काष्ठ के प्रमुख हस्तशिल्प में पेनल्स,

फर्नीचर, यूटेन्सिल्स या बर्तन और सजावटी सामान आदि उत्पाद तैयार करने की भारत में विस्तृत परम्परा है।

विभिन्न प्रदेशों की अपनी कारीगरी और विशेषताएं हैं। उत्तरप्रदेश में सहारनपुर के गहराई से काष्ठ में खुदे रूपांकन, विभिन्न प्रकार के कारीगरी के नमूने, छोटी स्टूल, टेबल टॉप, शानदार आधुनिक रूपों में फर्नीचर, काँच के लिए फ्रेम आदि में पंजाब का नाम भी प्रसिद्ध है। समृद्ध बारीक कारीगरी की विभिन्न डिजायनों वाले लकड़ी में काटे गये या 'इन्ग्रेव' किये गये कलात्मक काष्ठ सामान या हस्तशिल्प के निर्माण में कश्मीर का भी जवाब नहीं है। कश्मीर में परम्परागत काष्ठ-कृतियों के साथ टेबल लैम्प, फर्नीचर आदि की वर्तमान जरूरतों और अभिरूचि का शिल्प तैयार किया जाता है। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में भी कुर्सी, सोफा, टेबल आदि के साथ परम्परागत काष्ठ-हस्तशिल्प के साथ आधुनिक रूप मिलते हैं।

भारतीय परिवेश में कहीं भी चीजों को दोहराते रहने की प्रवृति नहीं है। हर स्थान और क्षेत्र की अपनी रचनात्मकता है। आन्ध्रप्रदेश में त्रिरूपीय या थ्री-डाईमेन्शनल मूर्तियाँ, पेनल्स, कप, सॉसर्स, फोर्क आदि काष्ठ हस्तशिल्प के भोंगिर एवं उदयगिरी में आश्चर्यचकित कर देने वाली काष्ठ-कृतियाँ मिलेगी। तमिलनाडु में सजावटी एवं उपयोगिता का काष्ठ-शिल्प भी अपनी विशेषताऐं लिए हु ए हैं।

यही नहीं जनजाति क्षेत्रों जैसे मणिपुर, त्रिपुरा, असम और नागालैंड में परम्परागत काष्ठ-कृतियों का अपना अलग ही रंगरूप है। भारतीय कारीगरों की इन इलाकों में एक खास बात यह भी है कि वे केवल धरातलीय प्रभावों से प्रेरित होकर ही कला की रचना नहीं करते बल्कि सुपरनेचुरल तत्त्वों के उनके भीतर समाये प्रतीकों को भी वे काष्ठ-फलक पर जीवन्त अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। बॉस से भी विविध प्रकार के काष्ठ-हस्तशिल्प का उपयोगितापूर्ण एवं सजावटी सामान तैयार किया जाता है।

बिहार और पश्चिम बंगाल में काष्ठ-कला का भिन्न स्वरूप है। यहाँ काष्ठ पर गोदी गई आकृतियाँ, काष्ठ-आभूषण, बॉक्स, चेस्ट, लेम्प स्टेन्ड केबिनेट, फर्नीचर अपनी बारीक कारीगरी और सौन्दर्य से अभिभूत कर देते हैं।

राजस्थान, पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु, मैसूर आदि में चन्दन की खुशबू के साथ चन्दन की लकड़ी की रोमांचक मूर्तियाँ, सजावटी सामान और नाजुक एवं महीन कारीगरी से युक्त हस्तशिल्प भी दुनियाँ और देश के लोगों का मन मोह लेते हैं।

ताम्बे के तारों, पीतल के तारों, हाथीदाँत, धातुओं आदि के काष्ठ-कृतियों के भीतर कार्विंग के माध्यम से गूंथने और पिरोने तथा इस प्रकार की तकनीक से काष्ठ हस्तशिल्प को नया रूप देने की मोहक परम्परा भी देश के कुछ क्षेत्रों की विशेषता है। गुजरात का काष्ठ-शिल्प भी बेजोड़ है।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, त्रिपुरा, असम, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश आदि प्रदेशों की हस्तशिल्प परम्परा की विविधता को देखें तो काष्ठ हस्तशिल्प का एक विविधताओं से पूर्ण सौन्दर्यमय संसार उपस्थित होगा जो भारत की हस्तशिल्प क्षमता का परिचय देने के लिए काफी होगा।

10.3.5 धातु हस्तशिल्प

मोहनजोदड़ो में अब से पाँच हजार वर्ष पूर्व बने धातु के उपकरण और ब्रोंज क्री आकृतियों की उपलब्धता यह बताती है कि धातु की कारीगरी कितनी उन्नत रही है। भारत में विभिन्न रूपों, तकनीक और शैली में कारीगर विभिन्न धातुओं का विशाल स्तर पर हस्तशिल्प तैयार करते हैं जो रोचक भी है, और कला की दृष्टि से आश्चर्यचकित कर देने वाला भी। इनमें परम्परागत एवं समसामयिक रंग-रूप, दोनों का ही बाहुल्य है। ताँबे, पीतल, पर विभिन्न आकृतियों का अंकन, फूल-पत्तियों, प्राकृतिक दृश्यों के रंग-बिरंगे दृश्यों आदि के हस्तशिल्प को देखकर लगता है कि भारतीय हस्तशिल्पियों की कुशलता न केवल हसाशिल्प निर्माण में ही थी बल्कि नाजुक संवेदनाओं के स्तर पर उनकी कल्पना शकित भी कितनी अद्भुत थी कि कठोर धातुओं के फलक पर वे मुलायमों भावों के रंग-रूप अंकित करने में सक्षम थे।

उत्तरप्रदेश में वाराणसी या मुरादाबाद और राजस्थान में जयपुर की पीतल की कारीगर का विस्तृत एवं रोचक संसार चमत्कृत कर देता है। गुलदस्ते हों, टेबल टोप, लेम्प, ट्रे, केन्डल स्टैण्ड, डिनर सैट, घंटियाँ, फ्रूट डिसेज, प्लेट्स, ट्रे, मग, सिगरेट केस, पेपरवेट, कैलेन्डर, घर में काम आने वाली वस्तुएं या सजावट का सामान, इतनी वस्तुऐं, इतने रंग-रूप और इतनी विविध कुशलता और हस्तशिल्प रचना कौशल, देखकर भारतीय हस्तशिल्प की समृद्ध परम्परा और प्राचीनता से परिचित होना एक सरल बात है।

हर स्थान की धातु पर कारीगरी की अपनी शैली है। मुरादाबाद की इन्ग्रेविंग में साधारण फूलों के पेटर्न वाला हस्तशिल्प और आरनामेन्टल हस्तशिल्प शामिल है। जयपुर की शैलियों में चिकन, मारोठी एवं बिदर शैली है। दक्षिण में बिदर और हैदराबाद में विशेष शैली है जिसे बिदेरी शैली कहते हैं इसका सौन्दर्य जेट-लेक ऑक्साईड की पृष्ठभूमि पर चाँदी या सोने का एक दूसरे से विरोधी प्रभाव, सौन्दर्य की रचना करता है।

धातु की मूर्तियाँ, भारतीय संस्कृति के आध्यात्म स्वरूप और लम्बी परम्परा का परिचय देती हैं। स्वामी मलाई, मद्रास, मदुरई और बैंगलोर की चोला परम्परा, मुलायम प्रभाव की सृष्टि करने वाली यहाँ की मूर्तियाँ अत्यन्त मनोहारी है। इनमें कुछ ठोस, कुछ भीतर से पोली और कुछ ऑक्साईड होती हैं। दक्षिण भारत का यह ब्रोन्ज हस्तशिल्प अपने एवं गुणवत्ता के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध है। कुछ प्रदेशों में ताम्र, पीतल आदि धातुओं की प्रागैतिहासकालीन शैली पर आधारित कृतियाँ भी लुभावनी होती है। हैदराबाद, मुरादाबाद, जयपुर और वाराणसी हस्तशिल्प के भारत के प्रमुख केन्द्र माने जाते हैं।

10.3.6 खिलौनों और गुड़ियों का हस्तशिल्प संसार

खिलौनों और गुडियों को बच्चों के मनोरंजन का साधन माना जाता है और पश्चिम की दुनियाँ में मैकेनिकल खिलौनों की भरमार है। वहाँ ये मनोरंजन तक सीमित हैं लेकिन भारत की अपनी पहचान और विशिष्ट संस्कृति है जिसकी झलक खिलौनों और गुड़ियों तक में मिलती है।

ये खिलौने, गुड़ियाँ आदि चाहे परम्परागत हों, वस्त्रों से बने हों, धातु या प्लास्टिक से, इनका बच्चों के मनोरंजन, सजावट आदि के लिए ही उपयोग नहीं है बल्कि इनमें भारतीय सन्दर्भों में यहाँ की परम्पराओं, संस्कृति एवं जनजीवन की भी रचना की गई है और वे हमारी सांस्कृतिक विभिन्नता के प्रतीक भी हैं और इनका शैक्षणिक महत्व भी है। खिलौनों में भारतीय

लोकजीवन की अभिव्यक्ति भी हुई है। देश की महान् विभूतियों से सम्बन्धित खिलौने और गुडियों का भी अपना संसार हैं। वाराणसी के लकड़ी के खिलौने/कोन्हापल्ली के मांटी के खिलौने/पटना और पूना की कपड़ों से बनी रंग-बिरंगी गुड़ियाँ, जबलपुर के पशु-आकृतियों के खिलौने, कलकत्ता की टेराकोटा आकृतियाँ आदि अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

10.3.7 टेक्सटाईल्स

कपडों की बुनाई, छपाई, रंगाई अर्थात् टेक्सटाईल्स के हस्तशिल्प की तो अत्यन्त समृद्ध परम्परा अपनी विविधता मोहक रंग-रूपों एवं परिवेश के कारण दुनियाँ भर में बेमिसाल है। भारत के टेक्सटाईल हस्तशिल्प की धाक दुनिया के टेक्सटाईल बाजार पर अपनी अनेक विशेषताओं के कारण बनी हुई है। जयपुर हो या कोई अन्य पर्यटन-स्थल, वहाँ हजारों प्रदेशी सैलानी भारतीय रंग-बिरंगे विविध हस्तशिल्प के वस्त्रों की दुकानों पर मंडराते नजर आयेंगे। भारतीय जीवन में हर ग्रामीण इकाई आत्मनिर्भर होती थी और हर गाँव अपनी जरूरत की वस्तुएं अपने यहाँ ही बनाता था। जुलाहे वस्त्र-निर्माण में हजारों वर्षों से लगे हुए हैं और आज भी ये हस्तशिल्प परम्पराएं जारी हैं। इसके कारण विशिष्ट प्रकार के वस्त्रों की बुनाई, रंगाई और छपाई की शैलियाँ अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ विकसित हुई हैं। हथकरघा, हस्तशिल्प, बुनाई, कढ़ाई और रंग-रंग के धागों से रोमांचक वस्त्र-फलक, इन्द्रधनुष की छटा बिखेरते हैं।

अहमदाबाद का पटोला, वाराणसी और सूरत के ब्रोकेड्स, उड़ीसा का लिनकब, मध्यप्रदेश की चन्देरी, कोटा साड़ी की चौकोर या स्कावयर बुनाई, पश्चिम बंगाल की बालुचर आदि शैलियाँ अपने विविध पर्यटन, डिजायनों, फेब्रिक और सौन्दर्य से मोह लेती हैं। इस प्रकार भारतीय वस्त्र हस्तशिल्प ने अपनी परम्पराओं को जीवन्त रखने के साथ-साथ समय के अनुरूप रंग-रूप बदले भी हैं और इससे इसकी विविधता को विस्तार मिला है। बुनाई, रंगाई, छपाई आदि के विभिन्न तरीके और प्रक्रियाएं विकसित की गई हैं और महिलाओं की पसन्द की विभिन्नता से पूर्ण साड़ियों के हस्तशिल्प का तो जवाब नहीं है।

राजस्थान में जयपुर और कोटा का बंधेज का काम, जामनगर और सौराष्ट्र की अपनी बंधेज परम्परा, तमिलनाडु के अपने रूपांकन और रंग, सौराष्ट्र की अपनी शैली आदि के साथ पूरे भारत के वस्त्र-हस्तशिल्प पर दृष्टि डालें तो इनकी अधिक विविधता और सौन्दर्य से भरपूर है कि सीमित दृष्टि से वर्णन करना कठिन है। भारतीय टेक्सटाईल परम्परा, एक गतिमान परम्परा है जो समय के साथ परिवर्तित भी होती है और अपने स्वरूप को बनाये रखते हुए बदलते फैशन और लोकप्रियता की दृष्टि से भी पीछे नहीं रहती।

रंगाई, छपाई की आवश्यकता के अनुरूप फेब्रिक्स का चुनाव, खुशनुमा डिजायन, मोहक रंगों का सामंजस्य आदि कई ऐसी विशेषताएं जो हमारे सांस्कृतिक जीवन में रची-बसी हैं। सौराष्ट्र की बंधनी, राजस्थान की चुनरी, लहरिये, बंधेज आदि की साड़ियाँ और वस्त्र अपनी विविधता और परम्परा के रंगों में हर किसी को रंग देने की क्षमता रखते हैं। सिल्क, शिफेन, जार्जेट, जरी की बारीक कुशलता आदि कई रूप है - इस टेक्सटाईल हस्तशिल्प के और इसका कलात्मक रूप निरन्तर परिष्कृत होता आया है।

10.3.8 कसीदाकारी एवं शॅलों का शिल्प

जैसा कि चर्चा की जा चुकी है, भारतीय जीवन की प्रेरणा-स्रोत, सदैव प्रकृति रही है और प्रकृति के प्रभावों, रंगों, रूपों, आकारों की छाप भारतीय हस्तशिल्प की कुशलता में बखूबी झलकती है। जलवायु या क्षेत्र विशेष की वनस्पतियाँ और प्राकृतिक रूप-रंग भिन्न-भिन्न हैं और ये रंग-रूपांकन भारतीय कसीदाकारी और शॉलों के निर्माण और हस्तशिल्प में अभिव्यक्त हुई है।

भारतीय कशीदाकारी की डिजायनस् कपड़े फेब्रिक्स और धागों का ताना-बाना है। बिन्दू गोलाकार, चौकोर या वर्गाकार, त्रिकोण आदि के संयोजन के द्वारा रूपाकार गढ़े जाते हैं। कसीदाकारी में धर्म का स्पर्श भी होता है। तुलसी के पौधे, मंदिर द्वार आदि कई प्रकार की परम्परागत कसीदाकारी लोकप्रिय है।

कशीदाकारी के लिए विविध माध्यमों का उपयोग किया जाता है जैसे जाली, रेशम, वेलवेट, चमड़ा आदि। कश्मीर की कसीदाकारी के रंगों का आकर्षण और कलात्मक कौशल की धाक तो पूरे भारत में छाई हुई है। रूपाकारों का सन्तुलन और कश्मीर की वादियों की प्राकृतिक छॅटा वहाँ की कसीदाकारी में गूंथी हुई लगती है। चिनार की पत्तियाँ, अंगूर के गुच्छे, बादाम, सेव, लिलि, कमल का फूल, केसर की क्यारियों के रंग, तोते-मैना आदि की कसीदाकारी से प्रकृतिदत्त रंगों में अभिव्यक्ति मनभावन होती है।

हर प्रकार की हस्तशिल्प परम्परा की क्षेत्रीय विशेषताओं की श्रृंखला में चम्पा की कृष्णलीला, रास रांग-रागिनियों के रूमानी चित्रण एवं अन्य प्रकार के धार्मिक-स्पर्श से रूमालों पर की गई कसीदाकारी में भी आकर्षण है। चिकन कसीदाकारी, सफेद फलक या मलमल पर की जाती है। इस प्रकार के कुर्तों, सलवार-कमीज आदि पर उत्तरप्रदेश में लखनऊ की कसीदाकारी के अलग रंग-रूप हैं। चिकन एक प्रकार की जाली होता है जिसमें धागे से कसीदे के बजाय छिद्रों के द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इसमें कपड़े को जाली का रूप दिया जाता है।

दक्षिण में टेबल-लाइन्स या पहनावे, ग्लोब्ज में लेंसेज या डोर की कसीदा शैली का प्रचलन है। पश्चिम बंगाल में कंथा-कसीदाकारी, उपयोग की गई या बेकार सामग्री के इस्तेमाल से की जाती है। कपड़े की कतरनों के विभिन्न रंगों की सिलाई से कई रूपांकन तैयार किये जाते हैं। यह कशीदाकारी माध्यम के मध्य भाग से प्रारम्भ करके किनारों की ओर फैलाव करती हैं। कश्मीर की ऊन की शॉल लोकप्रिय है। सूती कसीदाकारी शॉल भी बनती है लेकिन कसीदायुक्त ऊनी शॉल अधिक लोकप्रिय है। कशीदे के साथ अन्य प्रकार की पोशाकों का भी चलन है। अमृतसर, लुधियाना, श्रीनगर, लखनऊ, कानपुर, कलकत्ता और गया आदि कसीदाकारी की विभिन्न सामग्री, वस्त्रों और शॉलों के लिए प्रसिद्ध केन्द्र हैं। फलों, हाथी जैसे पशुओं, आम आदि की कसीदे से आकृति और विभिन्न प्रकार की डिजायनों से कसीदा या वीविंग की भारतीय परम्परा अत्यन्त समृद्ध है।

10.3.9 सोने-चाँदी का जरी हस्तशिल्प

सोने-चाँदी के धागों, सलमा, सितारों, जरी कसीदाकारी की साड़ियों, बटवों, जूतियों, बेल्ट्स, टेक्सटाईल आदि की उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं पर सोने-चाँदी की चमक और सितारों आदि को जड़कर किये गये हस्तशिल्प की कारीगरी की भारतीय जीवन में लम्बी और समृद्ध परम्परा चली आ रही है। रेशम के साथ चॉदी-सोने के मुलायम तारों या जरी के

आश्चर्यजनक हस्तशिल्प का परिचय बनारस की साड़ियों से मिलता है। यद्यपि जरी-हस्तशिल्प की परम्परा निरन्तर बिखरती हुई चली आ रही है लेकिन कारीगरों ने समय की पसन्द को पहचानते हुए आधुनिक जरी हस्तशिल्प की तकनीकें भी अपनाई है। जरी के काम के लिए गुजरात में सूरत और उत्तर प्रदेश में बनारस प्रमुख केन्द्र हैं। आगरा, दिल्ली, लखनऊ, बरेली का नाम जरी-कसीदा के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार का काफी सामान बरेली और वाराणसी से निर्यात भी होता है। जरी का उपयोग हथकरगा और पावरलुम्स पर भी होने लगा है। यह कार्य बैंगलोर, मद्रास, त्रिपुरापल्ली और भोपाल में काफी होता है।

10.3.10 हाथीदाँत हस्तशिल्प

हस्तशिल्प कलाओं में हाथीदाँत से हस्तशिल्प निर्माण का कार्य अत्यन्त कठिन, बारीक और बहुत कुशलता का काम है। हाथीदाँत 'अवरी' अपनी-अपनी क्षेत्रीय प्रादेशिक विशेषताओं के साथ हस्तशिल्प की चीजों के लिए मैसूर, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, पश्चिम बंगाल, केरल आदि राज्यों का नाम अग्रणीय है। पाऊडर बॉक्स, ज्वैलरी बॉक्स, कफलिंकस कानों के झुमके, चूड़ियाँ आदि कई उत्पादों का निर्माण हाथीदाँत से किया जाता है। इनमें कुछ चीजें उपयोगिता की होती है तो कुछ सौन्दर्यपूर्ण।

10.3.11 लोकचित्रण

लोकचित्रण या फोक-पेन्टिंग्स की लोक परम्परा पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे चलती है और इस परम्परा का महिलाओं द्वारा पोषण किया जाता है। इनमें ग्रामीण जीवन के विश्वासों या उनकी सौन्दर्य बोध चेतना के दर्शन होते हैं। बिहार की मधुबन चित्रशैली, उड़ीसा के पट्ट-चित्र, आन्ध्रप्रदेश और बंगाल की निर्मल चित्रकला आदि कई लोकशैलियाँ हैं। ये नियम की दृष्टि से बहुत अलग नहीं है लेकिन रंग-रूपों और तकनीक की दृष्टि से अलग-अलग पहचान रखती है। इनमें कृष्ण लीलाओं पौराणिक कथाओं, जैसे नियमों की अधिकता रहती है। देवी-देवताओं के विभिन्न रूप भी चित्रित किये जाते है।

10.3.12 मांटी के बर्तन (पॉट्री)

विभिन्न प्रकार के बर्तनों के निर्माण का हस्तशिल्प अति प्राचीन है क्योंकि घर में उपयोग किये जाने वाले बर्तनों का आरम्भ मांटी के बर्तनों (पॉट्री) से हुआ था। आज भी यह पुरातन मांग कम नहीं हुई है। इनकी एक किस्म चीनी मांटी के विविध रंगों, डिजायनों, आकारों आदि में उपलब्ध सामान या क्रॉकरी की तो विस्तृत श्रृंखला होती है।

राजस्थान में जयपुर अपनी कलात्मक पॉट्री हस्तशिल्प के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की नीले रंग की 'ब्लू-पॉट्री' तथा दिल्ली, रामपुर, खुरजा की इस पॉट्री-शैली के पेटर्न और रूप अत्यन्त सुन्दर होते हैं। उत्तर भारत में अलीगढ़, आजमगढ़, चुनार आदि भी पॉट्री कला के केन्द्र है। दक्षिण भारत में टेराकोटा की पशु-आकृतियों की वर्ण पर अपनी कारीगरी के लिए भी विशेष प्रकार की पॉट्री अत्यन्त आकर्षक होती है।

बंगाल और महाराष्ट्र में भी इस परम्परा की अलग पहचान है। बगाल में बांकुरा के घोड़ें और वैलोर सफेद मिट्टी क्ले से बनी चमकदार पॉट्री भी अत्यन्त सुन्दर होती है। इसमें नीली और हरी कई रंगतों की पॉट्री लोकप्रिय है।

10.3.13 प्रस्तर या पत्थर हस्तशिल्प

भारतीय हस्तशिल्प संवेदनाओं से पूर्ण और जटिल हस्तशिल्प कारीगरी का विस्तृत फलक है और यह नाजुक माध्यमों से लेकर कठोर धातुओं या पत्थरों तक छाई हुई है। खास बात यह है कि हस्तशिल्प अपने हूनर से दर्शक के मानस और हृदयपटल पर अपनी अमिट छाप छोड़-देता है।

प्रस्तर-हस्तशिल्प की कला-यात्रा सारनाथ के चमकदार और पॉलिश किये गये पत्थरों से लेकर भिन्न-भिन्न किस्म के पत्थरों के रंग-रूप के साथ भारत के महलों, मंदिरों, देवालयों और आलीशान भवनों की शोभा बढ़ा रहे हैं। प्रस्तर हस्तशिल्प का भी अति प्राचीन इतिहास है। पत्थरों में डाल देने का हूनर कई परिवर्तनों से गुजर चुका है। मौर्य, गंधार, गुप्ता, चोला, विजयनगर, उड़ीसा, दक्षिण, मुगल आदि विभिन्न शासनकालों में पत्थरों का शिल्प रूप बदलता आया है।

अजन्ता, एलोरा की चट्टानों को काटकर बनइ गई गुफायें और उन पर खुदी अद्भुत मूर्तिकला हो या उदयगिरि में पुस्तक-कला हो या चोला शासन में बने चालूक्यान मंदिर, विरूपरवा या भुवनेश्वर, पुरी और कौणार्क के मंदिरों का अद्भुत कलात्मक परिवेश या सनटेम्पल मोछोरा (गुजरात) या खुजराहो के चन्देला मंदिर, पत्थरों में तराशा गया हस्तशिल्प और मूर्तिशिल्प, जीवन्त लगता है और दुनिया के पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देने की क्षमता रखता है। इस प्रकार पत्थरों को तराश कर उन्हें जिन्दगी के एहसास से भर देने की हस्तशिल्प क्षमता के संदर्भ में भारत अतुलनीय है।

आज भी ये प्राचीन पत्थर-हस्तशिल्प, इस कला को समर्पित शिल्पियों का प्रेरणा-स्रोत है। ताजमहल की कारीगरी और हस्तशिल्प तो दुनिया का सिरमौर आकर्षण स्थल है जहाँ प्रस्तर कला की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। उड़ीसा और पुरी के जगन्नाथ मंदिर की प्रस्तर प्रतिमाऐं बोलती नजर आती हैं। भारत में मंदिरों और मूर्तिकला के हस्तशिल्प की अपार सम्पदा फैली हुई है बावजूद इसके की पश्चिमी दुनियाँ की इनमें विशेष रूचि के कारण यह खजाना, स्मगलरों का निशाना बना हुआ है।

10.4 हस्तशिल्प जीवन्त संस्कृति का प्रतीक

मिथक, प्रतीक और संगीत भारतीय सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है। इसमें स्थानीयता प्रादेशिकता का विशेष पुट है। यही जीवन्त एहसास भारतीय शिल्पियों ने यहाँ के हस्तशिल्प में ढाला है। भारत की एक खास विशेषता यह भी है कि यहाँ के मौन और अनुष्ठानों में एक अद्भुत साम्य है और यह मौन भी वाचाल है।

चाहे नृत्य हो या संगीत, स्थापत्य हो या हस्तशिल्प, हर क्षेत्र में भिन्नता और विविधता में समग्रता समाई हुई है। इनके जीवन्त बने रहने का एक कारण इनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही गतिशीलता है। इनमें ठहराव नहीं बल्कि बदलाव भी है और अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहने की प्रवृति भी।

ये विविध परम्पराएं एक दूसरे को प्रभावित भी करती हैं और अपनी अलग पहचान भी बनाये रखती है। इस प्रकार भारतीय जीवन्त संस्कृति का विकास निरन्तर प्रवाहमय रहा है। भारत की शास्त्रीय कलाओं और ग्रामीण एवं जनजातियों की लोककलाओं के बीच सार्थक संवाद भी बराबर कायम रहा है।

आधुनिक जीवन की भागदौड़ और मशीनी युग के प्रभावों और दबावों के बीच भी इसकी अस्मिता समाप्त नहीं हुई है यद्यपि इसमें कुछ कमजोरी जरूर पैदा हुई है। भारत में संस्कृति के जीवित रहने का प्रमुख कारण यह है कि यह कुछ सम्पन्न या बुद्धिजीवी लोगों तक सीमित नहीं रही। इसकी पैठ जनजीवन एवं लोकजीवन में स्वच्छन्द रूप से कायम रही है। यद्यपि इस रहस्य को पूरी तरह समझा नहीं गया है लेकिन यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति के इस जीवन्त पहलू के कारण दुनियाँ के पर्यटकों का भारत, महत्त्वपूर्ण आकर्षण केन्द्र बना हुआ है।

भारतीय हस्तशिल्प इसी जीवन्त संस्कृति की प्राचीनतम परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय शिल्पियों ने अपनी मनोभावनाओं को हस्तशिल्प के माध्यम से सर्जनात्मक अभिव्यक्ति दी है। शिल्पियों ने आसानी से उपलब्ध अपने आसपास के उन माध्यमों जैसे पत्थर, लकड़ी, धातु आदि को चुना है और उन पर अपनी प्रतिमा और कौशल को अंकित किया है। भारतीय ग्रामीण जीवन में विभिन्न समूहों के अपने-अपने शिल्प होते हैं जिनमें उनके जीवन का सम्पूर्ण समर्पण व्यक्त होता है।

भारत की चारों दिशाओं पर दृष्टि डालें तो उत्तरी भारत में कश्मीर के चाँदी के बर्तन, कालीन, हाथीदाँत से बनी वस्तुएं, शॉल, पेपरमेशी पंजाब का काष्ठ शिल्प और धातु के बर्तन, हिमाचल का काष्ठ शिल्प, शॉल उत्तरप्रदेश के चाँदी के बर्तन, जरी का काम, मिट्टी के बर्तन, काष्ठ शिल्प और कसीदाकारी आदि आकर्षित करता है।

पूर्वी भारत में पश्चिमी बंगाल की मिट्टी की मूर्तियाँ, काष्ठ शिल्प, कसीदाकारी परम्परा, उड़ीसा में कागज चित्रावली, काष्ठ शिल्प और पश्चिमी भारत में राजस्थान के मिट्टी के बर्तन, पत्थर शिल्प, लकड़ी का काम, कसीदाकारी तथा मध्यभारत में मध्यप्रदेश का पत्थर शिल्प, कसीदाकारी एवं दक्षिण भारत में अन्ध्रप्रदेश का धातुकर्म, पत्थर शिल्प, कर्नाटक में हाथीदाँत की वस्तुऐं, चमकदार मिट्टी के बर्तन, तमिलनाडु में चटाई कठपुतली निर्माण, लकड़ी का काम और केरल में टोकरी निर्माण, मुखौटा और लकड़ी का काम प्रसिद्ध है।

10.5 सारांश

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारतीय हस्तशिल्प की अति प्राचीन परम्परा इतनी व्यापक और विस्तृत है कि इसे छोटे फलक पर समेटना या इसकी झलक मात्र प्रस्तुत करना असम्भव प्रतीत होता है बहरहाल, इस इकाई में भारतीय हस्तशिल्प की लम्बी कहानी के कुछ पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जो भारतीय जीवन में कला के स्थान, महत्त्व और उपयोगिता को प्रतिपादित करता है। भारतीय हस्तशिल्प का पक्ष हो या कोई और प्रसंग, भारत का सांस्कृतिक वैभव अपार है, अनन्त है, उतना ही जितना हमारे दर्शनशास्त्रों ने मानव जीवन को बताया है।

भारतीय दर्शन में भौतिक वस्तुओं को अस्थायी बताया है लेकिन उनके भीतर समायी आत्मा को अनन्त माना है जिसका कभी क्षय नहीं होता और भारतीय हस्तशिल्प का सौन्दर्य, रोमांच, कारीगरी के कमाल और कुशलता, विविधता आदि अपने आप में अद्भुत और बेमिसाल है। ये हस्तशिल्प परम्पराएं हमें अपनी संस्कृति और उन्नत जीवनशैली की उत्कृष्टता से अभिभूत करके हमें गौरव का एहसास कराती है। यही विविध रंगरूप और गौरवमयी परम्पराएं भारत के

प्राचीन सांस्कृतिक वैभव के आकर्षण से दुनियाँ के पर्यटकों के मन पर अंकित होती है और उन्हें लुभाती हैं।

10.6 कुछ उपयोगी साहित्य

1. Tourism & Cultural Heritage of India, 1980, Ram Acharya, RBSA Publications, Jaipur.
2. Tourism Museums & Monuments in India, Dr. S.P. Gupta & Krishna Lal.
3. Fundamentals of Tourism & India Religion, Chamanlal Rain & Abhinav k. Raina, 2005 kanishka Publishers, Distributors, New Delhi.
4. Tourism Policy, Planning, Strategy, K.C. Sharma, Pointer Publishers, Jaipur.
5. Indian Tourism, Editor Shalini Singh, APN Publishing Corpn. New Delhi.

10.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय हस्तशिल्प की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
2. राजस्थान किस-किस के हस्तशिल्प के लिए प्रसिद्ध है।
3. हस्तशिल्प के माध्यम क्या-क्या रहे है?
4. टेक्सटाईल हस्तशिल्प की विभिन्नता का वर्णन कीजिए।
5. दक्षिण भारत का कौन-कौन सा हस्तशिल्प लोकप्रिय है?